Read to Lead

एन.ई.पी. (2020) के अनुसार राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर एवं राजस्थान के अन्य राज्य विश्वविद्यालयों हेतु तीन/चार वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम

लोक प्रशासन (Public Administration)

प्रशासनिक सिद्धान्त

(Administrative Theory)

राजस्थान विश्वविद्यालय एन.ई.पी. 2020 के
बी.ए.
तृतीय सेमेस्टर

THAKUR PUBLICATION
JAIPUR

डॉ. रतन लाल कुमावत

विषय–सूची

इकाई 1– प्रशासनिक विचारों का विकास एवं विभिन्न चरण

Unit 1: Evolution of Administrative Thoughts and Various Stages

1.1. लोक प्रशासन का विकास (Evolution of Public Administration) 15

1.1.1. प्राचीन काल में लोक प्रशासन का विकास (Evolution of Public Administration in Ancient Era) 15

1.1.2. आधुनिक काल में लोक प्रशासन का विकास (Evolution of Public Administration in Modern Age) 16

1.1.3. भारत में लोक प्रशासन का अध्ययन विषय के रूप में विकास (Evolution of Public Administration as a Subject of Study in India) 16

1.1.4. प्रशासन विकास के विभिन्न चरण (Various Stages of Administration) 17

1.1.4.1. प्रथम चरण– राजनीतिक प्रशासन द्विभाजन काल (1887–1926) [First Phase– Politics Administration Bifurcation Period (1887–1926)] 18

1.1.4.2. द्वितीय चरण– प्रशासन के सिद्धान्तों का स्वर्ण काल (1927–1937) (Second Phase– the Golden Era of Principles of Administration) 19

1.1.4.3. तृतीय चरण– प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती (1938–1947) (Third Phase: Challenging Administration Principles) 19

1.1.4.4. चतुर्थ चरण– अन्तःअनुशासनात्मक अध्ययन पर बल (1948–1970) (Fourth Phase: Emphasis on Inter-Disciplinary Studies) 20

1.1.4.5. पंचम चरण–नवीन लोक प्रशासन एवं नवीन लोक प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य (1971–वर्तमान) (Fifth Phase: New Public Administration and New Public Management Perspecting) 20

1.2. प्रशासनिक विचारधारा का विकास (Evolution of Administrative Thought) 21

1.3. कौटिल्य के प्रशासनिक विचार (Administrative Ideas of Kautilya) 23

1.3.1. कौटिल्य का जीवन परिचय (Life Introduction of Kautilya) 23

1.3.2. कौटिल्य के अर्थशास्त्र का परिचय (Introduction to Kautilya's Arthashastra) 23

1.3.3. कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अधिकरण (Tribunals of Kautilya's Arthashastra) 24

1.3.4. सप्तांग सिद्धान्त (Saptang Theory) 25

1.3.5. कौटिल्य के राजा (King of Kautilya) 28

1.3.5.1. राजा के गुण (Qualities of a King) 28

1.3.5.2. राजा की शिक्षा (King's Education) 29

1.3.5.3. राजा के कर्तव्य (Duties of the King) 29

1.3.5.4. कार्यपालिका एवं प्रशासनिक कर्तव्य (Executive and Administrative Duties) 30

1.3.6. मंडल सिद्धान्त (Mandal Theory) 30

1.3.7. कौटिल्य का प्रभुसत्ता सिद्धान्त (Kautilya's Theory of Sovereignty) 32

1.3.8. कौटिल्य की मन्त्रिपरिषद (Kautilya's Council of Ministers) 33

1.3.8.1. वित्त विभाग (Finance Department) 33

1.3.8.2. गृह एवं रक्षा विभाग (Home and Defence Department) 34

1.3.8.3. कौटिल्य की गुप्तचर व्यवस्था (Kautilya's Espionage System) 34

1.3.9. कौटिल्य की दण्डनीति (Kautilya's Dandaniti) 36

1.3.10. कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति (Kautilya's Shaadguny Neeti) 36

1.3.11. शांति–स्थापना की अंतरराज्यीय नीति के उपाय (Interstate Policy Measures for Peacekeeping) 37

1.4. वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson)
1.4.1. परिचय (Introduction) **38**
1.4.2. वुडरो विल्सन का जीवन परिचय (Biography of Woodrow Wilson) 38
1.4.3. वुडरो विल्सन की रचनाएँ (The Writings of Woodrow Wilson) 38
1.4.4. वुडरो विल्सन के प्रमुख विचार तथा उनके योगदान (Main ideas of Woodrow Wilson and his Contributions) 39
1.4.5. आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation) 39
1.5. वैज्ञानिक प्रबन्धन– एफ.डब्ल्यू. टेलर (Scientific Management - F.W. Taylor) 43
1.5.1. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Scientific Management Theory) **44**
1.5.2. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Scientific Management Theory) 44
1.5.3. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के उद्देश्य (Objective of Scientific Management Theory) 45
1.5.4. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर (Frederic Winslow Taylor) 45
1.5.5. वैज्ञानिक प्रबन्धन के विकास में टेलर का योगदान (Taylor's Contribution to the Development of Scientific Management) 46
1.5.6. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientfiic Management of Frederic Winslow Taylor) 47
1.5.6.1. टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के तत्त्व या सिद्धान्त (Elements/ Principles of Taylor's Scientific Management) 48
1.5.6.2. टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन की तकनीकें (Techniques of Taylor's Scientific Management) 48
1.5.7. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के लाभ (Advantages of Scientific Management Theory) 49
1.5.8. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Scientific Management Theory) 51
1.6. प्रशासनिक प्रबन्धन सिद्धान्त (Administrative Management Theory) 52
1.7. हेनरी फेयोल (Henri Fayol) 53
1.7.1. परिचय (Introduction) **54**
1.7.2. हेनरी फेयोल की रचनाएँ (Writings of Henri Fayol) 54
1.7.3. हेनरी फेयोल का लोक प्रशासन या प्रबन्ध में योगदान (Contribution of Henri Fayol to Public Administration or Management) 54
1.7.4. हेनरी फेयोल की औद्योगिक एवं प्रशासनिक क्रियाएँ (Industrial and Administrative Activities of Henry Fayol) 55
1.7.4.1. औद्योगिक क्रियाएँ (Industrial Activities) 56
1.7.4.2. प्रशासनिक क्रियाएँ (Administrative Activities) 56
1.7.5. हेनरी फेयोल के प्रबन्ध तथा प्रशासन के सिद्धान्त (Principles of Management and Administration of Henry Fayol) 59
1.7.6. प्रबन्धक के गुण (Attributes of Managers) **62**
1.7.7. आलोचना (Criticism) 62
1.8. लूथर गुलिक (Luther Gulick) 63
1.8.1. परिचय (Introduction) 63
1.8.2. संगठन के सिद्धान्त (Principles of Organisation) 63
1.8.3. लूथर गुलिक का पोस्डकॉर्ब सम्बन्धी विचार (POSDCORB Ideas of Luther Gulick) 67
1.8.4. मुख्यालय क्षेत्रीय कार्यालय सम्बन्ध (Relation between Headquarters and Regional Units) 68

1.8.5. लोक प्रशासन पर गुलिक के विचार (Views of Gulick on Public Administration) 70
1.8.5.1. प्रशासनिक सुधारक के रूप में गुलिक के विचार (Gulick's Views as an Administrative Reformer) 70
1.8.5.2. युद्धकालीन अनुभवों के आधार पर गुलिक के लोक–प्रशासन सम्बन्धी विचार (Gulick's Ideas Related to Public Administration based on Wartime Experiences) 70
1.8.5.3. भावी माँगों के अनुरूप गुलिक के लोक–प्रशासन सम्बन्धी विचार (Gulik's Ideas Related to Public Administration in Accordance with Future Demands) 71
1.8.6. लूथर गुलिक के विचारों की आलोचना (Criticism of the Ideas of Luther Gulick) 72
1.9. लिंडेल उर्विक (Lendall Urwick) 72
1.9.1. परिचय (Introduction) 72
1.9.2. उर्विक की रचनाएँ (Compositions of Urwick) 72
1.9.3. उर्विक के संगठन के सिद्धान्त (Urwick's Theory of Organisation) 73
1.9.4. उर्विक के सिद्धान्त की प्रासंगिकता (Relevance of Urwick's Principles) 75
1.9.5. उर्विक के Z सिद्धान्त (Urwick's Z Theory) 76
1.9.6. उर्विक के अन्य प्रशासनिक विचार (Urwick's Other Administrative Ideas) 77
1.9.7. उर्विक की आलोचना (Criticism of Urwick) 79
1.10. अभ्यास प्रश्न (Exercise) 80

इकाई 2– प्रशासनिक सिद्धान्तों का परिचय
Unit 2: Introduction of Administrative Theories

2.1. नौकरशाही (Bureaucracy)
2.1.1. परिचय (Introduction) 81
2.1.2. नौकरशाही का अर्थ (Meaning of Bureaucracy) 81
2.1.3. नौकरशाही के उदय के कारण (Factors Responsible for Rise of Bureaucracy) 81
2.1.4. नौकरशाही के प्रकार (Types of Bureaucracy) 82
2.1.5. मैक्स वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त (Max Weber's Theory of Bureaucracy) 83
2.1.5.1. मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Max Weber's Bureaucracy Theory) 84
2.1.5.2. मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त के सकारात्मक पक्ष (Positive Sides of Max Weber's Bureaucracy Theory) 86
2.1.5.3. मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Bureaucracy Theory of Max Weber) 87
2.1.6. नौकरशाही का महत्त्व (Importance of Bureaucracy) 88
2.1.7. नौकरशाही के दोषों को दूर करने के सुझाव (Suggestions of Remove the Defects of Bureaucracy) 90
2.2. एम. पी. फोलेट के विचार (Idea of M. P. Follett) 91
2.2.1. परिचय (Introduction) 91
2.2.2. मैरी फोलेट के सिद्धान्त (Mary Follett's Principles) 91
2.2.3. मैरी फोलेट के प्रशासनिक विचार (Administrative Ideas of Mary Follett) 92
2.2.4. फोलेट के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evalution of Follet's Ideas) 93
2.3. मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त– एल्टन मेयो (Human Relations Theory- Elton Mayo) 98
2.3.1. परिचय (Introduction) 98

2.3.2. मानवीय सम्बन्ध का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definition of Human Relation) 99
2.3.3. एल्टन मेयो (Elton Mayo) 100
2.3.4. एल्टन मेयो के प्रयोग (Elton Mayo's Experiments) 100
2.3.5. एल्टन मेयो के प्रयोगों के निष्कर्ष (Conclusion of Elton Mayo's Experiments) 104
2.3.6. एल्टन मेयो के मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त (Elton Mayo's Human Relations Theory) 104
2.3.7. एल्टन मेयो के मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त के मुख्य तत्त्व (Elton Mayo's Main Elements of Human Relations Theory) 105
2.3.8. एल्टन मेयो के प्रयोगों की आलोचना (Criticism of Elton Mayo's Experiments) 106
2.4. व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behavioural Theory) 108
2.4.1. परिचय (Introduction) 108
2.4.2. व्यवहारवादी सिद्धान्त की विशेषताएँ (Features of Behavioural Theory) 109
2.4.3. व्यवहारवादी सिद्धान्त का लोक प्रशासन पर प्रभाव (Impact of Behavioural Theory on Public Administration) 109
2.5. चेस्टर बर्नार्ड (Chester Barnard) 110
2.5.1. परिचय (Introduction) 110
2.5.2. चेस्टर बर्नार्ड का योगदान (Contribution of Chaster Bernard) 111
2.5.2.1. औपचारिक और अनौपचारिक संगठन (Formal and Informal Organisations) 111
2.5.2.2. योगदान–सन्तुष्टि सन्तुलन (Contribution-Satisfaction Equilibrium) 112
2.5.2.3. सत्ता की अवधारणा (Concept of Authority) 112
2.5.2.4. संचार की समझ (Understanding of Communication) 113
2.5.2.5. निर्णय निर्माण (Decision-Making) 113
2.5.3. आलोचनाएँ (Criticism) 114
2.6. हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon) 114
2.6.1. परिचय (Introduction) 114
2.6.2. निर्णय की विशेषताएँ (Characteristics of Decision) 115
2.6.3. साइमन का निर्णय निर्माण सिद्धान्त (Simon's Decision-Making Theory) 115
2.6.4. साइमन का निर्णय निर्माण प्रक्रिया मॉडल (Simon's Decision-Making Process Model) 116
2.6.5. निर्णय निर्माण में तार्किकता या विवेकशीलता (Rationality or Prudence in Decision-Making) 117
2.6.6. निर्णय निर्माण में "तथ्यात्मक" एवं "मूल्यात्मक" तत्व (Factual and Evaluative Elements in Decision-Making) 118
2.6.7. निर्णय निर्माण के प्रकार (Types of Decision-Making) 119
2.6.8. निर्णय निर्माण प्रक्रिया की आलोचनाएँ (Criticism of Decision-Making Process) 119
2.7. अभ्यास प्रश्न (Exercise) 120

इकाई 3– अभिप्रेरणा सिद्धान्त एवं सहभागी प्रबन्धन

Unit 3: Motivation Theories and Participative Management

3.1. अभिप्रेरणा (Motivation) 121

3.1.2.	अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Motivation)	121
3.1.3.	अभिप्रेरणा की प्रक्रिया (Process of Motivation)	122
3.1.4.	अभिप्रेरणा के प्रकार (Types of Motivation)	123
3.1.5.	अभिप्रेरणा तकनीक (Motivation Techniques)	124
3.1.6.	अभिप्रेरणा का महत्त्व (Significance of Motivation)	125
3.1.7.	अभिप्रेरणा के सिद्धान्त (Theories of Motivation)	126
3.2.	**अब्राहम एच. मैस्लो (Abraham H. Maslow)**	**127**
3.2.1.	परिचय (Introduction)	127
3.2.2.	मैस्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता सिद्धान्त (Maslow's Need-Hierarchy Theory)	128
3.2.3.	आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)	132
3.3.	**फ्रेडरिक हर्जबर्ग (Fredrick Herzberg)**	**134**
3.3.1.	परिचय (Introduction)	134
3.3.2.	हर्जबर्ग का दो घटक का सिद्धान्त/हर्जबर्ग की अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त (Herzberg's Two Factor Theory/ Motivation Hygiene Theory)	135
3.3.3.	हर्जबर्ग के दो कारक (Two Factors of Herzberg)	135
3.3.4.	हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त के चार संयोजन (Four Combination of Herzberg's Motivation Hygiene Theory)	137
3.3.5.	"नौकरी/कार्य संवर्धन" (Job Enrichment)	138
3.3.6.	हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त के अनुप्रयोग (Application of Herzberg's Motivation Hygiene Theory)	138
3.3.7.	आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)	139
3.3.8.	मैस्लो तथा हर्जबर्ग के सिद्धान्त में अन्तर (Difference between Herzberg's Theory and Maslow's Theory)	140
3.4.	**डगलस मैक्ग्रेगर (Douglas Mcgregor)**	**140**
3.4.1.	परिचय (Introduction)	140
3.4.2.	डगलस मैक्ग्रेगर का योगदान (Contribution of Douglas McGregor)	141
3.4.3.	मैक्ग्रेगर की X तथा Y विचारधारा (McGregor's X and Y ideology)	141
3.4.3.1.	सिद्धान्त X की मान्यताएँ (Assumptions of X theory)	142
3.4.3.2.	सिद्धान्त Y की मान्यताएँ (Assumptions of Y Theory)	143
3.4.4.	सिद्धान्त X तथा सिद्धान्त Y में अन्तर (Difference Between X Theory and Y Theory)	144
3.4.5.	मैक्ग्रेगर व लिकर्ट के सिद्धान्त की तुलना (Comparison of McGregor and Likert Theory)	145
3.4.6.	मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of McGregor's Theory)	146
3.5.	**सहभागी प्रबन्धन (Participative Management)**	**147**
3.6.	**क्रिस आर्गिरिस (Chris Argyris)**	**148**
3.6.1.	संगठनात्मक सिद्धान्त– संयोजन मॉडल (Chris Argyris's Organizational Theory- Fusion Model)	148
3.6.2.	अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त/मॉडल (Immaturity-Maturity Theory/ Model)	151
3.6.3.	अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त/मॉडल की सीमाएँ (Limitations of Immaturity-Maturity Theory/Model)	153
3.6.4.	संगठनात्मक परिवर्तन (Organisational Change)	154
3.6.5.	आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)	158
3.7.	**रेंसिस लिकर्ट (Rensis Likert)**	**159**
3.7.1.	परिचय (Introduction)	159
3.7.2.	लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली (Likert's Management System)	160

3.7.3.	संगठनात्मक विकास सुधार (Organizational Improvement)	164
3.7.4.	संगठनात्मक प्रभावकारिता (Organisational Effectiveness)	164
3.7.5.	संघर्ष का प्रबन्ध (Managing Conflicts)	166
3.7.6.	लिंकिंग–पिन मॉडल (Linking-Pin Model)	167
3.7.7.	संगठनात्मक कार्य–सम्पादन (Organizational Performance)	169
3.7.8.	आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)	170
3.8.	**अभ्यास प्रश्न (Exercise)**	**171**

इकाई 4– प्रशासनिक तकनीकें

Unit 4: Administrative Techniques

4.1.	**प्रोग्राम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक एवं सीपीएम (Programme Evaluation And Review Technique And CPM)**	**172**
4.1.1.	प्रोग्राम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक (पर्ट) [Programme Evaluation and Review Technique (PERT)]	172
4.1.1.1.	पर्ट की विशेषताएँ (Features of PERT)	173
4.1.1.2.	पर्ट के चरण (Steps of PERT)	174
4.1.1.3.	पर्ट के लाभ (Advantages of PERT)	176
4.1.1.4.	पर्ट के हानि (Disadvantage of PERT)	177
4.1.2.	सीपीएम (CPM)	178
4.1.2.1.	सीपीएम विश्लेषण के सिद्धान्त (Principles of CPM Analysis)	178
4.1.2.2.	सीपीएम के लाभ (Advantages of CPM)	179
4.1.2.3.	सीपीएम के हानि (Disadvantages of CPM)	179
4.1.3.	पर्ट एवं सीपीएम में अन्तर (Difference Between PERT and CPM)	180
4.2.	**साइबरनेटिक्स (Cybernetics)**	**181**
4.2.1.	परिचय (Introduction)	181
4.2.2.	प्रबन्ध साइबरनेटिक्स (Management Cybernetics)	182
4.2.3.	परिचालन में अनुसंधान (Research into Operations)	182
4.2.4.	व्यवहार्य प्रणाली मॉडल (Viable System Model- VSM)	182
4.2.5.	एकीकरण (Integration)	185
4.2.6.	अधिगम एवं विकास (Learning and Development)	185
4.2.7.	संगठनात्मक साइबरनेटिक्स (Organisational Cybernetics)	186
4.3.	**संगठन और विधियाँ (Organisation and Methods)**	**186**
4.3.1.	संगठन एवं विधि या प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Organisation and Method)	186
4.3.2.	ओ तथा एम की प्रकृति (Nature of O and M)	187
4.3.3.	संगठन एवं विधि के उद्देश्य/कार्य (Aims/Functions of Organisation and Methods)	188
4.3.4.	संगठन व प्रणाली की तकनीकें (Techniques of O&M)	189
4.3.5.	ओ. तथा एम. के लाभ (Advantages of O & M)	191
4.3.6.	ओ. तथा एम. की हानियाँ (Disadvantages of O & M)	191
4.3.7.	भारत में ओ. तथा एम. (O & M in India)	192
4.4.	**प्रबन्ध सूचना प्रणाली और स्वोट विश्लेषण (Management Information System And Swot Analysis)**	**192**
4.4.1.	प्रबन्ध सूचना प्रणाली (Management Information System)	192
4.4.2.	स्वोट विश्लेषण (SWOT Analysis)	197
4.5.	**सुशासन (Good Governance)**	**200**
4.5.1.	सुशासन की अवधारणा (Concept of Good Governance)	200

4.5.2.	सुशासन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Good Governance)	201
4.5.3.	सुशासन के सिद्धान्त (Principles of Good Governance)	202
4.5.4.	सुशासन के सूचक (Indicators of Good Governance)	203
4.5.5.	भारत में सुशासन से सम्बन्धित कठिनाइयाँ (Difficulties Related to Good Governance in India)	205
4.5.6.	भारत में सुशासन प्राप्त करने के लिए लागू की गयी नीतियाँ (Policies implemented to achieve good governance in India)	207
4.5.7.	सुशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Good Governance)	208
4.6.	**सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी [Information And Communication Technology (ICT)]**	**208**
4.6.1.	आई.सी.टी. की अवधारणा (Concept of I.C.T.)	208
4.6.2.	सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उद्गम एवं विकास (Origin and Growth of Information and Communication Technology)	209
4.6.3.	सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के घटक (Components of ICT)	211
4.6.4.	सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियों का वर्गीकरण (Classification of ICTs)	212
4.6.5.	सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में नवीन प्रवृत्तियाँ (New Trends in Information and Communication Technology)	214
4.7.	**प्रशासन में नवाचार के रूप में ई–गवर्नेंस (e-Governance As Innovation In Administration)**	**215**
4.7.1.	परिचय (Introduction)	215
4.7.2.	ई–गवर्नेंस के चरण (Stages of e-Governance)	217
4.7.3.	ई–गवर्नेंस के प्रमुख स्तम्भ (Major Pillars of e-Governance)	217
4.7.4.	ई–गवर्नेंस में आईसीटी का उपयोग (Use of ICT in e-Governance)	218
4.7.5.	डिजिटल शासन (Digital Governance)	219
4.7.6.	भारत में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के तहत ई–गवर्नेंस के नवीन प्रयास (Innovative Approaches to e-Governance under ICT in India)	220
4.7.7.	राजस्थान में ई–गवर्नेंस (e-Governance in Rajasthan)	224
4.7.8.	ई–गवर्नेंस के लाभ (Benefits of e-governance)	225
4.7.9.	ई–गवर्नेंस की समस्याएँ (Problems of e-Governance)	227
4.7.10.	ई–गवर्नेंस का महत्त्व (Significance of e-Governance)	228
4.8.	**अभ्यास प्रश्न (Exercise)**	**229**

इकाई–1

प्रशासनिक विचारों का विकास एवं विभिन्न चरण
EVOLUTION OF ADMINISTRATIVE THOUGHTS AND VARIOUS STAGES

1.1. लोक प्रशासन का विकास (EVOLUTION OF PUBLIC ADMINISTRATION)

1.1.1. प्राचीन काल में लोक प्रशासन का विकास (Evolution of Public Administration in Ancient Era)

लोक प्रशासन का मूर्त रूप हमारी प्राचीनतम सभ्यताओं जैसे–भारत, चीन, मिस्र तथा मेसोपोटामिया की नदी घाटी सभ्यताओं से उत्पन्न हुआ। चीन में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से भर्ती की जाने वाली लोक सेवाओं के विकास का काल था। भारत के प्रशासन का अभिन्न अंग अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र को माना जाता है। गंगा सिन्धु घाटी के ग्रामीण समाजों में हमें इस बात के प्रमाण प्राप्त होते हैं कि उन सभ्यताओं में प्राचीनकाल से ही प्रशासनिक व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित थी। भारत के प्राचीन ग्रन्थ रामायण, महाभारत व कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' लोक प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें राज्य के प्रशासन तथा सरकारी कर्मचारियों व प्रशासन की समस्त कलाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। सरकारी अधिकारियों व लगान वसूली से सम्बद्ध कर्मियों की भर्ती व उनके प्रशिक्षण की विस्तृत व्याख्या की गई है।

प्रशासनिक व्यवस्था के क्षेत्र में मध्यकालीन सामन्तवाद ने मतभेदपूर्ण विकेन्द्रीकरण को सम्मिलित किया लेकिन उसके बिखरे हुए सूत्रों को इंग्लैण्ड, प्रशा, फ्रांस के नवीन राज्यों ने पुनः संकलित व सम्बद्ध कर दिया। राजनीतिक सत्ता के विस्तार व केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप राजभवनों के कार्यशील व्यक्तियों की संख्या लगातार बढ़ती चली गयी। कर्मचारियों की वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रशासनिक कार्यों का विभाजन विभागों, मंत्रालयों व क्षेत्रीय कार्यालयों में कर दिया गया। लोक प्रशासन की एक ऐसी प्रणाली निर्मित हुई जिसमें कर्मचारियों की नियुक्ति केवल अनुशंसा के आधार पर की जाती थी।

सर्वप्रथम **प्रशा** देश में कर्मचारियों की भर्ती उनकी योग्यता व गुणों के आधार पर की गई थी। इस प्रकार से संगठित की गई लोक सेवा की सफलता ने कालान्तर में अन्य देशों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया तथा उन्होंने भी इसी पद्धति को अंगीकृत किया। विश्व युद्धों, औद्योगिक क्रान्ति तथा लोकतन्त्र की उन्नति के कारण प्रशासनिक क्षेत्र में अनेक समस्याएँ दृष्टिगत हुई। इसके परिणामस्वरूप प्रशासन का कार्य पूर्व की तुलना में अधिक कठिन तथा दुष्कर हो गया। इसलिए अब सामाजिक सुरक्षा, न्याय, आर्थिक संकट से सम्बन्धित जटिलताओं को दूर करने का दायित्व लोक प्रशासकों को प्रदान किया गया।

1.1.2. आधुनिक काल में लोक प्रशासन का विकास (Evolution of Public Administration in Modern Age)

लोक प्रशासन एक सुव्यवस्थित अध्ययन क्षेत्र के स्वरूप में नवीन विषय है, परन्तु इसके विकास में विद्वानों का योगदान रहा है। उदाहरणस्वरूप प्रशासन की सर्वप्रमुख प्रमाणित भारतीय कृति **कौटिल्य के अर्थशास्त्र** में प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में **तीन पक्षों** पर वर्णन किया गया है। जैसे– **प्रशासन के सिद्धान्त, सरकारी ढाँचे** व **राजकर्मचारियों का प्रबन्ध**। कौटिल्य का यह मत था कि लोक प्रशासन को तभी समुचित रूप में क्रियान्वित किया जा सकता है, जब वह लोक प्रशासन विज्ञान से भली भाँति परिचित हों। अतः राज्य के समस्त कर्मचारियों, राजा, युवराज को लोक प्रशासन विज्ञान से परिचित होना अत्यावश्यक है।

अरस्तू की रचना **'पॉलिटिक्स'** तथा मैकियावेली की **'द प्रिंस'** में लोक प्रशासन की व्यवस्था व इसके क्रियात्मक स्वरूप का वर्णन मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं पर अधिक बल दिया गया है न कि सैद्धान्तिक मापदण्डों पर। उनके ग्रन्थ में भ्रष्टाचार, राजतन्त्र, नौकरशाही, भूराजस्व आदि विषयों पर गहनता से वर्णन किया गया है। अकबर के काल में रचित ग्रन्थ 'आइन–ए–अकबरी' जिसकी रचना अबुल फजल ने की थी, वह भी प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

राजनीतिशास्त्र की रचनाओं में प्रशासनिक विषयों की व्याख्या आधुनिक काल में की गई परन्तु 'लोक प्रशासन' शब्द की रचना 17वीं सदी तक नहीं हुयी थी। इस शब्द की शुरूआत 17वीं शताब्दी में यूरोपीय भाषाओं में तब की गयी जब लोक कार्यों में प्रशासन और व्यक्ति के जीवन के मध्य विभाजन करना आवश्यक प्रतीत हुआ। 18वीं शताब्दी के अंत में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम **'राजकोषीय सचिव'** (Secretary of Treasury) **'अलेक्जेण्डर हेमिल्टन'** (Alexander Hamilton) के द्वारा प्रकाशित विश्वकोष "फेडरेलिस्ट" के 72वें परिच्छेद में लोक प्रशासन की परिभाषा व उसके क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया गया।. 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस ने लोक प्रशासन की सार्थकता को जानकर इसके विकास में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए।

फ्रांस के लेखक चार्ल्स जीन बेनिन (Charles Jean Bounin) ने 1812 में 'लोक प्रशासन के सिद्धान्त' (Principles 'De' Administration Publique) नाम से इस पर प्रथम पुस्तक की रचना की। लोक प्रशासन के विकास में इन समस्त प्रयासों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, परन्तु इसके विकास का कार्य सर्वप्रथम संयुक्त राज्य अमेरिका में शुरू हुआ तत्पश्चात इसे एक पूर्ण शास्त्र की संज्ञा प्राप्त हुई। 1800 के उत्तरार्द्ध में हुई प्रशासनिक क्रान्ति के उपरान्त बेनिन ने ही नेपोलियन के शासन काल में सरकारी अधिकारी तंत्र के लिए प्रशासनिक संहिता की रूपरेखा का निर्माण किया।

1.1.3. भारत में लोक प्रशासन का अध्ययन विषय के रूप में विकास (Evolution of Public Administration as a Subject of Study in India)

भारत में लोक प्रशासन का इतिहास उतना पुराना माना जा सकता है जितनी पुरानी सिन्धु सभ्यता है। भारत के इतिहास में राजनीतिक रूप से हिन्दी काल शिखर पर था उसी के समान इस युग में प्रशासन का अपना एक प्रतिष्ठित स्थान है। आज मौजूदा शासन व्यवस्था पुरातन शासन व्यवस्था का एक परिष्कृत स्वरूप है। कुछ प्रशासनिक

विषयों पर जैसे–ब्रिटिश प्रशासन, भारतीय सिविल सेवा, जिला प्रशासन पर अंग्रेज लेखकों द्वारा उत्कृष्ट शोध रचनाओं का प्रस्तुतीकरण किया गया। यह माना जाता है, कि लोक प्रशासन के आरिम्भक शिक्षक वे व्यक्ति थे जो राजनीति विज्ञान के शिक्षक थे तथा जिनको स्थानीय प्रशासन में निपुणता प्राप्त थी। इसमें **वी. के. एन. मेनन** जिन्होंने 1924 में लखनऊ विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में कार्य किया और इन्होंने लोक प्रशासन में विशेषज्ञता भी प्राप्त की थी, के सहयोग से लखनऊ विश्वविद्यालय को चौथे दशक में भारत के एक ऐसे पहले विश्वविद्यालय के रूप में ख्याति मिली जहाँ लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान के एक प्रश्न के रूप में अध्ययन में शामिल किया गया।

इसके पश्चात् लगभग 1949–50 में लोक प्रशासन को एक अलग विभाग के रूप में स्थापित करने वालों में नागपुर विश्वविद्यालय का नाम भारत में प्रथम है। इसकी स्थापना के साथ ही लोक प्रशासन को भारत में पहली बार पूरी तरह से शैक्षिक मान्यता प्राप्त हुई। इस नवीन विभाग के अध्यक्ष **स्व. डॉ. महादेव शर्मा** बने जो इसके सर्वप्रथम प्रोफेसर माने जाते हैं। भारतीय लोक प्रशासन का जनक भी डॉ. महादेव शर्मा को ही माना जाता है।

वी. के. एन. मेनन की कोशिशों से 1959 में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम को प्रारम्भ किया गया। पंजाब व उस्मानिया विश्वविद्यालयों ने भी इसका अनुसरण करते हुए 1961 में लोक प्रशासन के पृथक विभाग बनाए तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम आरम्भ किया। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में इसका अध्ययन कार्य राजनीति विज्ञान के साथ हुआ परन्तु राजस्थान विश्वविद्यालय में इसका आरम्भ सन् 1975 में अर्थशास्त्र विभाग में किया गया। राजस्थान में **एम. बी. माथुर** को लोक प्रशासन का संस्थापक माना जाता है। राजस्थान में लोक प्रशासन को 1965 में एक पृथक विभाग का स्थान मिला। यहाँ 1971 में पहली बार लोक प्रशासन विषय पर पी. एच. डी. की उपाधि प्रदान की गई। संघ लोक सेवा आयोग ने 1981 में लोक प्रशासन को स्वतंत्र विषय के रूप में आयोजित परीक्षा के वैकल्पिक विषयों की सूची में इसको सम्मिलित किया। इन्हीं कार्यों से इस विषय को और अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ। वर्तमान में भारत के लगभग समस्त विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन का अध्ययन स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर किया जा रहा है।

1.1.4. प्रशासन विकास के विभिन्न चरण (Various Stages of Administration)

सर्वप्रथम स्वतंत्र विषय के रूप में लोक प्रशासन विषय के अध्ययन–अध्यापन का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रारम्भ हुआ तथा इसके पश्चात ही यह एक पूर्ण शास्त्र के रूप में परिणत हुआ। अतः इस विषय का उद्‌भव संयुक्त राज्य अमेरिका के परिप्रेक्ष्य में ही समझना चाहिए। अमेरिका में जिन कारकों ने लोक प्रशासन को स्वतंत्र शैक्षिक अध्ययन विषय के रूप में विकसित करने में सहयोग दिया वह निम्न प्रकार से है–

1) सरकारी कार्यों की विधियों में संशोधन के लिए आन्दोलनों का प्रभाव।
2) एक ऐसा दृष्टिकोण जो लोक कल्याणकारी राज्य की भावना से भरा हुआ था, उसका क्रमिक विकास होना।
3) सार्वजनिक क्षेत्र के व्यवस्थित क्रियान्वयन के विषयों पर विचार–विमर्श हेतु कार्यशालाओं का होना।
4) वैज्ञानिक प्रबन्ध गतिविधियाँ, एफ. डब्ल्यू. टेलर ने इनका समर्थन किया था।
5) सरकारी क्रियाकलापों के लगातार विस्तार व निपुणता व उत्तरदायित्व के लिए लगातार बढ़ती हुई चिन्ता।

6) वह औद्योगीकरण जो उन्नीसवी शताब्दी में हुआ तथा जिसके कारण विस्तृत स्तर के संगठनों का उदय हुआ।
7) राज्य के उत्तरदायित्वों में वृद्धि तथा समाज में बढ़ती हुई समस्याएँ।
8) तकनीकी व विज्ञान में उन्नति के कारण जनता के जीवन तथा सरकार के क्रियाकलापों पर पड़ने वाला प्रभाव।

लोक प्रशासन का इतिहास एक स्वतंत्र अध्ययन विषय के रूप में लगभग 130 वर्ष प्राचीन माना जाता है। इसके विकास का इतिहास सुगम न होकर उतार–चढ़ाव से भरा है। इसके अध्ययन की सुगमता के लिए इसे पाँच चरणों में विभक्त किया जा सकता है–

1) प्रथम चरण– राजनीतिक प्रशासन द्विभाजन काल (1887–1926)
2) द्वितीय चरण– प्रशासन के सिद्धान्तों का स्वर्ण काल (1927–1937)
3) तृतीय चरण– प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती (1938–1947)
4) चतुर्थ चरण– अन्तःअनुशासनात्मक अध्ययन पर जोर (1948–1970)
5) पंचम चरण– नवीन लोक प्रशासन एवं नवीन लोक प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य (1971–वर्तमान)

1.1.4.1. प्रथम चरण– राजनीतिक प्रशासन द्विभाजन काल (1887–1926) [First Phase– Politics Administration Bifurcation Period (1887–1926)]

लोक प्रशासन का एक स्वतंत्र शैक्षिक विषय के रूप में अध्ययन संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। वुडरो विल्सन को इसके व्यवस्थित अध्ययन का श्रेय दिया जाता है। 1887 में उनके द्वारा लिखा गया एक निबन्ध **'प्रशासन के अध्ययन' (A Study of Administration) 'पॉलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' (Political Science Quarterly)** नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इसे इस अध्ययन विषय के क्षेत्र की पहली युग परिवर्तनीय घटना माना जाता है। इस लेख के द्वारा लोक प्रशासन के एक स्वतंत्र तथा सुव्यवस्थित अध्ययन का आधार प्रस्तुत किया। उनका मत था कि इसके अध्ययन में उन्नत समाज में बढ़ती समस्याओं, प्रशासन कार्यों में वृद्धि व प्रजातंत्रीय स्वरूप में सरकारों के विकास के कारण हुई। अतः इस कारण से वुडरो विल्सन को **'लोक प्रशासन का जनक'** कहते हैं। विल्सन के द्वारा प्रशासन व राजनीति को भिन्न–भिन्न विषय के रूप में पृथक किया गया। उनका विचार था कि राजनीति का सम्बन्ध नियमों के निर्माण से है, जबकि इसके विपरीत प्रशासन का सम्बन्ध उन नियमों का क्रियान्वयन अर्थात् उनको लागू करने से होता है। उनके मतानुसार संविधान निर्माण की तुलना में उसको सुचारू ढंग से चलाना अधिक दुष्कर कार्य है। अतः प्रशासन का एक विज्ञान होना आवश्यक है जिसकी चेष्टा यह रहेगी कि सरकार उचित व सुगमतापूर्वक क्या करती है तथा किस विधि से यह कार्य कम व्यय व उचित तरीके से सम्पन्न किए जा सकते हैं।

विल्सन के विचारों को कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रशासनिक कानून के प्राध्यापक फैंक जे. गुड़नॉव ने अपनी पुस्तक 'राजनीति प्रशासन' (Politics and Administration 1900 in Published) में आगे बढ़ाया। उनका मत था कि राजनीति तथा प्रशासन दोनों पृथक हैं, क्योंकि राजनीति का कार्य राज्य इच्छा को प्रकट करता है जबकि प्रशासन का कार्य उस इच्छा या अभिलाषा को क्रियान्वित करना है। 1926 में एल. डी. व्हाइट की रचना 'इण्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' (Introduction to the Study of Public Administration) का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक का महत्त्वपूर्ण योगदान लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक अध्ययन

पुस्तक के प्रकाशन के उपरान्त इस विषय को अकादमिक वैधता प्राप्त हुयी। अमेरिका विश्वविद्यालयों में इसे पाठ्यक्रम में स्थान मिलना शुरू हुआ। लोक प्रशासन के व्यावहारिक रूप का इस पुस्तक में उल्लेख किया गया। व्हाइट ने राजनीतिक प्रशासन के द्वैत भाव में अपना मत प्रस्तुत किया और यह निष्कर्ष निकाला कि लोक प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य कार्यकुशलता तथा मितव्ययिता है। अतः यह कह सकते हैं, कि प्रथम चरण में दो महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए एक लोक प्रशासन का उदय दूसरा राजनीति तथा प्रशासन में द्विविभाजन। इसी समय 'टेलरवाद' का प्रसार हुआ।

1.1.4.2. द्वितीय चरण– प्रशासन के सिद्धान्तों का स्वर्ण काल (1927–1937) (Second Phase– the Golden Era of Principles of Administration)

इस काल को लोक प्रशासन के सिद्धान्तों का **'स्वर्ण काल'** कहा जाता है। इस काल का मुख्य मत यह था कि प्रशासन के कुछ सिद्धान्त होते हैं जिनको ज्ञात करना व उनका समर्थन करना विद्वानों का कार्य है। इस नवीन मत को प्रकट करते हुए **डब्ल्यू. एफ. विलोबी (W.F. Willoughby)** की प्रथम पुस्तक **'प्रिंसिपल्स ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' (Principles of Public Administration, 1927)** का प्रकाशन हुआ। उनका मत था कि लोक प्रशासन के अनेक सिद्धान्त होते हैं उनके क्रियान्वयन के माध्यम से लोक प्रशासन में विकास हो सकता है। इसी विचारधारा को आगे ले जाने वाली एक दूसरी रचना मेरी पार्क फौले की **'क्रिएटिव एक्सपीरियन्स' (Creative Experience)** थी जिसमें प्रशासन में होने वाले मतभेदों या संघर्षों की तरफ ध्यान केन्द्रित किया गया। सन् 1930 में **'ऑनवर्ड इन्डस्ट्र' (Onward Industry 1930)** की रचना **मूने एवं रैले** द्वारा की गई जिसे बाद में 1939 में 'प्रिंसिपल्स ऑफ ऑर्गेनाइजेशसन' (Principles of Organisation) के नाम से प्रकाशित किया गया। **हेनरी फेयोल** की लिखित 'इण्डस्ट्रियल एण्ड जनरल मैनेजमेण्ट (Industrial and General Management) का अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित किया गया। **लूथर गुलिक एवं उर्विक** ने 'पेपर्स ऑन दि साइंस ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन' (Papers on the Science of Administration) नामक पुस्तक का सम्पादन किया। गुलिक एवं एल.उर्विक ने प्रशासन के कार्यों का वर्णन **'पोस्डकॉर्ब' (POSDCORB)** शब्द में संकलित किया। इस काल के समस्त विचारकों का यह मानना था कि प्रशासन के सर्वव्यापी सिद्धान्तों एवं नीति नियमों का समावेश इसको विज्ञान के समकक्ष रखती है। अतः यह काल लोक प्रशासन के सिद्धान्तों का स्वर्णयुग कहा जाता है।

1.1.4.3. तृतीय चरण– प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती (1938–1947) (Third Phase: Challenging Administration Principles)

लोक प्रशासन की प्रगति में यह समय आलोचनाओं एवं चुनौतियों का रहा है। यह चरण द्वितीय चरण में बनी यान्त्रिक विचारधारा के विरोध में हुयी प्रतिक्रिया से आरम्भ हुआ। इस काल में मुख्यतः लोक प्रशासन के अध्ययन में मानवीय सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता था। शासन के बने बनाये सिद्धान्तों को चुनौती दी गई तथा इन्हें कहावतों की संज्ञा दी गई। इस विषय पर **हॉथोर्न** प्रयोगों की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। **चेस्टर बर्नार्ड** की पुस्तक 'द फंक्शन ऑफ एक्जीक्यूटिव' (The Function of the Executive) प्रकाशित हुई। इसमें मनोवैज्ञानिक तथा व्यवहार पर निर्भर उपकरणों पर संगठनात्मक विवरण के लिए जोर दिया गया। हर्बर्ट साइमन ने अपनी रचना 'एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर' (Administrative Behaviour) में इस तथ्य को सिद्ध किया कि प्रशासन में सिद्धान्त नाम की कोई वस्तु नहीं होती है। **रॉबर्ट डहाल** ने अपनी रचना 'द साइंस ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन– थ्री प्राब्लम्स' (The Science of Public

Administration: Three Problems) में लोक प्रशासन के माध्यम से सिद्धान्तों का पता लगाने में निम्न तीन समस्याओं को प्रस्तुत किया है–

1) प्रशासन में मूल्य बहुलता होती है जबकि इसके विपरीत विज्ञान में मूल्य शून्य होता है।
2) किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न होता है इसलिए प्रशासन के क्रियाकलापों में भिन्नता आना स्वाभाविक है।
3) संकुचित व सीमित राष्ट्रीय तथा ऐतिहासिक सन्दर्भों को आधार बनाकर विश्वव्यापी सिद्धान्तों को निर्मित करना।

इसी समय (1946–1947) मैक्स वेबर सत्ता, नौकरशाही तथा आदर्श प्रारूप के सम्बन्ध में विचारों ने नई चुनौतियाँ लोक प्रशासन के समक्ष खड़ी कर दी।

1.1.4.4. चतुर्थ चरण– अन्तःअनुशासनात्मक अध्ययन पर बल (1948–1970) (Fourth Phase: Emphasis on Inter-Disciplinary Studies)

साइमन द्वारा की गई सिद्धान्तों की आलोचना के कारण इस दृष्टिकोण की पूरी तरह समाप्ति हो गई। इस विषय की संभाव्यता पर ही संदेह उत्पन्न हुआ। साइमन की विचारधारा ने समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति विज्ञान तथा अर्थशास्त्र को लोक प्रशासन से सम्बद्ध करके उसकी अध्ययन सीमा को विस्तृत कर दिया। लोक प्रशासन एक स्वतंत्र विषय माना जाएगा अथवा नहीं इस प्रश्न पर विवाद उठने के कारण इस काल को स्वरूप की संकटावस्था (Crisis of Identity) के नाम से भी जानते है। इस काल में एक विशेष तथ्य यह था कि जहाँ एक तरफ लोक प्रशासन विषय अपनी अलग पहचान को खो रहा था, वहीं दूसरी तरफ लोक प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में विकास प्रशासन व तुलनात्मक प्रशासन का आर्विभाव हुआ।

रॉबर्ट डहल का मानना था कि यदि लोक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हो रहा है तो इसको विज्ञान कैसे माना जा सकता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा को आगे ले जाने में **शेखुड**, जॉन माण्टगोमरी, फ्रेडरिग्ज, रिचर्ड गेबल, आदि विद्वानों का विशेष योगदान रहा है। अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को एक स्वतंत्र विषय के रूप में शुरू किया गया। लोक प्रशासन के क्षेत्र में 1950–1960 के मध्य विकास प्रशासन का दृष्टिकोण विकसित हुआ। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम **एडवर्ड डब्ल्यू वाइडनर** ने किया। एक भारतीय प्रशासक यू. एल. गोस्वामी ने **विकास प्रशासन** शब्द का सबसे पहले प्रयोग किया। इसका प्रयोग उनके द्वारा लिखे गये लेख 'दि स्ट्रक्चर ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया' में किया गया, जिसका प्रकाशन इंडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में किया गया था। विकास प्रशासन की अवधारणा का प्रतिपादन विभिन्न पहलुओं में अलग–अलग तरह से किया गया परन्तु सभी विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि विकास प्रशासन का अर्थ सामाजिक अर्थतंत्र का एक सुनियोजित रूपान्तरण है।

1.1.4.5. पंचम चरण–नवीन लोक प्रशासन एवं नवीन लोक प्रबन्ध परिप्रेक्ष्य (1971–वर्तमान) (Fifth Phase: New Public Administration and New Public Management Perspecting)

लोक प्रशासन विषय का सर्वांगीण विकास इस काल में हुआ। इसके विकास में योगदान देने वाले विद्वानों में **फ्रेड डब्ल्यू. रिग्स, वाल्डो** के नाम विख्यात हैं। लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन पर फ्रेड रिग्स ने बल दिया है और उन्होंने विकासशील देश के सामाजिक अध्ययन हेतु प्रतिमानों व प्रतिरूपों को निर्मित किया। लोक प्रशासन के क्षेत्र में

विभिन्न शास्त्रों के विद्वानों का समावेश हुआ। विभिन्न शास्त्रों जैसे–राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र के विद्वानों को इसमें रुचि उत्पन्न होने पर लोक प्रशासन अन्तर्विषयी बन कर उभरा। लोक प्रशासन के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में 1968 के उपरान्त 'नवीन लोक प्रशासन' के उत्कर्ष ने इसे एक वैभव प्रदान किया। नवीन लोक प्रशासन के बारे में मान्यता है कि लोक प्रशासन के प्रवर्तक **ड्वाइड वाल्डो** को कहा जाता है। अन्य कुछ विद्वान जो इससे सम्बन्धित हैं वह विन्सेण्ट ओस्ट्रोम, फेंक मेरिनी आदि हैं। लोकचयन दृष्टिकोण एवं प्रबन्धवाद पर नवीन लोक प्रबन्ध की विचारधारा आश्रित है। इसके द्वारा निजी क्षेत्र एवं बाजार की उपयोगिता पर बल दिया गया है। प्रबन्धवाद को प्रशासन की कड़ी के रूप में नवीन लोक प्रबन्ध द्वारा बल दिया गया है। लोक प्रशासन में प्रतिद्वन्दिता का भाव भी इसी के कारण सम्मिलित होता है। इसकी प्रमुख विशेषताओं में निजीकरण, बाजारीकरण आदि सम्मिलित हैं। शेफर हुड ने 1991 में नवीन लोक प्रबन्ध की रचना की। वर्तमान में लोक प्रशासन में एक नवीन अधिगम पर बल दिया जाता है, जिसे 'नवीन लोक सेवा उपागम' (The New Public Cervical Approach – NPC) के नाम से जाना गया।

इस दृष्टिकोण के आधार पर समस्त लोक प्रबन्ध का बल समुदाय, नागरिक तथा नागरिक समाज पर आधारित होना चाहिए। नागरिकों के सहयोग तथा उनके हितों को पूर्ण करने के लिए लोक सेवा (जिसको नौकरशाही भी कहते हैं) को दृष्टि केन्द्रित करनी चाहिए न कि समाज को संयमित करने व उसको क्रियान्वित करने में। इस उपागम का विस्तृत वर्णन **जे. वी. डेनहार्ड** व **आर. बी. डेनहार्ड** ने स्वयं की रचना 'दि न्यू पब्लिक सर्विस' में की है। अमेरिकी विश्वविद्यालयों में इसको शैक्षणिक रूप में सम्मिलित किया गया।

1.2. प्रशासनिक विचारधारा का विकास (EVOLUTION OF ADMINISTRATIVE THOUGHT)

प्रशासनिक विचारों एवं सिद्धान्तों की उत्पत्ति को प्रागैतिहासिक काल से ज्ञात किया जा सकता है। उस समय से, मनुष्य ने संगठित समूहों या विभिन्न समूहों से बने समाज में एक साथ रहना प्रारम्भ कर दिया। इन प्रयत्नों ने उन्हें अपने कार्यों को व्यवस्थित करने तथा कुशल एवं उत्पादक तरीके से अपनी गतिविधियों को पूर्ण करने में सहायता की है। समय के साथ प्रबन्धन के सिद्धान्त विकसित किए गए है तथा यह विकास की निरन्तर प्रक्रिया में शामिल है। प्रबन्धन के सिद्धान्त प्रकृति में लचीले है तथा इसका अनुप्रयोग स्थिति की प्रकृति पर व्यापक रूप से निर्भर करता है। प्रबन्धन के सिद्धान्तों का आधार व्यापक है तथा यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता करते हैं। ये प्रसिद्ध है तथा विश्व भर में स्वीकृति है। चूँकि प्रबन्धन के सिद्धान्त मानव व्यवहार से सम्बन्धित है, ये परिवर्तित तथा विकसित होते रहते है।

इस प्रकार के प्रबन्धन प्रथाओं तथा सिद्धान्तों के प्रमाण प्राचीन काल से पाए गए है। **उदाहरण के लिए**– 3,000 ईसा पूर्व में, सुमेरियन सभ्यता पुरोहितों के प्रबन्ध के अधीन सुव्यवस्थित कर संग्रहण प्रणाली का अनुसरण कर रही थी। मिस्र सभ्यता का इतिहास पिरामिडों के निर्माण द्वारा मानव एवं भौतिक संसाधनों के संगठन का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। अब तक, रोमन साम्राज्य के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक कार्यों के संगठन को सबसे कुशल प्रबन्धन प्रथा माना जाता है। **कौटिल्य का अर्थशास्त्र** राज्य के कार्यों के प्रबन्धन की सर्वोत्तम विधियों में से एक है। 1990 के आरम्भ में विभिन्न औपचारिक प्रबन्धन सिद्धान्तों का विकास आरम्भ हुआ। औद्योगिक क्रांति के युग ने

सामाजिक संसाधनों के कुशल प्रबन्धन की आवश्यकता को मान्यता दिया है। इसमें भाप इंजन तथा अन्य मशीनीकृत उत्पादन साधनों का विकास किया गया ताकि बड़े स्तर पर उत्पादन का प्रबन्ध किया जा सके तथा भौतिक एवं मानव संसाधनों का उपयोग किया जा सके। प्रबंधन के विचार में प्रमुख प्रणालियाँ शामिल है जिन्हें तीन प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हे जैसे कि यहाँ दर्शाया गया है–

मुख्य प्रबंधन विशेषज्ञ और उनके योगदान

(Major Management Specialist and their Contributors)

प्रबन्धन प्रणाली का प्रमुख वर्गीकरण (Major Classification of administrative System)		प्रशासनिक विशेषज्ञ (Management Specialist)
1) परम्परागत दृष्टिकोण (Classical Approach)	i) वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)	a) एफ डब्ल्यू टेलर (Frederick W. Taylor) b) हेनरी गैंट (Henry Gantt) c) फ्रैंक और लिलियन गिलब्रेथ (Frank and Lillian Gilbreth)
	ii) प्रशासनिक प्रबन्ध (Administrative Management)	हेनरी फेयोल (Henry Fayol)
	iii) नौकरशाही प्रबन्ध (Bureaucracy)	मैक्स बेबर (Max Weber)
2) व्यावहारिक दृष्टिकोण (Behavioural Approach)	i) मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण (Human Relation Approach)	एल्टन मेयो (Elton Mayo)
	ii) व्यावहारिक विज्ञान दृष्टिकोण (Behavioural Science Approach)	a) मैस्लो (Maslow) b) हर्जबर्ग (Herzberg) c) मैक ग्रेगर (McGregor) d) मेरी पार्कर फोलेट (Mary Parker Follett) e) ब्लेक एंड मॉटॉन (Blake and Mouton) f) चेस्टर बर्नार्ड (Chester Bernard)
3) आधुनिक दृष्टिकोण (Modern Approach)	i) मात्रात्मक दृष्टिकोण (Quantitative Approach)	a) रसेल एल एकॉफ (Russel L. Ackoff) b) एफ डब्ल्यू लैंचेस्टर (F.W. Lanchester) c) थॉमस ए एडीसन (Thomas A. Edison)
	ii) प्रणाली दृष्टिकोण (System Approach)	चर्चमैन वेस्ट (Churchman West)
	iii) आकस्मिकता दृष्टिकोण (Contingency Theory)	पॉल हर्सी (Paul Hersey)
	iv) सामाजिक प्रणाली दृष्टिकोण (Social System Approach)	विलफ्रेडो पैरटो (Vilfredo Pareto)
	v) निर्णय लेने वाला दृष्टिकोण (Decision-making Approach)	हर्बर्ट ए साइमन (Herbert A. Simon)

1.3. कौटिल्य के प्रशासनिक विचार (ADMINISTRATIVE IDEAS OF KAUTILYA)

1.3.1. कौटिल्य का जीवन परिचय (Life Introduction of Kautilya)

कौटिल्य, चाणक्य या विष्णुगुप्त, भारत के इतिहास में प्रबुद्ध राजनीतिज्ञ तथा मंत्री के रूप में जाने जाते हैं। कौटिल्य एक उत्कृष्ट वर्ग के दार्शनिक तथा एक नीति–उपदेशक थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित सिद्धान्त वर्तमान राजनीति एवं कूटनीति के सन्दर्भ में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। चाणक्य/कौटिल्य अनुमानतः 375 ई.पू.–283 ई.पू. तक चन्द्रगुप्त मौर्य के महामंत्री थे। उन्होंने नन्द वंश का नाश करके चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा बनाया। **मुद्राराक्षस के अनुसार**, इनका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था। कथासरित्सागर, विष्णुपुराण, भागवतपुराण आदि में तथा ग्रन्थों में चाणक्य/कौटिल्य का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त बौद्ध ग्रन्थों में भी इनकी कथा मिलती है। बुद्धघोष की बनाई हुई विनयपिटक की टीका महायान, स्थावर रचित महावंश की टीका में चाणक्य का वृतान्त दिया हुआ है। ब्राह्मण एवं बौद्ध ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि उनका जन्म तक्षशिला के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्हें वेदों तथा शास्त्रों का उचित ज्ञान था। वह तक्षशिला के शिक्षा केन्द्र के प्रमुख आचार्य थे। कौटिल्य एक यर्थाथवादी विचारक थे। जो **'भारत का मैकियावेली'** भी कहलाए। पुराणों में इन्हें द्विजर्षभ (श्रेष्ठ ब्राह्मण) कहा गया है। एक बार राजा नंद ने अपनी यज्ञशाला में उनको अपमानित किया था, जिसके क्रोध में आकर उन्होंने सम्पूर्ण नंद वंश को नष्ट करने की प्रतिज्ञा ली। उन्होंने चंद्रगुप्त मौर्य को अपना अस्त्र बनाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। इनके जीवन की घटनाओं का सम्बन्ध विशेषतः चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यप्राप्ति से है। ये तत्कालीन समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। वह कुरूप होते हुए भी शारीरिक रूप से बलिष्ठ थे।

इनकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' के अवलोकन से उनकी प्रतिभा, बहुआयामी व्यक्तित्व तथा दूरदर्शिता का पूर्ण आभास होता है। कौटिल्य ने राज्य को सामाजिक जीवन में साध्य के रूप में सर्वोच्च माना है। जब एकछत्र भारत का सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य बना तब कौटिल्य प्रधानमंत्री तथा प्रधान पुरोहित के पद पर थे। जैन ग्रंथ के अनुसार, चंद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात बिंदुसार के समय में भी कुछ समय तक चाणक्य प्रधानमंत्री पद पर बने रहे। कालान्तर में उन्होंने शासन–कार्य त्यागकर सन्यास ग्रहण कर लिया।

1.3.2. कौटिल्य के अर्थशास्त्र का परिचय (Introduction to Kautilya's Arthashastra)

कौटिल्य राजनीतिशास्त्र के विद्वान थे, और उन्होंने अर्थशास्त्र नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की। प्राचीन समय का 'अर्थशास्त्र' वर्तमान 'अर्थशास्त्र' के समान न होकर राजनीतिशास्त्र के पर्यायवाची के रूप में था। अर्थशास्त्र की रचना 'संस्कृत' भाषा में हुई है। कौटिल्य के अनुसार "अर्थ सम्पूर्ण मानवों का जीवन या उनकी वृत्ति है अर्थात मानवों से भरी पृथ्वी अर्थ है। वह शास्त्र जो पृथ्वी की प्राप्ति एवं सरंक्षण का साधन है, वह अर्थशास्त्र है।"

यह ग्रंथ मौर्यकाल और मौर्योत्तर काल की जानकारी प्रदान करता है। कौटिल्य की रचना 'अर्थशास्त्र' में निम्नलिखित बिन्दु हैं–

1) अर्थशास्त्र विशेष रूप से विभागीय अध्यक्षों का ही वर्णन करता है क्योंकि नगर तथा सेना की परिषदों का स्वरूप अशासकीय था। नगर और सेना का उल्लेख नहीं प्राप्त होता।
2) अर्थशास्त्र सामान्य राज्य एवं उसके शासनतंत्र का विवरण प्रस्तुत करता है। इसमें हिमालय से लेकर समुद्र–तट तक का अधिकार–क्षेत्र चक्रवर्ती सम्राट को बताया गया है। इसके अनुसार, कौटिल्य विस्तृत साम्राज्य से परिचित था।
3) कौटिल्य द्वारा चित्रित समाज में नियोग प्रथा, विधवा विवाह आदि का प्रचलन था। उन्होने 'युक्त' शब्द का प्रयोग अधिकारी के सन्दर्भ में किया है। यह शब्द अशोक के लेखों में भी प्राप्त होता है। इसमें रुद्र, कंबोज, लिच्छवि, मल्ल आदि गणराज्य भी उल्लिखित है। इससे ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ मौर्य युग के प्रारंभ में लिखा गया था।
4) अर्थशास्त्र में बौद्धों के प्रति बहुत कम सम्मान दिखाया गया है। लोगों को सन्यास ग्रहण करने से पूर्व अपने परिवार के पोषण की व्यवस्था करने को कहा गया। इसके आधार पर स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ बौद्ध धर्म के लोकप्रिय होने के पूर्व ही लिखा गया था।
5) कौटिल्य और मेगस्थनीज के व्याख्यानों में कई समानताएँ हैं। मेगस्थनीज की भाँति कौटिल्य भी वर्णन करते हैं कि जब चंद्रगुप्त आखेट के लिए जाते थे, तो उनके साथ राजकीय जुलूस भी होता था। मार्ग की उचित सुरक्षा रखी जाती थी। दोनों के अनुसार सम्राट की अंगरक्षक महिलाएँ होती थीं।
6) कौटिल्य ने अपने ग्रंथ में प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप 'प्रजा का हित ही राजा का चरम लक्ष्य' स्पष्ट होता है। वास्तव में यह ग्रंथ चंद्रगुप्त मौर्य की शासन–व्यवस्था की उचित जानकारी प्रदान करता है। कौटिल्य मात्र राजनीतिज्ञ ही नहीं, बल्कि राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में एक नवीन सिद्धान्त के जन्मदाता भी थे। 'अर्थशास्त्र' को राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में वही स्थान प्राप्त है जो पाणिनि की अष्टाध्यायी को व्याकरण के क्षेत्र में है।

1.3.3. कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अधिकरण (Tribunals of Kautilya's Arthashastra)

अर्थशास्त्र के 15 अधिकरण निम्नलिखित है–

1) **प्रथम अधिकरण**–राजत्व से सम्बन्धित हैं।
2) **दूसरा अधिकरण**–नागरिक प्रशासन और प्रशासन के विभाग का उल्लेख किया गया है।
3) **तीसरा अधिकरण**–न्याय प्रणाली है जिसमें कानून एवं व्यवस्था का वर्णन है।
4) **चौथा अधिकरण**–न्याय प्रणाली का वर्णन है परन्तु इसमें दण्ड व्यवस्था का वर्णन नहीं है।
5) **पाँचवें अधिकरण**–राजा, अधिकारी, कर्मचारियों के कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का उल्लेख प्राप्त होता है।
6) **छठा अधिकरण**–सात अंगों या सप्तांग सिद्धान्त का वर्णन है। ये अंग राज्य से सम्बन्धित हैं– **स्वामी**– राजा, **अमात्य**–मंत्री, **पुर या जनपद**–भूमि एवं प्रजा, **दुर्ग**–राज्य की बाहें, **कोष**–राज्य का मुख्य, **सेना**–राज्य का मस्तिष्क एवं **सुहृद**–राजा का मित्र।
7) **सातवाँ अधिकरण**–इसमें षड्गुणों (विदेशी नीति) की विवेचना की गयी है।
8) **आठवाँ अधिकरण**–राज्य द्वारा युद्ध विजय–पराजय से जुड़ा है।
9) **नवाँ अधिकरण**–सेना, राज्य पर विपत्तियों से सम्बन्धित विचार शामिल है। इसमें शक्ति, आक्रमण, सैन्य संग्रह एवं संगठन की चर्चा की गई है।

10) **दसवाँ अधिकरण**–संग्राम या युद्धनीति से सम्बन्धित है।

11) **ग्यारहवाँ अधिकरण**–युद्ध सम्बन्धी व्यवहार की चर्चा की गयी है।

12) **बारहवाँ अधिकरण**–युद्ध जीतने हेतु उचित–अनुचित सभी प्रकार की विधियों का वर्णन प्रदान करता है।

13) **तेरहवाँ अधिकरण**–शत्रुओं को परजित कर राज्य की सुरक्षा का वर्णन करता हैं।

14) **चौदहवाँ अधिकरण**–शत्रु वध के उपाय और शत्रु द्वारा प्रयुक्त घातक प्रयोगों के निवारण का वर्णन करता है।

15) **पन्द्रहवाँ अधिकरण**–तन्त्रयुक्ति या कार्ययोजना का विस्तृत वर्णन किया गया है।

1.3.4. सप्तांग सिद्धान्त (Saptang Theory)

कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धान्त में राज्य के सात अंगों का उल्लेख किया है। सप्तांग दो शब्दों से मिलकर बना है सप्त अर्थात् सात एवं अंग अर्थात् भाग। कौटिल्य ने राज्य के सभी अंगों की तुलना शरीर के अंगों से की है। जिस प्रकार मानव शरीर का अपना महत्त्व है, जो शरीर को उपयोगी एवं कार्य करने के योग्य बनाता है, इसी प्रकार कौटिल्य ने राज्य के सात अंगों के महत्त्व का उल्लेख किया है जो किसी राज्य को चलाने और उसकी रक्षा हेतु बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, एक राज्य अथवा सुशासित साम्राज्य सात आवश्यक तत्त्वों या अंगों से बना होता है जो इसकी स्थिरता एवं समृद्धि में योगदान करते हैं। कौटिल्य ने राज्य के सात अंग (सप्तांग) बताए हैं, इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

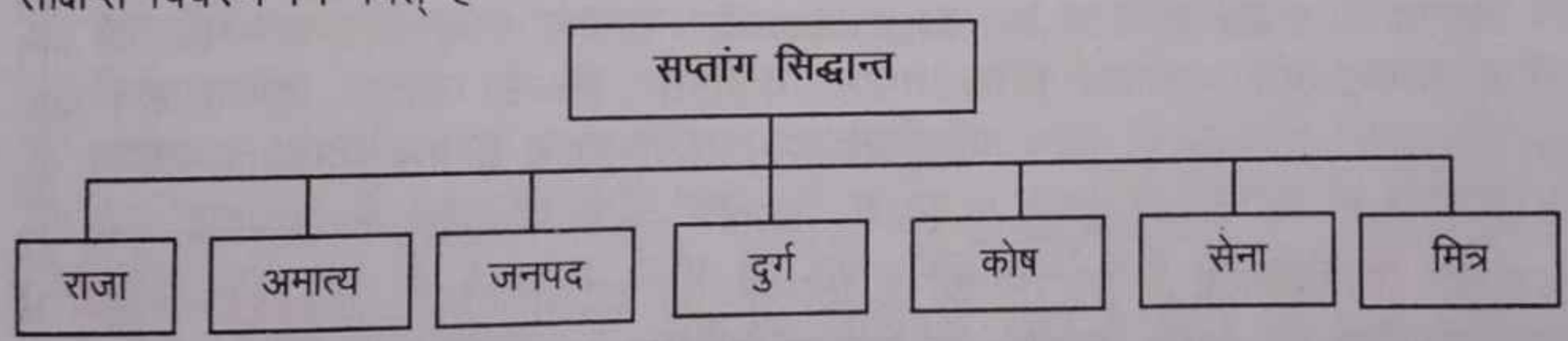

1) **राजा (King)**–कौटिल्य ने राजा को सर्वोपरि माना हैं। कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता थी कि राज्य की सफलता राजा पर निर्भर करती है। उनका मानना है कि राजा को दूरदर्शी, आत्मसंयमी, कुलीन, स्वस्थ, बौद्धिक गुणों से सम्पन्न तथा महावीर होना चाहिए। वे राजा को कल्याणकारी तथा जनता के प्रति उत्तरदायी होने की सलाह देते हैं क्योंकि उनके अनुसार राजा कर्तव्यों से बँधा होता है। कौटिल्य राजा को राज्य का केंद्र व अभिन्न अंग मानते हैं तथा उन्होंने राजा की तुलना शीर्ष से की है परन्तु उसे निरंकुश शक्तियाँ नहीं देते। उन्होंने राजा की दिनचर्या को अर्थात् वे राजा के लिए दिन को तथा रात को आठ–आठ पहरों में विभाजित किया हैं। बी.पी. सिंह के अनुसार, "कौटिल्य की शासन प्रणाली में राजा शासन की धुरी है और शासन संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेने और शासन को गति प्रदान करने में राजा का एकमात्र स्थान है।"

राजा में कौटिल्य आदर्श रूप देखते है अर्थात् उनकी दृष्टि में राजा सर्वगुण सम्पन्न एक आदर्श व्यक्ति है। कौटिल्य के अनुसार राजा को दृढ़ निश्चयी, वृद्धों के प्रति सम्मान का भाव रखने वाला, सत्यवादी, दूरदर्शी, उत्साही विवेकपूर्ण एवं युद्ध में चतुर होना चाहिए। एक राजा को कठिन समय में साहस नहीं छोड़ना चाहिए बल्कि समस्या का समाधान करने की क्षमता होनी चाहिए। कौटिल्य के अनुसार राजा में आध्यात्मिक व नैतिक गुण होना चाहिए। उनका मत है कि कुछ गुण तो स्वभाव से

होते है किन्तु कुछ गुण अभ्यास, अध्ययन से विकसित होते हैं। इसी कारण कौटिल्य राजा की शिक्षा पर अत्यधिक जोर देता है। कौटिल्य के अनुसार, "जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी जल्द नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित राजकुल बिना किसी युद्ध के नष्ट हो जाते हैं।" कौटिल्य का मानना है कि राजा को दण्ड नीति, सैनिक शिक्षा, राज्य शासन, इतिहास, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, मानवशास्त्र, व अन्य के विषय में जानकारी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा को चाहिए कि वह सदैव अपनी इन्द्रियों पर अंकुश रखे।

2) **अमात्य या मंत्री (Amatya or Minister)**–कौटिल्य ने मन्त्री या अमात्य को राज्य की 'आँख' की संज्ञा प्रदान की है। उनके अनुसार अमात्य तथा राजा एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं। अमात्य के अन्तर्गत् कौटिल्य मंत्री तथा प्रशासनिक अधिकारियों को रखते है। अमात्य उसी व्यक्ति को चुना जाना चाहिए जो अपनी जिम्मेदारियों को सँभाल सके तथा राजा के कार्यों में उसके सहयोगी की तरह भूमिका निभा सके। कौटिल्य के अनुसार सभी कार्यों की सफलता अमात्यों पर निर्भर करती है। अमात्यों द्वारा उपनिवेशों की स्थापना, अपराधियों को दण्ड एवं राज्य करों का निग्रह सम्पन्न होता है। कौटिल्य का मत है कि योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति को ही अमात्य बनाना चाहिए। अमात्य की नियुक्ति चरित्र परीक्षण के पश्चात् ही होना चाहिए।

3) **जनपद (District)**–जनपद का अर्थ है "जनयुक्त भूमि"। कौटिल्य ने जनपद की तुलना "पैर" से की है। कौटिल्य का मानना है कि जनपद के अभाव में राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। कौटिल्य ने जनसंख्या तथा भू–भाग दोनों को जनपद माना है। कौटिल्य का मत है कि प्रत्येक जनपद में कम से कम 100 घर एवं अधिकतम 500 घर वाले गाँव बसाए जाए जिसमें किसान व शूद्र अधिक हो। एक गाँव दूसरे गाँव से दो कोस से अधिक दूरी पर स्थित न हो। कौटिल्य ने जनपद के संगठन के सम्बन्ध में स्पष्ट करता है कि, दस गाँवों के समूह में "संग्रहण", दो सौ गाँवों के समूह के बीच "खार्वटिक", चार सौ गाँवों के समूह के बीच एक "द्रोणमुख" तथा आठ सौ गाँवों में एक "स्थानीय" अधिकारी की स्थापना की जाए। इस तरह कौटिल्य ने प्रशासनिक दृष्टि से जनपद, स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण एवं गाँव में विभाजित किया था। कौटिल्य राज्य के छोटे आकार में विश्वास करते थे। जनपद के पास शत्रु राजा के विरोधियों की संख्या अधिक होनी चाहिए। कौटिल्य ने जनपद की जनता के संदर्भ में स्पष्ट किया है कि वह निष्ठावान, स्वाभिमानी एवं सम्पन्न होनी चाहिए।

4) **दुर्ग (Durg)**–कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में दो प्रकार के दुर्ग का उल्लेख किया है–दुर्ग विधान एवं दुर्ग निवेश। कौटिल्य का दुर्ग विधान से अभिप्राय मुख्य दुर्ग से है तथा दुर्ग निवेश से अभिप्राय दुर्ग के अन्दर के भवनों एवं राज्यों के अन्दर महत्त्वपूर्ण स्थानों पर निर्मित भवनों से है। राज्य की रक्षात्मक एवं आक्रामक शक्ति दोनों का प्रतीक दुर्ग को माना जाता है। प्रत्येक राज्य की सुरक्षा हेतु सुदृढ़ किला जरूरी होता है। किले में सेना की मोर्चाबंदी, आक्रमण हेतु गुप्त निकास द्वार, गोला बारूद, भोजन की व्यवस्था होनी चाहिए। कौटिल्य ने दुर्ग की तुलना **"बाँहों"** या **"भुजाओं"** से की है तथा उन्होंने चार प्रकार के दुर्गों की चर्चा की है–

i) **औदिक दुर्ग**–जिसके चारों ओर पानी हो।
ii) **पार्वत दुर्ग**–जिसके चारों ओर चट्टानें हों।
iii) **धान्वन दुर्ग**–जिसके चारों ओर ऊसर भूमि।
iv) **वन दुर्ग**–जिसके चारों ओर वन तथा जंगल हो।

5) **कोष (Treasury)**–कौटिल्य ने कोष को राज्य का मुख्य अंग माना है क्योंकि उनके अनुसार कोष से ही कोई राज्य वृद्धि करता है तथा शक्तिशाली बने रहने के लिए कोष के द्वारा ही अपनी सेना का भरण–पोषण करता है। उन्होंने इसकी तुलना **"मुख"** से की है। उन्होंने कोष में वृद्धि का मार्ग करारोपण बताया है जिसमें प्रजा को अनाज का छठा, व्यापार का दसवाँ तथा पशु धन के लाभ का पचासवाँ भाग राजा को कर के रूप में अदा करना होगा।

कौटिल्य के अनुसार, "राजा प्रजा से इस तरह संग्रह करे जैसे माली बगिया से पके–पके फल लेता है। प्रजा यदि कर देने में असमर्थ है तो उसे कच्चे फल की तरह ग्रहण न किया जाए क्योंकि अशक्त प्रजा से कर संग्रह उसमें असंतोष अथवा विद्रोह करने का कारण होता है।"

6) **दंड या सेना (Punishment or Army)**–प्राचीन भारत के सभी चिन्तकों ने दंड को अत्यधिक महत्त्व दिया है। दंड का प्रयोग कौटिल्य ने सेना के सन्दर्भ में किया है क्योंकि सेना राज्य की सुरक्षा की प्रतीक है। कौटिल्य ने सेना की तुलना **"मस्तिष्क"** से की है। उन्होंने सेना के चार प्रकार बताए हैं– हस्ति सेना, अश्व सेना, रथ सेना तथा पैदल सेना। उनके अनुसार सेना ऐसी होनी चाहिए जो साहसी हो, बलशाली हो तथा जिसके हर सैनिक के हृदय में देशप्रेम हो तथा वीरगति को प्राप्त हो जाने पर जिसके परिवार को उस पर अभिमान हो।

कौटिल्य के अनुसार, जिस राजा के पास शक्तिशाली सैन्य बल होता है उसके शत्रु भी उसके मित्र बन जाते हैं। कौटिल्य का मत है कि सेना में क्षत्रियों को अधिक शामिल करना चाहिए। सैनिकों को स्वाभिमानी होना चाहिए तथा राजा को भी उनकी बेहतर सेवा के बदले उचित वेतन भुगतान की व्यवस्था करनी चाहिए कौटिल्य का मानना है कि राजा को सदैव आपातकाल हेतु तैयार रहना चाहिए तथा आपातकाल की स्थिति में मित्रों की सहायता से परिस्थिति का सामना करना चाहिए।

7) **मित्र (Friends)**–कौटिल्य ने मित्र को **"कान"** भी कहा है। उनके अनुसार राज्य की उन्नति के लिए तथा विपत्ति के समय सहायता के लिए राज्य को मित्रों की आवश्यकता होती है। कौटिल्य के अनुसार, राज्य की प्रगति हेतु एवं विपत्तियों में सहायता हेतु मित्रों की आवश्यकता होती है। मित्र वंश परंपरागत, विश्वासी, स्थायी एवं हितैषी होना चाहिए। मित्र अथवा सहयोगी बनाना राजा की कूटनीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यहाँ सहयोगियों से अभिप्राय दूसरे राज्यों के राजाओं से है।

सहयोगी बनाना मात्र एक कूटनीतिक दक्षता है। इसका सम्बन्ध विदेशी–सम्बन्धों से है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विदेश नीति एवं कूटनीति पर विस्तृत वर्णन मिलता है। राजा द्वारा प्रधानमन्त्री व पुरोहित की नियुक्ति उनके चरित्र की भलीभाँति जाँच (उपधा परीक्षण) के बाद की जाती थी। ये लोग मन्त्रिमण्डल के अन्तरंग सदस्य थे। इनके अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् भी होती थी।

सम्राट पाँच विषयों पर मंत्रियों से सलाह लेता था। यह विषय निम्नलिखित थे–

i) देश रक्षा तथा विदेशों से सम्बन्ध,
ii) राज्य के आय के साधन,
iii) किसी कार्य का समय तथा स्थान का निर्धारण,
iv) आकस्मिक आपदाओं के लिए व्यवस्था करना,
v) कार्य सिद्धि अर्थात् शासन को सुचारु रूप से चलाना।

सप्तांग सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Saptang Theory)

कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती हैं–

1) कौटिल्य ने राज्य के सावयव सिद्धान्त का समर्थन किया हैं। राज्य को शरीर कहना अनुचित हैं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि सावयव सिद्धान्त में सत्यांश है, परन्तु यह पूर्णतः सत्य नहीं हैं, लेकिन इस आधार पर सप्तांग सिद्धान्त की आलोचना करना अनुचित हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया हैं।
2) वर्तमान समय में राज्य के चार आवश्यक तत्त्व जनसंख्या, भू–भाग, सरकार एवं सम्प्रभुता आवश्यक माने जाते हैं। ऐसा माना जाता है की कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धान्त में इनका उल्लेख नहीं किया हैं। परन्तु यह आलोचना अनुचित हैं। जनपद में जनसंख्या एवं भू–भाग, अमात्य में सरकार एवं राजा में सम्प्रभुता का गुण निहित हैं।
3) कौटिल्य ने दुर्ग, सेना, कोष एवं मित्र को राज्य का आवश्यक अंग माना हैं। ये अंग राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक हो सकते हैं लेकिन इनके अभाव में राज्य का अस्तित्व समाप्त नहीं होता है।
4) कौटिल्य के समर्थन में यह कहा जा सकता हैं कि युद्ध के परिवर्तित स्वरूप ने दुर्ग की आवश्यकता को समाप्त कर दिया हैं तथापि कोष, सेना एवं मित्र की राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से अवहेलना नहीं की जा सकती।
5) कौटिल्य ने केवल राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था का उल्लेख किया हैं, तथा उसमें प्रजातंत्र की उपेक्षा की गई हैं।
6) प्राचीन भारत की राजतन्त्रीय व्यवस्था में पुरोहित का पद सदैव महत्त्वपूर्ण रहा हैं। इसे कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धान्त में कोई स्थान नहीं दिया हैं।

उपरोक्त आलोचना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती है। वर्तमान राज्य के तत्त्व भी कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त में अंतर्निहित है। उदाहरण के लिए– स्वामी में संप्रभुता, अमात्य में सरकार, जनपद में जनसंख्या एवं भू–भाग शामिल है। अर्थात् भाव एक ही है केवल शब्द भिन्न है। राज्य का ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है जिसका सप्तांग सिद्धान्त में उल्लेख न किया गया हो। अतः कौटिल्य को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उसने सप्तांग सिद्धान्त के माध्यम से राज्य को अधिक लौकिक एवं धर्मनिरपेक्ष स्वरूप प्रदान किया है। सप्तांग सिद्धान्त के सभी तत्त्वों का समान महत्त्व है। अर्थात् यदि एक भी तत्त्व कमजोर होगा तो अन्य सभी तत्त्व प्रभावित होंगे। राज्य व्यवस्था का सफल संचालन इनके परस्पर सहयोग से ही हो सकता है।

1.3.5. कौटिल्य के राजा (King of Kautilya)

कौटिल्य के राजा का वर्णन निम्नलिखित आधारों पर किया जा सकता है–

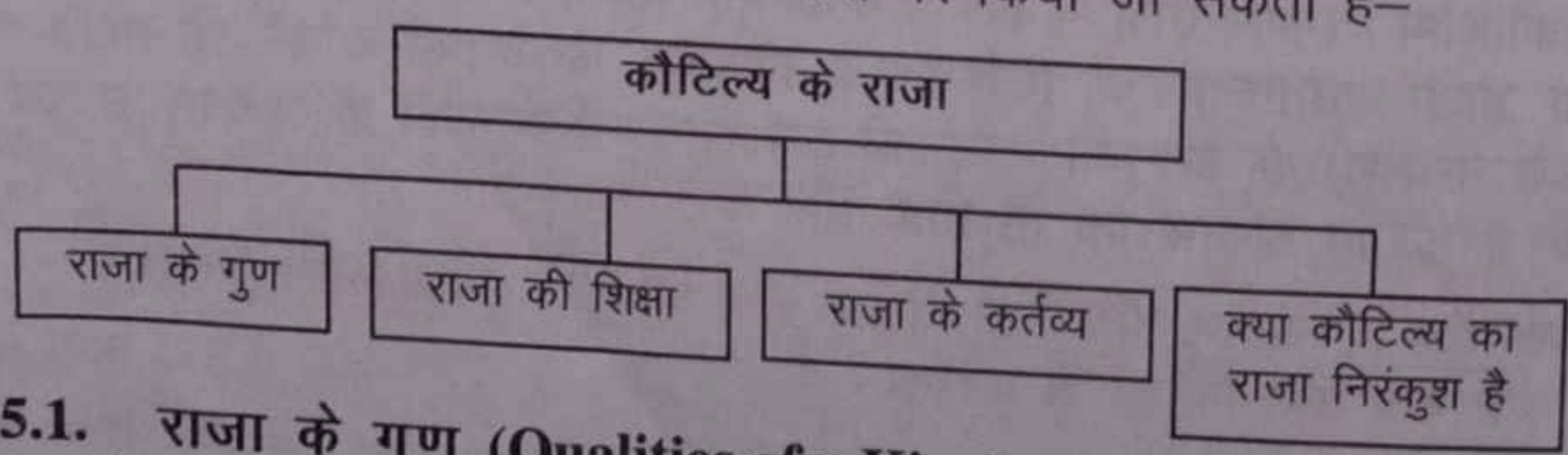

1.3.5.1. राजा के गुण (Qualities of a King)

कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धान्त में राजा को अधिक महत्त्व दिया है। वह राजा को सिर्फ शासक ही नहीं बल्कि राजर्षि मानते है जो प्लेटो के दार्शनिक राजा से किसी प्रकार से कम नहीं है।

कौटिल्य ने राजा के निम्न आवश्यक गुण बताए है।

1) राजा कुलीन, धर्म को मानने वाला, मर्यादित, विचारशील विवेकपूर्ण, सत्यवादी, कृतज्ञ, दृढ़ निश्चयी, उत्साही एवं युद्ध में परांगत होना आवश्यक है। उसे स्मरण शक्ति बुद्धि तथा बल में भी सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए।
2) आपदा के समय प्रजा का निर्वाहन करने एवं शत्रु की दुर्बलता को पहचानने की योग्यता का होना आवश्यक है।
3) राजा को लोभ, मोह, काम, क्रोध एवं चंचलता से परे होना चाहिए।
4) राजा में राजकोष में वृद्धि करने की निपुणता अनिवार्य रूप से होनी चाहिए।
5) राजा को हमेशा गरीबों वृद्धों, अपंगों की मदद करनी चाहिए।

1.3.5.2. राजा की शिक्षा (King's Education)

प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में राजा की जिस अवधारणा का वर्णन किया हे उसमें राजा की विशेष शिक्षा पर जोर डाला गया है। कौटिल्य भी उसी प्रकार राजा की शिक्षा का समर्थन करते थे। कौटिल्य इस बात को भली भाँति जानते थे उपरोक्त गुणों से सम्पन्न व्यक्ति आसानी से नहीं खोजा जा सकता। इनमें से कुछ गुण उसमें जन्मजात होते है तथा कुछ गुणों को अभ्यास के द्वारा अर्जित किया जा सकता है। अतः कौटिल्य ने राजा की शिक्षा पर विशेष जोर दिया है। उन्होंने कहा है कि "जिस प्रकार घुन लगी हुइ लकड़ी जल्टी नष्ट हो जाती है उसी प्रकार जिस राजकुल में राजकुमार शिक्षित नहीं होते, वह राजकुल बिना किसी युद्ध आदि के नष्ट हो जाता है।" कौटिल्य ने राजा में जिन आवश्यक विधाओं के बारे में बताया है उनमें राज्य का शासन, मानवशास्त्र, इतिहास सैन्य विधा, दंडनीति, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र सम्मिलित है।

1.3.5.3. राजा के कर्तव्य (Duties of the King)

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा के कर्तव्यों के विषय में विवेचना की है। कौटिल्य का राजा राजतंत्र का प्रतीक माना गया है इसी में संप्रभुता व्याप्त है। इस प्रकार राजा सर्वोच्च, शक्ति होता है। इन्होंने बताया राजा और प्रजा के मध्य पिता पुत्र की भाँति सम्बन्ध होना चाहिए। जिस प्रकार एक पिता अपनी संतान का ध्यान रखता है उसी प्रकार राजा को भी अपनी प्रजा का ध्यान रखना चाहिए।

कौटिल्य ने राजा के प्रमुख निम्नलिखित कर्तव्यों के विषय में बताया है।

1) **प्रजा का कल्याण (Welfare of the People)**–कौटिल्य के मतानुसार राजा का प्रथम कर्तव्य है कि वह अपनी निपुणता के अनुसार लोक कल्याण हेतु आवश्यक कदम उठाएं। कौटिल्य ने कहा है कि प्रजा के सुख में राजा का सुख तथा प्रजा के हित में राजा का हित होता है।
2) **वर्णाश्रम धर्म को बनाए रखना (Maintaining Varna Ashram Dharma)**–सभी वर्ण एवं आश्रम का यह धर्म होता है कि वह सत्य बोले, ईर्ष्या न करे, पवित्र, दयावान और क्षमाशील हो। वर्णाश्रम धर्म के बनाए रखने एवं किसी भी प्राणी को धर्म से न हटने दे यही राजा का प्रमुख कर्तव्य है।
3) **शांति व्यवस्था बनाए रखना (Maintaining Peace and Order)**–समाज में व्याप्त अशांति, अराजकता तथा अव्यवस्था से मुक्त होने के लिए ही राजा और राज्य की स्थापना की गई है। इसलिए राजा का यह दायित्व है कि वह आन्तरिक शांति के साथ–साथ बाहरी स्तरों पर भी शांति स्थापित करे।

1.3.5.4. कार्यपालिका एवं प्रशासनिक कर्तव्य (Executive and Administrative Duties)

राजा प्रशासन की प्रमुख धुरी होता है एवं कार्यपालिका का प्रमुख होने के कारण कुशल संचालन हेतु विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति करता है। वह प्रत्येक कर्मचारी पर अपना नियंत्रण रखता है तथा उनका परीक्षण करता है।

1) **विधायी कर्तव्य (Legislative Duty)**–एक राजा राज्य की विधि के निर्माण का प्रमुख स्रोत होता है। राजा द्वारा बनाया गया विधान ही अंतिम और सर्वोच्च होता है राजा के निर्णय को किसी प्रकार से चुनौती नहीं दी जा सकती। राजा कानून का निर्माण धर्म व्यवहार तथा चरित्र के आधार पर करता हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य जनता के सुख एवं हित में बढ़ोत्तरी करना है।

2) **न्यायिक कार्य (Judicial Work)**–राजा न्यायमूर्ति होता है। राजा राज्य में विभिन्न न्यायालयों को स्थापित करता है। अपील के दृष्टिकोण से राजा ही सर्वोच्च न्यायालय होता है। वह राज्य की विधि के अनुसार ही निर्णय दे सकता है। वह इसमें किसी प्रकार की मनमानी नहीं कर सकता। राजा द्वारा किया गया निर्णय लोकाचार, व्यवहार एवं न्याय पर आधारित होता है।

3) **दंड की व्यवस्था करना (To Administration Punishment)**–न्यायपालिका के माध्यम से राजा दोषी व्यक्तियों को दंडित करता है। समाज की सामाजिक व्यवस्था दंड पर आधारित होती है दण्ड का उचित प्रयोग न होने के कारण राज्य में अराजकता बढ़ जाती है। इसलिए राज्य में दंड की व्यवस्था बेहतर होनी चाहिए।

4) **आय व्यय सम्बन्धी कार्य (Income Related Expenses)**–एक राजा को आय व्यय की उचित व्यवस्था रखनी चाहिए। उचित प्रबंध न होने के कारण राज्य की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है। जिसके कारण सम्पूर्ण व्यवस्था को उसका परिणाम झेलना पड़ता है। राज्य के बजट में संतुलन आवश्यक है क्योंकि अधिक हानि वाला बजट निर्धन को और निर्धन बना देता है एवं राज्य का विनाश कर देता है।

5) **आर्थिक कर्तव्य (Economic Activities)**–राजा राज्य की अर्थव्यवस्था की समृद्धि बनाने हेतु जितना संभव हो सके उतना प्रयत्न करता है। इसके लिए व्यापार एवं वाणिज्य को बढ़ावा देकर, खेती व उद्योग धंधे को प्रोत्साहित कर, पशुओं की नस्लों में सुधार कर अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान की जा सकती है।

6) **युद्ध करना (Make War)**–कौटिल्य ने उल्लेख किया है कि राजा का प्रमुख कार्य युद्ध करना है। अर्थशास्त्र का केंद्र वह जिज्ञासु राजा होता है जिसका उद्देश्य लगातार अपने अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करना होता है। वह राज्य की प्रत्येक आर्थिक एवं अन्य दूसरे संस्थाओं के महत्त्व इसी मापदंड के आधार पर निर्धारित करता है कि राज्य को युद्ध की किस सीमा तक सफलतापूर्वक तैयार कर सकते है। अतः कौटिल्य राजा की व्यापक शक्तियों एवं कार्यों द्वारा उसकी सर्वोच्चता को सिद्ध करते है।

1.3.6. मंडल सिद्धान्त (Mandal Theory)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विदेश नीति का विश्लेषण विस्तारपूर्वक किया गया है। विदेशों में गुप्तचरों एवं राजदूतों के विषय में भी चर्चा की गयी है। कौटिल्य ने मंडल सिद्धान्त का वर्णन अर्थशास्त्र के छठे अधिकरण में किया है। कौटिल्य ने अपने मंडल सिद्धान्त में कई राज्यों के समूह अथवा मंडल में विद्यमान राज्यों द्वारा एक–दूसरे के प्रति व्यवहार में लाई जाने वाली नीति का उल्लेख किया है। इस सिद्धान्त में मंडल केन्द्र ऐसा राजा होता है जो पड़ोसी राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिलाने हेतु प्रयत्नशील होता है।

कौटिल्य ने ऐसे राजा को 'विजिगीषु राजा' (विजय की इच्छा रखने वाला राजा) की संज्ञा दिया है। इस प्रकार 12 राज्यों का समूह राज्य मंडल कहलाता है। कौटिल्य ने मंडल के अन्तर्गत् निम्नलिखित 12 प्रकार के राज्यों का वर्णन किया है–

1) विजिगीषु	2) अरि	3) मित्र
4) अरि–मित्र	5) मित्र–मित्र	6) अरि–मित्र–मित्र
7) पार्ष्णिग्राह	8) आक्रंद	9) पार्ष्णिग्राहसार
10) आक्रन्दसार	11) महयमा	12) उदासीन देश

कौटिल्य ने इन सभी देशों के पारस्परिक सम्बन्धों को ही मण्डल सिद्धान्त का नाम दिया है। इसके अन्तर्गत मण्डल का केन्द्र ऐसा राज्य होता है जो पड़ोसी राज्य को जीतकर अपने में मिलाने का प्रयत्न करता है। यह शासक विजिगीषु कहलाता है।

कौटिल्य के इस सिद्धान्त के 12 राज्यों का संक्षिप्त वर्णन निम्नवत किया गया है–

1) **विजिगीषु राज्य**–यह राज्य स्वयं की राज्य सीमाओं का विस्तार करने का आकांक्षी होता है। इसका स्थान मण्डल के केन्द्र में होता है।

2) **अरि**–विजिगीषु के सम्मुख स्थित राज्य शत्रु होता है यही अरि कहलाता है।

3) **मित्र**–अरि राज्य के सामने का राज्य मित्र होता है। यह विजिगीषु का मित्र होता है।

4) **अरिमित्र**–अरिमित्र वह राज्य होता है जो मित्र राज्य के आगे होता है। यह अरि राज्य का मित्र और विजिगीषु का शत्रु होता है।

5) **मित्र–मित्र**–अरि मित्र के सामने वाला राज्य मित्र–मित्र होने के कारण यह राज्य मित्र राज्य और विजिगीषु दोनों का मित्र होता है।

6) **अरि मित्र–मित्र**–यह राज्य अरिमित्र राज्य का मित्र राज्य होता है परन्तु विजिगीषु का शत्रु राज्य होता है।

7) **पार्ष्णिग्राह**–यह राज्य विजिगीषु राज्य के पृष्ठ भाग में स्थित राज्य है यह 'अरि' राज्य की भाँति विजिगीषु का शत्रु होता है।

8) **आक्रंद**–पार्ष्णिग्राह के पीछे आक्रंद राज्य स्थित होता हैं यह राज्य विजिगीषु का मित्र होता है।

9) **पार्ष्णिग्राहसार**–यह राज्य पार्ष्णिग्राह का मित्र राज्य होता है और आक्रंद राज्य के पृष्ठ भाग में स्थित होता है। विजिगीषु का यह शत्रु राज्य होता है।

10) **आक्रंदसार**–पार्ष्णिग्राहसार के पृष्ठ भाग वाला राज्य आक्रंदसार कहा जाता है। यह आक्रंद एवं विजिगीषु का मित्र होता है।

11) **मध्यमा**–यह राज्य विजिगीषु एवं अरि राज्यों की सीमाओं से भिन्न स्थित होता है। दोनों राज्यों से अधिक शक्तिशाली होने के कारण यह राज्य आवश्यकता होने पर किसी एक राज्य का सहयोग या दोनों से भिन्न–भिन्न प्रतिस्पर्धा भी कर सकता है।

12) **उदासीन**–इस प्रकार के राज्य विजिगीषु, अरि एवं मध्यमा राज्य की सीमा से पृथक होता है। यह अत्यन्त शक्तिशाली होता है।

आवश्यकता पड़ने पर स्वयं की इच्छानुसार यह राज्य विजिगीषु, अरि एवं मध्यमा राज्य की सहायता भी कर सकता है।

मंडल सिद्धान्त का विश्लेषण (Analysis of Mandal Theory)

कौटिल्य का मंडल सिद्धान्त एक व्यावहारिक व दूरदर्शितापूर्ण सिद्धान्त है। कौटिल्य ने इस सिद्धान्त में राज्य के चारों ओर बनने वाले मंडल का विश्लेषण किया है। इस सिद्धान्त के मुख्य तत्व निम्नवत् है–

1) कौटिल्य का मानना है कि राज्य को पड़ोसी राज्य से सतर्क रहते हुए अपना गठबंधन बनाना चाहिए।
2) कौटिल्य का मत है कि राज्य अपने पड़ोसी का शत्रु एवं उसके पड़ोसी का मित्र होता है।
3) मंडल सिद्धान्त में 12 राज्यों के एक केन्द्र की कल्पना की गयी है।
4) कौटिल्य का मानना है कि मध्यम तथा उदासीन राज्य को छोड़कर अन्य सभी राज्यों की शक्ति लगभग एक समान होती है।
5) कौटिल्य के मंडल सिद्धान्त में राज्यों की एक विशेष प्रकृति का वर्णन किया गया है।
6) मंडल सिद्धान्त शक्ति संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त राज्यों के आपसी सहयोग पर आधारित है।

मंडल सिद्धान्त तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार स्थापित किया गया था किन्तु वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों में भूमण्डलीकरण का समय है एवं वर्तमान में सैनिक शक्ति के स्थान पर आर्थिक शक्ति का महत्त्व बढ़ गया है अर्थात् प्रासंगिक नहीं रह गया है। तत्कालीन परिस्थितियों में यह एक महत्त्वपूर्ण देन थी।

मंडल सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Mandal Theory)

कौटिल्य के मंडल सिद्धान्त का तात्कालिक महत्त्व तो था परन्तु परिस्थितियाँ परिवर्तित हो जाने पर उसकी उपयोगिता नहीं रही। इसी कारण विद्वान मंडल सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। वर्तमान समय में भी यह सिद्धान्त अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दृष्टि से ऐसे तथ्यों की ओर संकेत करता है जो वर्तमान राज्यों का मार्गदर्शन करता है।

1.3.7. कौटिल्य का प्रभुसत्ता सिद्धान्त (Kautilya's Theory of Sovereignty)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में किसी विशेष सिद्धान्त का वर्णन नहीं किया गया है परन्तु अर्थशास्त्र में राजा की स्थिति एवं शक्तियों का जो वर्णन किया गया है उसे पाश्चात्य दृष्टिकोण में प्रभुसत्ता सिद्धान्त माना जा सकता है। कौटिल्य ने राजा या प्रभुसत्ताधारी की उत्पत्ति के सिद्धान्त का जो विश्लेषण किया है वह यूरोप में प्रचलित हॉब्स, लॉक, रूसो के सामाजिक अनुबन्धन के सिद्धान्त के समान है। सामाजिक अनुबन्धन के सिद्धान्त में प्राकृतिक स्थितियों की कल्पना की गयी है।

कौटिल्य द्वारा 'अराजकता' की कल्पना की गयी है। कौटिल्य इसे 'कर चुकाने के दायित्व' के रूप में रखते हैं। उन्होंने धार्मिक मान्यताओं का सहयोग प्रभुसत्ताधारी को पूर्ण शक्तियाँ (Absolute Power) प्रदान करने के लिए किया है। इन्हें कर्तव्यों के बन्धन में बाँध दिया है। कौटिल्य के अनुसार राजसत्ता के उदय से पूर्व सभी स्थानों पर अराजकता का ही वर्चस्व था। यह स्थिति मत्स्य न्याय की स्थिति थी। स्वभावतः दुर्बल को सबल प्रताड़ित करेगा जिससे अराजकता का प्रसार होगा। इसलिए यहाँ पर राजा का शक्तिशाली होना अनिवार्य है। उनका मानना है कि राजा का आदर प्रजा को करना चाहिए और राजा का भी कर्तव्य है कि वह प्रजा की पूर्ण रक्षा करे। कौटिल्य सिद्धान्त के रूप में राजा को पूर्ण सत्तावादी अर्थात् सर्वाधिकारवादी शक्तियाँ प्रदान करता है।

1.3.8. कौटिल्य की मन्त्रिपरिषद (Kautilya's Council of Ministers)

कौटिल्य द्वारा 'अमात्य' अर्थात् मन्त्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं की गयी है। उनके अनुसार मंत्रिपरिषद के सदस्य समय, परिस्थिति व आवश्यकतानुसार संख्या में निर्धारित होने चाहिए। कौटिल्य राज्य के विशेष मन्त्रियों, अमात्य, विभागाध्यक्षों एवं अधिकारी वर्गों को अष्टादश (18) तीर्थों की भांति मानते हैं। यह तीर्थ मन्त्री (प्रमुख), पुरोहित, सेनापति, युवराज, द्वारिका, दुर्गपाल, मंत्रीपरिषद् का अध्यक्ष, विभागाध्यक्ष, अन्तर्वेशिका (अंतः पुर का रक्षक), समाहगी (महाधीश), सन्निधात्री (मुख्य कोषाध्यक्ष), प्रवेष्ट्री (आयुक्त), नायक (नगर रक्षक), व्यवहारिक (दीवानी–न्यायाधिकारी), कार्यान्तिक (कारखानों का अध्यक्ष), सीताध्यक्ष (कृषि सम्बन्धी), पौर (नगर का प्रधान) और दंडपाल (सेना विभाग का अधिकारी) थे।

उपरोक्त पदाधिकारियों में मन्त्रियों का कार्य राजा को कार्यों में सहायता करना तथा उसे परामर्श देना था। पुरोहित का कार्य राजा पर धर्म के नियन्त्रण की स्थापना करना था। सेनापति सेना का प्रमुख नायक होता था। युवराज ही राजा के बाद राज्य का उत्तराधिकारी होता था। दौवारिक का दायित्व राजमहल की रक्षा करना था। अन्तर्वेशिक राज्य की अंगरक्षक सेना का प्रधान अधिकारी होता था। शासन व्यवस्था में 'समाहर्ता' आय–व्यय तथा सामान्य प्रशासन विभाग का प्रधान अधिकारी होता था। सन्निधाता का कार्य राज्य के भण्डार गृहों से सम्बन्धित है, 'प्रदेष्टा' कटंकशोधन नामक न्यायालय का प्रधान अधिकारी होता था।, धर्मस्थलीय न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश को 'व्यावहारिक' कहा जाता था। कर्मान्तिक कारखानों व खदानों के निरीक्षण का कार्य देखते थे। इसके अलावा भी कौटिल्य ने राज्य के अनेक पदाधिकारियों के कार्यों और उनकी योग्यताओं का उल्लेख किया हैं। जैसे– दुर्गपाल, आकराध्यक्ष, पत्यध्यक्ष, कोष्ठागाराध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, शुष्काध्यक्ष, आयुधाभाराध्यक्ष, सीताध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, गौध्यक्ष, नागरिक, गणिकाध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष आदि। 'अर्थशास्त्र' मे कौटिल्य के विभाग में प्रशासनिक पदसोपान को दिए गए **चित्र** द्वारा दर्शाया गया है। विभागों का विभाजन जनता द्वारा आकांक्षित सेवाओं और सरकार द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के अनुसार किया जाता था। यद्यपि इसके कुछ अपवाद भी थे। वित्त विभाग, रक्षा विभाग तथा गृह विभाग कुछ महत्त्वपूर्ण विभाग थे।

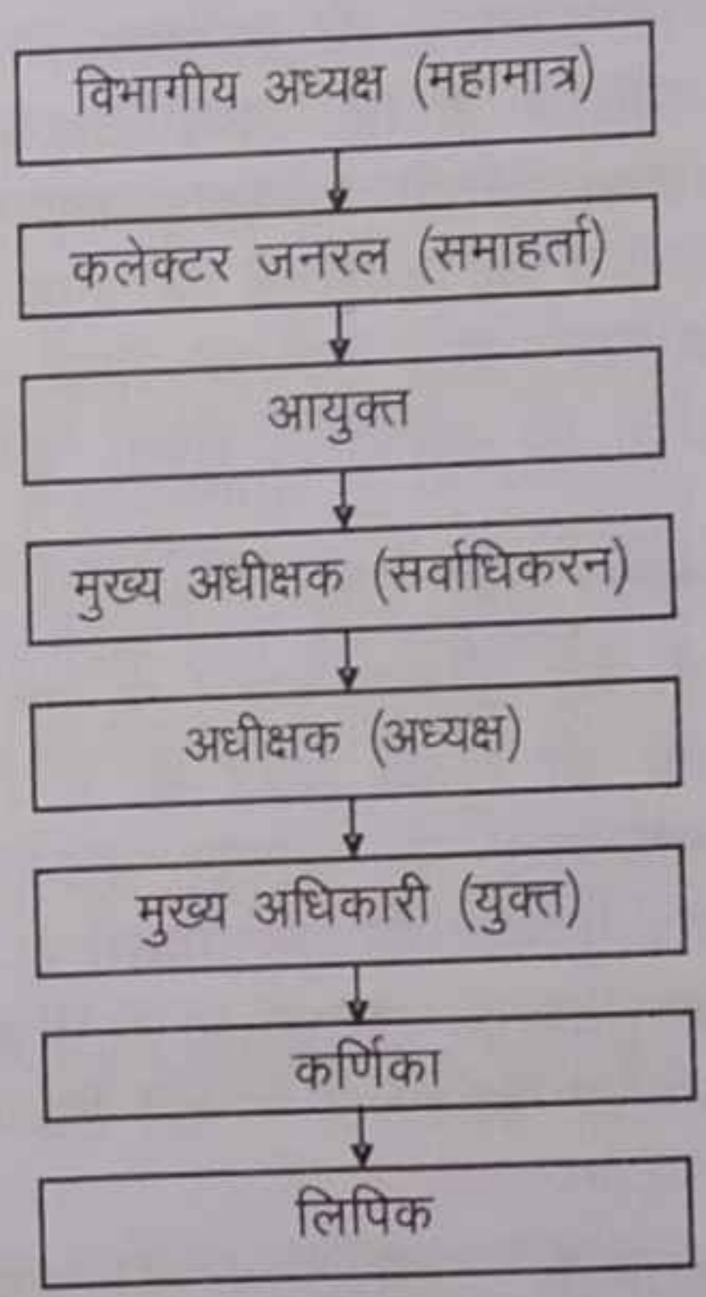

1.3.8.1. वित्त विभाग (Finance Department)

वित्त विभाग के अंतर्गत तीन अधिकारी होते थे–

1) **कलेक्टर जनरल महा संग्रहक (Collector General)**–यह मंत्री स्तरीय अधिकारी था और राजस्व संग्रहण उसका मुख्य कार्य था।
2) **महा–कोषाधिकारी (Treasurer General)**–यह भी मंत्री स्तर का अधिकारी होता था इसके अन्तर्गत कोषागार गृह, व्यापारगृह, अन्नागार (खाद्यान गृह), वनोत्पाद गृह, शस्त्रागार तथा कारागार (जेल) आते थे।
3) **लेखा–अधीक्षक (Superintendent of Accounts)**–ये पारिश्रमिक की दृष्टि से मंत्री स्तर से काफी निम्न होता था।

ये तीनों ही परस्पर निर्भर होते थे। लेखा–अधीक्षक महा–संग्रहक (कलेक्टर जनरल) के अधीन होता था। लेखाओं की जाँच करना महा–संग्रहक का कार्य था। जिला लेखाधिकारियों का कर्तव्य था कि वे लेखा–अधीक्षक के सम्मुख बंद लेखा–पुस्तकें (Sealed Books), वस्तुएँ, और शुद्ध राजस्व की जानकारी प्रस्तुत करें। कौटिल्य का विचार था कि राजा को प्राप्तियों और व्ययों के लेखाओं को व्यक्तिगत तौर पर देखना चाहिए। मन्त्रिपरिषद की बैठक के दौरान उसे मन्त्रियों से प्रत्येक विभाग के वास्तविक लेखाओं का विवरण सुनना चाहिए। व्यापारिक गतिविधियों में क्रियाशील अधीक्षकों पर दोहरा नियन्त्रण होता था। इन अधीक्षकों (जैसे–कोषागार अधीक्षक, टकसाल अधीक्षक, खनन अधीक्षक, समुद्री खानों के अधीक्षक, नमक अधीक्षक, कारखानों के अधीक्षक, स्वर्ण अधीक्षक आदि) पर महा–संग्रहक और महा–कोषाधिकारी दोनों का नियन्त्रण होता था।

1.3.8.2. गृह एवं रक्षा विभाग (Home and Defence Department)

वित्त विभाग के अतिरिक्त गृह विभाग भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण विभाग था। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार गृह विभाग में प्रधानमंत्री, द्वारपाल, हरम–अधीक्षक आदि सभी मंत्री स्तर के थे। ग्रामीण भागों के अधीक्षक तथा सीमाओं के अधीक्षक इस मंत्री स्तर से निम्न स्तर के अधिकारी थे तथा पासपोर्ट अधीक्षक एवं चारागाह अधीक्षक अधिकारी भी थे जिन्हें प्रतिवर्ष 1000 पण वेतन दिया जाता था। दुर्गपाल (किले का रक्षक) व दण्डपाल यह ऐसे उच्च स्तरीय अधिकारी है जो गृह विभाग का अंग है। अर्थशास्त्र' में गृह विभाग का काम संभालने वाले मंत्री के कार्यों का विवरण नहीं मिलता है। द्वारपाल तथा हरम–अधीक्षक राजा की व्यक्तिगत सुरक्षा, रक्षा तथा प्रसन्नता के लिए जिम्मेदार अधिकारी थे।

ग्रामीण भागों और सीमाओं के अधीक्षकों का कार्य उन लोगों को पासपोर्ट जारी करना था जो देश छोड़ना चाहते थे अथवा देश में आना चाहते थे। इसी प्रकार चारागाह अधीक्षक वनों की सुरक्षा करते थे, गायों की रक्षा करते थे तथा सड़कों की मरम्मत करवाते थे। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार सड़कों की मरम्मत कराना गृह विभाग का अनिवार्य कार्य नहीं था। गुप्तचर भी गृह विभाग के अधीन आते थे। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार सेनापति सम्भवतः रक्षा विभाग का अध्यक्ष होता था। राजदूतों का स्तर मंत्री के समान था या नहीं इसकी स्पष्टता अर्थशास्त्र में नहीं मिलती।

1.3.8.3. कौटिल्य की गुप्तचर व्यवस्था (Kautilya's Espionage System)

गुप्तचर व्यवस्था राज्य तथा राजा दोनों के लिए ही लाभदायक होती है। जब भी इनके विरुद्ध कोई षडयंत्र करने का प्रयत्न करता है तो उसे तत्काल ही समाप्त किया जा सकता है। अतः गुप्तचर व्यवस्था भारतीय संस्कृति का एक मुख्य भाग है। गुप्तचर का उल्लेख ऋग्वेद तथा अर्थवेद में भी प्राप्त होता है। रामायण एवं महाभारत से भी गुप्तचरों के विषय में जानकारी मिलती है। पूर्व समय में उनके राजनीतिक समस्याओं का समाधान गुप्तचरों के द्वारा किया जाता था। कौटिल्य द्वारा अर्थशास्त्र में गुप्तचर सेवा के संगठन तथा कार्यप्रणाली पर दो महत्त्वपूर्ण अध्याय लिखे गए है। इसमें इन्होनें गुप्तचर व्यवस्था की श्रेणियों का विस्तृत वर्णन किया है। गुप्त सूचनाओं के आदान–प्रदान हेतु सांकेतिक भाषा तथा संदेश वाहकों के रूप में कबूतरों का प्रयोग का आदेश दिया है।

गुप्तचरों का वर्गीकरण (Classification of Detectives)

कौटिल्य ने गुप्तचरों के दो प्रकारों का वर्णन किया है–

1) स्थायी गुप्तचर और
2) भ्रमणशील गुप्तचर।

1) **स्थायी गुप्तचर**–कौटिल्य ने स्थायी गुप्तचरों को पांच वर्गों में विभाजित किया है।
   i) **कापटिक गुप्तचर**–यह गुप्तचर विद्यार्थी की वेश–भूषा में रहने वाला, सभी के रहस्यों की जानकारी रखने वाला तथा निडर और साहसी होते है।
   ii) **उदास्थित गुप्तचर**–उदास्थित गुप्तचर, गुप्तचर संयासी के भेष में रहने वाले सदाचारी तथा बुद्धिमान होते है।
   iii) **गृहपति गुप्तचर**–गरीब किसान की वेश–भूषा वाले बुद्धिमान तथा पवित्र हृदय वाले गुप्तचर को गृहपति गुप्तचर कहते है।
   iv) **वैदेहक गुप्तचर**–बुद्धिमान एवं निर्धन व्यापारी के भेष में रहने वाले गुप्तचर वैदेहक गुप्तचर कहे जाते है।
   v) **तापस गुप्तचर**–जीविका हेतु जटा रखे हुए अथवा सिर मुंडवाए राज्य का कार्य करने वाले गुप्तचर तापस कहलाते थे।

2) **भ्रमणशील गुप्तचर**–इन गुप्तचरों में सत्री (हस्तरेखा के ज्ञाता), तीक्ष्ण रसद एवं परिव्राजिका आदि थे। सत्री गुप्तचर के विषय में कौटिल्य ने लिखा है कि इन्हें किसी उच्च स्तर के मंत्री अथवा राजा के अधीन होना चाहिए। राजा स्वयं के मंत्रियों की गतिविधियों पर भी निगरानी रखने हेतु ऐसे गुप्तचरों की नियुक्ति करता था। बचपन से ही इस प्रकार के गुप्तचरों को यह प्रशिक्षण दिया जाता था कि वह प्रजा के निकट साधू अथवा ज्योतिष की वेशभूषा में रहकर गुप्त सूचनाएं प्राप्त कर सके।

   इन गुप्तचरों के अतिरिक्त कौटिल्य ने राजा को विष कन्या रखने का भी विचार दिया है। बचपन से ही विष खिलाकर इनका पालन पोषण किया जाता था। इन्हें शत्रु के पास भेजा जाता था ताकि यह उसे आकर्षित कर विष भोग हेतु तैयार करे। इनके साथ सम्बन्ध स्थापित करते ही शत्रु की मृत्यु हो जाती थी।

गुप्तचरों के कार्य (Work of Detectives)

गुप्तचरों के कार्यों का कौटिल्य ने निम्नलिखित उल्लेख किया है।

1) आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त कर उनकी वास्तविकता तथा अफवाहों का पता लगाकर उन्हें राजा तक पहुँचाना।
2) उन अवांछनीय षड़यंत्रकारी तत्वों के बारे में पता लगाना जिससे वह राज्य व्यवस्था में बाधक न बन सके। अर्थात सामाजिक स्थिति की सुदृढ़ता तथा आपसी सहयोग को बनाए रखा जा सके।
3) देश के शत्रुओं की गतिविधियों के बारे में पता लगाना एवं उनकी योजनाओं को असफल बनाना है।
4) राजा के अमात्यों में राजा के प्रति शत्रुता मात्र को परखना।
5) प्रजा की मनःस्थिति की जानकारी कर जनमत का निर्माण करना।
6) दुष्ट लोगों की जानकारी रखना।
7) राजनीतिक आधार पर हत्या करवाना।
8) शत्रु देश में आपसी मतभेद पैदा करवाना।
9) अन्य गुप्तचर से मिली सूचनाओं की सत्यता को परखना।
10) गुप्तचरों के उच्च अधिकारियों एवं सभी राज्य कर्मचारियों के चरित्र की शुद्धता के बारे में पता कर राजा को सूचना देना।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण के दसवें अध्याय में स्पष्ट रूप से कहा है कि "राज्य के कर्मचारियों और प्रजा की शुद्धता जानने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति की जाए। राजा धन और मान द्वारा गुप्तचरों को सदा संतुष्ट रखे।"

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने गुप्तचर व्यवस्था का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। गुप्तचरों की सभी श्रेणियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती है। कौटिल्य ने गुप्तचरों के कार्य को उनकी तीक्ष्ण एवं पैनी दृष्टि के परिचायक के रूप में स्पष्ट किया है। अतः आधुनिक गुप्तचर व्यवस्था कौटिल्य के दृष्टिकोण पर आधारित है।

1.3.9. कौटिल्य की दण्डनीति (Kautilya's Dandaniti)

अर्थशास्त्र के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन कौटिल्य की दण्डनीति को माना जा सकता है। दण्ड का अभिप्राय राज्य सत्ता के प्रतीक से है तथा नीति का अर्थ सत्ता का प्रयोग न्यायपूर्ण करने के निर्देशन से है।

कौटिल्य दण्डनीति के विषय में निम्ललिखित चार उद्देश्यों का वर्णन करते हैं–

1) **अलब्ध की प्राप्ति**–इसका तात्पर्य है कि जो कुछ अभीष्ट है लेकिन वह मिला नहीं है और उसको किस प्रकार प्राप्त किया जाए।
2) **लब्ध का परिरक्षण**–लब्ध का तात्पर्य परिरक्षण से है अर्थात् जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, उसकी सुरक्षा किस प्रकार की जाए।
3) **रक्षित का विवर्धन**–इस उद्देश्य का सम्बन्ध रक्षा सम्बन्धी वृद्धि से है अर्थात जिसकी रक्षा की गयी है उसमें और अधिक वृद्धि किस प्रकार की जाए।
4) **विवर्धित का सुपात्रों में विभाजन**–इसका तात्पर्य है कि जिसमें वृद्धि की गयी है, उसे उपयुक्त लोगों में कैसे विभाजित किया जाए।

1.3.10. कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति (Kautilya's Shaadguny Neeti)

कौटिल्य ने अन्य राज्यों के साथ सम्बन्धों हेतु अपनी षाड्गुण्य नीति अपनायी है। इसमें एक राज्य दूसरे राज्यों के साथ अपने सम्बन्धों को विभिन्न परिस्थितियों में कैसा रखता है, का वर्णन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी राज्य को स्वयं की विदेश नीति का निर्माण या संचालन निम्नलिखित छः लक्षणों पर करना चाहिए–

1) **सन्धि**–दो राजाओं के मध्य आपसी समझौते को संधि कहते हैं। कौटिल्य के अनुसार किसी राजा का संधि करने के समय उद्देश्य यही होना चाहिए कि वह शत्रु राज्य की सत्ता नष्ट कर स्वयं को सत्तापूर्ण बनाए।
2) **विग्रह**–इसका तात्पर्य 'युद्ध' करने से है। एक राजा द्वारा निर्बल राजा के विरुद्ध प्रयुक्त किया जाता है। कौटिल्य के अनुसार राजा को विग्रह का अनुसरण उस परिस्थिति में करना चाहिए जब वह स्वयं के शत्रु को अपने से कमजोर समझे अथवा उसकी युद्ध व्यवस्था मजबूत हो।
3) **आसन**–आसन से तात्पर्य तटस्थ रहने से है। कौटिल्य का मानना है कि जब एक राजा अन्य राजाओं के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हुए शान्तिपूर्वक स्वयं की शक्ति में वृद्धि करता है तो वह नीति 'आसन नीति' कहलाती है।

4) **संश्रय**–इसका अर्थ शरण लेने से है। कौटिल्य के अनुसार एक राजा यदि स्वयं के शत्रु राजा को हानि पहुँचाने में असमर्थ होता है तो ऐसी स्थिति में उसे स्वयं से अधिक शक्तिशाली राज्य की शरण लेनी चाहिए।

5) **यान**–इसका तात्पर्य आक्रमण अथवा युद्ध अभियान है। विग्रह के पश्चात् यह पद वास्तविकता पर आधारित होता है। एक राजा तभी आक्रमण कर सकता है जब उसे यह विश्वास हो कि बिना युद्ध के उस स्थिति को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। कौटिल्य के अनुसार 'यान' विदेश नीति के निर्धारण एवं संचालन में महत्त्वपूर्ण होता है।

6) **द्वैधीभाव**–द्वैधीभाव का अर्थ है एक राजा से शान्ति का समझौता करके अन्य के साथ युद्ध करने की नीति। कौटिल्य के अनुसार एक राजा को राज्य के कल्याण के लिए उपर्युक्त नीतियों का अनुसरण करना चाहिए।

1.3.11. शांति–स्थापना की अंतरराज्यीय नीति के उपाय (Interstate Policy Measures for Peacekeeping)

अंतरराज्यीय सम्बन्धों के कामयाब संचालन हेतु पूर्व भारतीय राजनीतिक विचारकों के अनुसार सात उपाय बताए गए है इनमें साम, दाम, दण्ड, भेद, माया और उपेक्षा तथा इंद्रजाल को सम्मलित किया गया है। इन उपायों में से कौटिल्य ने चार उपायों को महत्त्वपूर्ण माना है। इनके अनुसार मंडल के अंतर्गत राजनीति का संचालन साम, दाम, दण्ड, भेद के माध्यम से किया जाना चाहिए। जिसका विवरण निम्नलिखित प्रकार से है।

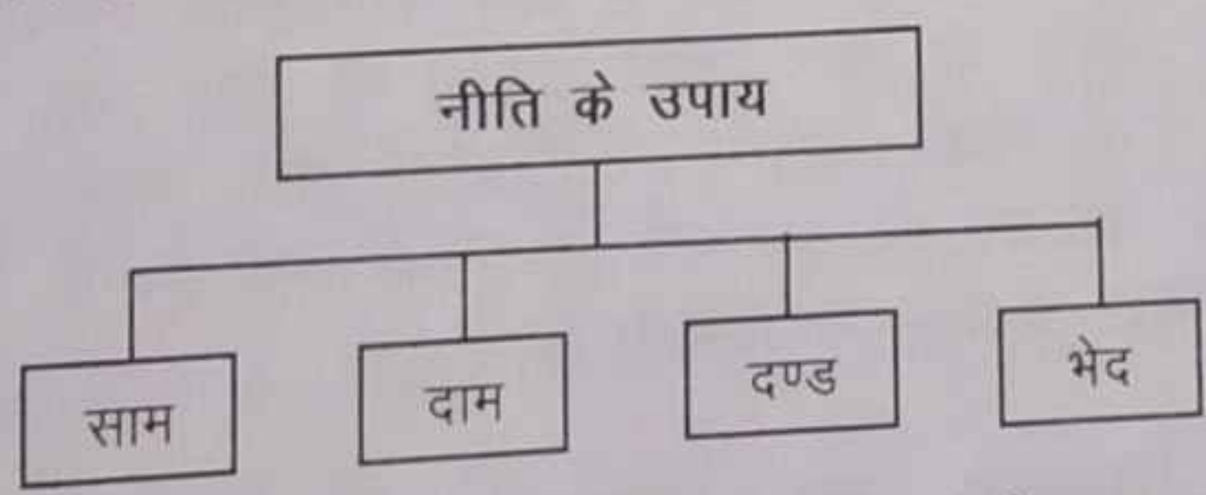

1) **साम**–साम का आशय शांति की नीति से है। स्वयं से बलशाली राजा के लिए यह सही नीति है यह स्पष्ट है कि अपने से अधिक शक्तिशाली राजा के साथ युद्ध करके स्वयं का भला न होकर विनाश ही होगा।

2) **दाम**–दाम से आशय धन द्वारा अपने से अधिक सक्षम राजा को संतुष्ट करना है जिससे वह आक्रमण न कर सके।

3) **दंड**–दंड का अर्थ बल प्रयोग से है जो अपने से कम शक्तिशाली राजा के साथ युद्ध द्वारा अथवा दबाव बनाकर उस पर अपना अधिकार स्थापित करने की नीति से है।

4) **भेद**–इसका अर्थ राजाओं के मध्य आपसी फूट डालने की नीति से है जिससे वह आपस में उलझे रहे और फूट डालने वाला उन पर निर्विघ्न शासन करता रहे।

कौटिल्य ने यह लिखा है कि एक कम शक्तिशाली राजा को साम तथा दाम की नीति का पालन करना चाहिए, वही एक ताकतवर राजा को 'दंड' तथा 'भेद' नीति के पालन से अधिक लाभ प्राप्त होगा। परंतु कूटनीति की यह सभी विधियाँ साधारण नैतिकता के दृष्टिकोण से उचित नहीं है। अतः कौटिल्य ने इसे राजनीति की साधारण नैतिकता से मुक्त कर रखा है। इस दृष्टिकोण के विषय में यूरोपीय दार्शनिक मैकियावेली के विचारों का भी संकेत मिलता है। कौटिल्य ने राजनीतिक चालाकियों एवं गुप्त मंत्रणा देने की विधि को भी राजनीति का सर्वमान्य तरीका बताया है। लेकिन यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि

कौटिल्य तथा अन्य प्राचीन प्रशासनिक भारतीय विचारकों में सिर्फ उन्हें ही इस प्रकार की छलकपट वाली नीति का प्रयोग करने की सलाह दी है जो स्वयं के राज्य के सर्वनाश के लिए तत्पर हो। अतः उनके दृष्टिकोण के अनुसार यह छल कपट की नीति ही प्रशासन का एक मात्र विकल्प नहीं था बल्कि यह "आपद्धर्थ" का मार्ग था जिसका उपयोग केवल संकट अथवा विपदा के समय करने की अनुमति प्रदान की गई है।

1.4. वुडरो विल्सन (WOODROW WILSON)

1.4.1. परिचय (Introduction)

अमेरिकी राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद और विश्वविद्यालय प्रशासक तथा 1913 से 1921 तक संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति पद को सुशोभित करने वाले वुडरो विल्सन का नाम लोक–प्रशासन में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वुडरो विल्सन ही लोक प्रशासन के जनक माने जाते हैं क्योंकि उनका लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' (1887), अमेरिकी विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन के अध्ययन को बढ़ावा देता है और अमेरिकी सरकार में प्रशासनिक तरीकों के कार्यान्वयन के लिए तर्क प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि वे लोक–प्रशासन के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण सितारे बन गए हैं। हाँलाकि विल्सन ने लोक–प्रशासन के सिद्धान्तों पर बहुत ज्यादा नहीं लिखा है परन्तु उनकी प्रशासनिक क्रियाओं को राजनीतिक क्रियाओं से अलग करके देखने की अन्तर्दृष्टि ही लोक–प्रशासन के उदय का एक महत्त्वपूर्ण कारक बनी। विल्सन का लेख लोक प्रशासन के अध्ययन के इतिहास और विषय–वस्तु की जाँच करता है और प्रशासनिक सरकार की एक विशेष समझ और इसे लागू करने के लिए विशेष तरीकों के लिए तर्क देता है। यहीं से अध्ययन–विषय के रूप में लोक–प्रशासन की विकास यात्रा प्रारम्भ होती है। यहाँ से लेकर वर्तमान में लोक–प्रशासन को 134 वर्ष हो गए है तथा इसकी बौद्धिक जड़ें वुडरो विल्सन के अग्रणी योगदान में देखी जा सकती हैं।

1.4.2. वुडरो विल्सन का जीवन परिचय (Biography of Woodrow Wilson)

वुडरो विल्सन का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्जीनिया राज्य में 28 दिसम्बर, सन् 1856 को हुआ। विल्सन ने राजनीति, शासन तथा कानून की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने 1879 में कॉलेज ऑफ न्यूजर्सी (जो बाद में प्रिंसटन यूनिवर्सिटी बन गया) से स्नातक किया। इसके बाद उन्होंने 1879–80 में वर्जीनिया विश्वविद्यालय में एक साल तक कानून का अध्ययन किया। जब विल्सन 28 वर्ष के थे तभी जॉन्स हॉपकिंस में, उन्होंने 'कांग्रेसनल गवर्नमेंट' लिखी, जो 1885 में प्रकाशित हुई। इससे विल्सन ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। 30 वर्ष की आयु में विल्सन ने पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की तथा प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर बने और 1902 तक वे इस पद पर बने रहे। विल्सन पीएचडी करने वाले एकमात्र अमेरिकी राष्ट्रपति हैं। तत्पश्चात् 1910 तक विल्सन इसी विश्वविद्यालय के प्रेसीडेन्ट बने रहे। केवल अकादमिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि राजनीति के क्षेत्र में भी विल्सन की प्रतिभा का अपूर्व योगदान था और इसका प्रमाण 1910 में उनका अमेरिका के न्यूजर्सी राज्य का गवर्नर बनना। वे तीन वर्ष तक न्यूजर्सी के गवर्नर रहे तथा 1913 में ही संसार की प्रमुख महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बने। लोक–प्रशासन के जनक वुडरो विल्सन ने 8 वर्ष तक अमेरिका के राष्ट्रपति पद की गरिमा बनाए रखी, जो संसार के सबसे शक्तिशाली सार्वजनिक पदों में से एक था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय विल्सन का नेतृत्व अमेरिका के लिए काफी लाभदायक रहा। राष्ट्रपति के

पद का दूसरा कार्यकाल पूर्ण कर लेने के तीन वर्ष पश्चात् ही 1924 में इस महान् विचारक और राजनीतिज्ञ का देहान्त हो गया। अभी लोक–प्रशासन अधिक विकसित नहीं हो पाया था कि इसके जनक इस संसार से विदा हो गए। फिर भी विल्सन द्वारा प्रज्जवलित लोक–प्रशासन की ज्वाला को अनेक विद्वानों ने धीमी नहीं पड़ने दिया बल्कि लोक प्रशासन की यात्रा को विकास की ओर निरन्तर अग्रसारित किया।

1.4.3. वुडरो विल्सन की रचनाएँ (The Writings of Woodrow Wilson)

वुडरो विल्सन राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर होने के साथ–साथ, एक प्रशासनिक चिन्तक, इतिहासकार, शिक्षाशास्त्री, सुधारक तथा एक अच्छे नेता थे। विल्सन ने कुछ लेख और कई पुस्तकें लिखीं। उनकी कुछ रचनाएँ इस प्रकार है–

1) कांग्रेशनल गवर्नमेंट (1885)
2) दी स्टेट (1889)
3) डिविजन एण्ड रियूनियन (1893)
4) एन ओल्ड मास्टर एण्ड अदर पॉलिटिकल एसेज (1893)
5) मेयर लिटरेचर एण्ड अदर एसेज (1896)
6) जॉर्ज वांशिगटन (1896)
7) ए हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन पीपुल (1902)
8) कान्सटीट्यूशनल गवर्नमेन्ट इन द युनाइटेड स्टेट्स (1908)

उपरोक्त रचनाओं के साथ 1887 में पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली में प्रकाशित उनका लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' लोक–प्रशासन के उदय की जड़ माना जा सकता है। यह ध्यान रहे कि यही एकमात्र शैक्षिक रचना है, जो विल्सन ने लोक प्रशासन पर लिखी थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि मात्रात्मक नहीं गुणात्मक होना जरूरी है। जॉन होपकिन्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रिचर्ड एली ने विल्सन को काफी प्रभावित किया। स्वयं रिचर्ड एली लिखते हैं कि, "जब मैं प्रशासन की महत्ता पर बोला तब मैंने महसूस किया कि जैसे मैंने कोई चिन्गारी गिराई हो और विल्सन में एक अग्नि प्रज्ज्वलित की हो।" निःसन्देह प्रत्येक विद्वान अपने समय की परिस्थितियों और अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

1.4.4. वुडरो विल्सन के प्रमुख विचार तथा उनके योगदान (Main ideas of Woodrow Wilson and his Contributions)

वुडरो विल्सन के प्रमुख विचारों तथा उनके योगदान को निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटकर सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है।

1) **लोक–प्रशासन की परिभाषा (Definition of Public Administration)**–31 वर्ष के उम्र में विल्सन का 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' नामक लेख 'पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' के जून, 1887 अंक में प्रकाशित हुआ। ड्वाइट वाल्डो के मत में विल्सन का यह लेख स्व–जागरुक लोक–प्रशासन के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है साथ ही अन्तहीन प्रेरणा तथा विवाद का स्रोत भी है। वास्तव में 1885 में विल्सन ने 'दी आर्ट ऑफ गवर्निंग' शीर्षक से एक लेख लिखा, जिसको उन्होंने किन्हीं कारणों से प्रकाशित नहीं करवाया। जब कॉरनैल विश्वविद्यालय में उन्हें बोलने के लिए आमन्त्रित किया गया तो विल्सन ने अपने आगे के विचारों को ध्यान में रखते हुए इस लेख का पुनरीक्षण किया यही पुनरीक्षण लेख पुनः 'द स्टडी ऑफ

एडमिनिस्ट्रेशन' शीर्षक के नाम से प्रकाशित हुआ। अध्ययन अनुशासन विषय के रूप में लोक–प्रशासन की विकास यात्रा यहीं से शुरु होती है। हेनरी बेगडन ने विल्सन के इस लेख के बारे में लिखा कि उनका यह लेख प्रशासन के विशेषज्ञों के बीच काफी लोकप्रिय हो गया तथा हमेशा यह उनके लिए बुद्धिमत्ता की खान रही। ननमदी, ऑफियोंग और टोनवे के अनुसार, "प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में विल्सन के विचार महत्त्वपूर्ण हैं।" विल्सन के अनुसार, "प्रशासन का अध्ययन समाज की बढ़ती जटिलताओं, राज्य के बढ़ते कार्यों और लोकतांत्रिक आधार पर सरकारों के विकास के परिणामस्वरूप विकसित हुआ है।" सभी कार्यों की इस निरंतर बढ़ती हुई व्यवस्था ने यह सवाल उठाया कि इन कार्यों को कैसे और किस दिशा में किया जाना चाहिए। इस पर, विल्सन ने सुझाव दिया कि सरकार में सुधार की आवश्यकता है और सुधार प्रशासनिक क्षेत्र में होने चाहिए।" विल्सन का यह मानना था कि किसी देश का संविधान बनाना आसान है पर उसे चलाना कहीं अधिक मुश्किल है और संविधान को चलाने का दायित्व सरकार और उसके कार्यात्मक भाग अर्थात् प्रशासन का है। विल्सन का कथन है कि "लोक–प्रशासन सार्वजनिक कानून का विस्तृत और व्यवस्थित क्रियान्वयन है। सामान्य कानून का प्रत्येक अनुप्रयोग प्रशासन का कार्य है। विल्सन लिखते हैं कि सरकारी क्रिया की व्यापक योजनाएँ प्रशासनिक नहीं होती, यद्यपि ऐसी योजनाओं का विस्तृत क्रियान्वयन प्रशासनिक होता है।

2) **प्रशासनिक विज्ञान (Administrative Sciences)**–विल्सन का मानना है कि प्रशासन एक विज्ञान है। यह तब स्पष्ट हो गया जब उन्होंने कहा कि प्रशासन का विज्ञान राजनीति के विज्ञान के अध्ययन का नवीनतम फल है। बाद में, अपने एक निबंध में, उन्होंने कहा कि, आज हमारे पास प्रशासन विज्ञान है जो हमारे पास पहले कभी नहीं था। "विल्सन इस तथ्य के बारे में आलोचनात्मक थे कि अमेरिकी प्रशासनिक प्रक्रिया में बहुत अधिक वैज्ञानिक पद्धति नहीं देखी जा सकती थी। वास्तव में, उन्होंने यह महसूस किया कि इस बात की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं है कि क्या चीजें अच्छा प्रशासन बनाती हैं। उनके अनुसार, ऐसा इसलिए था क्योंकि प्रशासनिक विज्ञान का विकास सबसे पहले यूरोप में फ्रांसीसी और जर्मन शिक्षाविदों द्वारा किया गया था। परिणामस्वरूप, प्रशासन बन्द राज्यों (Compact States) तथा यूरोपीय सरकारों के केन्द्रीकृत स्वरूपों की आवश्यकताओं के अनुरूप ही विकसित हुआ।" विल्सन के अनुसार, यूरोपीय धरती पर प्रशासन के विकास के दो कारण हैं।

पहला, यूरोपीय देशों में सरकारें आम सहमति से स्वतंत्र थीं, इसलिए वहाँ अधिक सरकारें थीं और दूसरा, एकाधिकारियों की सरकारों पर एकाधिकार रखने की इच्छा के कारण ऐसा हुआ। उन्होंने आगे कहा कि यदि कोई अमेरिका सहित अन्य देशों में यूरोपीय प्रशासनिक विज्ञान की अवधारणाओं का उपयोग करना चाहता है, तो उसे इसके उद्देश्यों, विचारों और सिद्धान्तों को मौलिक रूप से बदलना होगा। विल्सन के अनुसार अमेरिका में प्रशासन के विज्ञान में धीमी प्रगति का एक कारण लोकप्रिय संप्रभुता का अस्तित्व था। विल्सन ने महसूस किया कि, राजशाही की तुलना में लोकतंत्र में प्रशासन को व्यवस्थित करना अधिक कठिन था। विल्सन का यह स्पष्ट मत था कि कोई देश अपने प्रशासन पर तब तक अधिक अच्छी तरह से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता जब तक कि वह अपने संविधान के साथ छेड़छाड़ बन्द नहीं कर देता। वह चाहते थे कि संवैधानिक सिद्धान्तों पर बहस को अलग रखा जाए क्योंकि वे बहुत कम व्यावहारिक परिणाम देते हैं और, प्रशासन के विज्ञान का व्यवस्थित विश्लेषण किया जाए तथा उसे समझने की कोशिश की जाए। विल्सन ने सही कहा कि संविधान को चलाना संविधान बनाने से कहीं अधिक कठिन है।

3) **राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव (Politics and Administration Dichotomy)**–वुडरो विल्सन राजनीति और प्रशासन के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों का परीक्षण करते हैं। यद्यपि विल्सन राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव (Politics & Administration Dichotomy) का समर्थन करते हैं तथापि इस विषय पर उनके विचारों में अधिक स्पष्टता देखने को नहीं मिलती है क्योंकि कुछ बिंदुओं पर, उन्होंने समझाया कि दोनों अन्योन्याश्रित और परस्पर संबंधित हैं। जबकि कुछ अन्य बिंदुओं पर उन्होंने कहा कि दोनों अलग–अलग हैं। 1891 में, उन्होंने लिखा कि सरकार के अध्ययन में कोई भी विषय अपने आप में खड़ा नहीं हो सकता है– शायद सबसे कम प्रशासन, जिसका काम संचालन में सरकार के सिद्धान्तों को प्रतिबिंबित करना है। इस प्रकार, बिना विकृत किए और प्रशासन के वास्तविक महत्त्व को छीने बिना प्रशासन सार्वजनिक कानून की अन्य शाखाओं के साथ इसके सम्बन्ध से अलग नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि प्रशासनिक नींव राजनीति के गहरे और स्थायी सिद्धान्त हैं। इन बयानों से, यह स्पष्ट था कि विल्सन राजनीति और प्रशासन के बीच अन्योन्याश्रितता से अवगत थे, इसलिए उन्होंने सार्वजनिक प्रशासन के क्षेत्र को अलग करने की कोशिश की।

विल्सन का प्रयोजन प्रशासन को राजनीति से अलग करना था। इसके लिए विल्सन राजनीति और प्रशासन को एक–दूसरे से अलग बताते हुए राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव की वकालत करते हैं। विल्सन का मत था कि प्रशासन का क्षेत्र व्यवसाय का क्षेत्र है। यह राजनीति की जल्दबाजी और हंगामे से अलग होता है। यह अनेक मामलों में, यहाँ तक कि संविधानिक विवादों के विचार–विमर्श से भी दूर ही रहता है। उन्हें लगा कि प्रशासन राजनीति के दायरे से बाहर है। उनके अनुसार, प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं हैं। वे आगे कहते हैं कि राजनीति, राजनेताओं का विशेष क्षेत्र है और प्रशासन तकनीकी अधिकारियों का। यद्यपि राजनीति प्रशासन के लिए पाठ तैयार करती है और बताती है कि प्रशासन को क्या–क्या करना है लेकिन राजनीति को चाहिए कि वह प्रशासनिक कार्यालयों का दुरुपयोग न करे।

उपर्युक्त बातों से ऐसा प्रतीत होता है कि विल्सन प्रशासन और राजनीति के बीच अविभाज्यता और पृथक्करण के प्रश्न के सम्बन्ध में असंगत थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ एक ओर विल्सन राजनीति और प्रशासन के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे राजनीति–प्रशासन द्वैतभाव के सबसे बड़े समर्थक भी थे। विल्सन की इस मानसिकता की विवेचना अलग–अलग विद्वान् अलग–अलग ढंग से करते हैं। फ्रेडरिक मोशर का मानना है कि विल्सन ने राजनीति प्रशासन द्वैतभाव पर सबसे शक्तिशाली वक्तव्य दिया है। इसके विपरीत फ्रेड रिग्स कहते हैं कि विल्सन के लिए, राजनीति और प्रशासन न केवल एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, बल्कि प्रशासनिक कार्य राजनीतिक साधनों द्वारा तैयार की गई सामान्य राजनीति के कार्यान्वयन के अलावा शायद ही बोधगम्य हैं। इस प्रकार विल्सन को ऐसा कोई भ्रम नहीं था कि प्रशासनिक विकास राजनीतिक निर्वात में हो सकता है।

4) **प्रशासन और जनमत (Administration and Public Opinion)**–थॉमस वुडरो विल्सन, प्रशासन और जनमत (Public Opinion) के सम्बन्धों का भी परीक्षण करते हैं। प्रश्न यह था कि प्रशासन को चलाने में जनमत के किस भाग को लिया जाए। उनके अनुसार, जनमत एक आधिकारिक आलोचक की जगह लेता है परन्तु समस्या यह आती है कि जनमत को हस्तक्षेप की आदत से ग्रसित हुए बिना कैसे प्रभावी बनाया जाए। वह मानते हैं कि सार्वजनिक आलोचना के माध्यम से प्रशासन का विवरण एक अनाड़ी उपद्रव है, फिर भी नीति की निगरानी के लिए एक तंत्र के रूप

में, यह न केवल फायदेमंद है बल्कि यह पूरी तरह से अपरिहार्य है। अतः विल्सन का मत था कि प्रशासनिक अध्ययन को जन आलोचना नियन्त्रण का सबसे अच्छा साधन खोजना चाहिए और साथ ही उसे प्रशासन में हस्तक्षेप से बचना चाहिए।

5) **लोक–सेवा (Civil Service)**–विल्सन तकनीकी रूप से शिक्षित सिविल सेवा की वकालत करते हैं। उन्होंने महसूस किया कि लोकतंत्र को संगठित करने के लिए योग्यता पर आधारित सिविल सेवा आवश्यक थी और इससे लूट प्रणाली के राजनीतिक दुरुपयोग को ठीक करने में मदद मिलेगी जो उस समय स्पष्ट थी। यद्यपि विल्सन का विश्वास था कि प्रशासन सिद्धान्ततः राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल नहीं होते हैं पर साथ ही वे ऐसा नौकरशाह अभिजन–वर्ग बनाने के खिलाफ थे जो कि लोकतान्त्रिक नियन्त्रण में न हो। विल्सन ने महसूस किया कि अमेरिका में जो सिविल सेवा सुधार प्रगति पर था, वह आगे आने वाले समय के लिए नैतिक तैयारी में पूर्ण प्रशासनिक सुधार की प्रस्तावना मात्र था। वे कहते हैं हमारे लिए एक ऐसी सिविल सेवा आदर्श है जो सुसंस्कृत तथा पर्याप्त आत्म–निर्भर है जो संवेदना और उत्साह के साथ काम करे और निर्वाचनों तथा स्थिर जन–परामर्श के माध्यम से 'लोकप्रिय विचार' के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हो। अमेरिका में लोक सेवाओं में सुधार लाने के समर्थकों में विल्सन अग्रणी थे। उनका मानना था कि सिविल सेवा पेशेवर रूप से समर्थ और राजनीतिक रूप से निष्पक्ष होनी चाहिए। वस्तुतः विल्सन राजनीतिक रूप से तटस्थ सिविल सेवा के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले पहले व्यक्ति थे। इस प्रकार विल्सन ने आधुनिक सेवीवर्गीय प्रशासन की बौद्धिक आधारशिला की नींव रखी।

6) **प्रशासन के अध्ययन की तुलनात्मक विधि (Comparative Method of Study of Administration)**–विल्सन तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रवर्तक के रूप में भी जाने जाते है। उन्होंने दार्शनिक पद्धति को अस्वीकार करते हुए ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधियों पर जोर दिया। उनका मानना है कि "राजनीति के पूरे क्षेत्र में ये विधियाँ उतने सुरक्षित ढंग से लागू नहीं की जा सकती जितनी कि प्रशासन के क्षेत्र में लागू की जा सकती है। विल्सन ने जोर देकर कहा कि सरकार में तुलनात्मक अध्ययन के बिना, हम खुद को इस गलत धारणा से मुक्त नहीं कर सकते कि प्रशासन का स्वरूप लोकतांत्रिक और अन्य राज्यों में अलग–अलग होता है। उन्होंने आगे कहा कि कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रणाली की कमजोरियों, गुणों या विशिष्टताओं को एक दूसरे के साथ तुलना किए बिना कभी नहीं जान सकता है परन्तु इससे विदेशी प्रणालियों से आयात का भय पैदा होता है। इस डर को दूर करते हुए कि तुलनात्मक पद्धति के परिणामस्वरूप विदेशी प्रणालियों का आयात हो सकता है, उन्होंने जोर देकर कहा कि "अगर मैं किसी हत्यारे को अपने चाकू को चतुराई से तेज करते हुए देखता हूँ, तो मैं चाकू तेज करने का उसका तरीका अपना सकता हूँ, बिना यह जाने कि चाकू से हत्या करने का उसका इरादा है।" (If I see a murderous fellow sharpening the knfie cleverly, I can borrow his way of sharpening knife without borrowing his probable intention to commit murder with it.)

इसलिए विल्सन यह महसूस करते हैं कि यूरोपीय एकतन्त्रों से बिना उसकी एकतन्त्रीय भावना और साधनों को आयात किए उनके प्रभावी प्रशासनिक तरीकों को सीखा जा सकता है। वह आगे कहते हैं कि यदि लोकतंत्र को भीतर से अराजकता और बाहर से बल की चुनौती का सामना करने में सक्षम होना है तो ऐसा करना आवश्यक है। एक देश से दूसरे देश में प्रशासनिक तकनीक के निर्यात के आवश्यक

पहलू पर, विल्सन के सोच की भिन्न–भिन्न व्याख्याएँ हैं। उदाहरण के लिए, फ्रेडरिग्स के मत में विल्सन ने लोकतान्त्रिक सरकारों का समर्थन किया है और इसलिए वे गैर–लोकतान्त्रिक सरकारों को प्रशासनिक प्रौद्योगिकी के निर्यात का समर्थन नहीं करते है। हालाँकि, हेडी इससे अलग सोचते हैं, उन्होंने कहा है कि विल्सन के निबंध में ऐसा लगता है कि निर्यात के लिए प्रशासनिक तकनीक की उपलब्धता पर कोई प्रतिबंध नहीं है और उनका ध्यान केवल उन परिस्थितियों के सवाल पर है जिसके अंतर्गत इसे आयात किया जाना चाहिए।

1.4.5. आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

निःसन्देह वुडरो विल्सन लोक–प्रशासन अध्ययन विषय के जनक हैं। उन्होंने अपने लेख में जिन सिद्धान्तों का वर्णन किया उन्हें एक–एक कर वैध मान लिया गया। फिर भी विल्सन की कतिपय आलोचनाएँ की जाती हैं। जिनमें से कुछ निम्नलिखित है–

1) रिचर्ड स्टिलमैन का मत है कि विल्सन द्वारा प्रशासन को 'व्यापारिक गतिविधि के समान बताना वाकई परेशान करने वाला है। एक ओर तो वे सिविल सेवा को संविधानिक सत्ता के प्रति उत्तरदायी मानते हैं और दूसरी ओर, प्रशासन को व्यापार जैसा मानते हैं।

2) विल्सन की दूसरी आलोचना उनके राजनीति और प्रशासन सम्बन्धी विचारों से सम्बन्धित है। कहीं–कहीं वे राजनीति और प्रशासन के बीच गहन अन्तर्सम्बन्धों की बात करते हैं और कहीं उनके द्वैतभाव की। वास्तव में, विल्सन इस बात को लेकर भी दुविधा में दिखते हैं कि लोक प्रशासन वास्तव में क्या है।

3) विल्सन का यह लेख काफी सामान्य, अधिक व्यापक और काफी अस्पष्ट था। ऐसा लगता है कि विल्सन स्वयं ही नहीं जानते थे कि लोक प्रशासन है क्या। वह यह स्पष्ट करने में विफल रहे कि लोक प्रशासन के अध्ययन में वास्तव में क्या शामिल है, प्रशासनिक और राजनीतिक क्षेत्रों के बीच उचित सम्बन्ध क्या होना चाहिए या प्रशासनिक अध्ययन कभी भी प्राकृतिक विज्ञान के समान एक अमूर्त विज्ञान बन सकता है या नहीं।

4) वान रिपर तो विल्सन और उनके लेख को लोक प्रशासन के जन्मदाता होने की जिम्मेदारी से ही मुक्त करते हैं।

उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद आज लोक–प्रशासन के क्षेत्र में वुडरो विल्सन का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया गया है। 18 वीं और 19 वीं शताब्दी में लोक प्रशासन के विकास के दृष्टिकोण से देखा जाए तो उनके प्रसिद्ध निबंध को निश्चित रूप से अग्रणी कहा जा सकता है। अपने सबसे प्रतिष्ठित निबंध के माध्यम से, विल्सन ने न केवल प्रशासन के विचार को पेश किया, बल्कि लोक प्रशासन को एक सामान्य पाठ्यक्रम के रूप में भी प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं, लोक प्रशासन में विशिष्ट माने जाने वाले सिद्धान्तों को सबसे पहले विल्सन ने अपने प्रसिद्ध निबंध में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया था।

ड्वाइट वाल्डो के मत में स्व–जागरुक लोक–प्रशासन के इतिहास में वुडरो विल्सन का लेख सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। प्रशासन के सिद्धान्त पर यह एक उत्कृष्ट कार्य है। उन्होंने बड़ी ही संक्षिप्तता के साथ लोकतन्त्र में लोक–प्रशासन की समस्याओं और गुणों (Properties) का विश्लेषण किया। इसमें भविष्यवाणी के गुण है। उन्होंने लोक प्रशासन के अध्ययन और व्यवहार के बीच के अन्तराल को कम करना चाहा। अपने इस अतिविशिष्ट लेख द्वारा ही विल्सन ने प्रशासन का विचार प्रतिपादित किया।

1.5. वैज्ञानिक प्रबन्धन– एफ.डब्ल्यू. टेलर (SCIENTIFIC MANAGEMENT - F.W. TAYLOR)

1.5.1. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Scientific Management Theory)

"वैज्ञानिक प्रबन्ध" दो शब्दों से मिलकर बना है–वैज्ञानिक + प्रबन्ध। यहाँ वैज्ञानिक से अभिप्राय है–विज्ञान सम्बन्धी तथा प्रबन्ध से अभिप्राय है–दूसरों से काम कराना। इस प्रकार "वैज्ञानिक प्रबन्ध" का अर्थ है, श्रमिकों से काम कराने में नए अधिगम अथवा नए तरीके के प्रयोग।" सरल शब्दों में कहा जाए तो "वैज्ञानिक प्रबन्ध" का अर्थ है–विशिष्ट ज्ञान से किसी कार्य को सुव्यवस्थित ढंग से करना। विद्वानों ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को परिभाषित किया है जो निम्नवत् हैं–

एफ. डब्ल्यू टेलर के अनुसार, "यह जानने की कला कि तुम व्यक्तियों से क्या कराना चाहते हो तथा यह देखना कि वे सबसे उचित व सस्ते ढंग से कार्य करते हैं, वैज्ञानिक प्रबन्ध कहलाता है।"

जोन्स के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध उत्पादन के नियन्त्रण एवं विधियों में एक नवीन अनुशासन प्राप्त करने के लिए नियमों का एक समूह है।"

एच. एल. पर्सन के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध से आशय ऐसे संगठन तथा प्रणालियों से है जो उद्देश्ययुक्त सामूहिक प्रयासों से पूर्ण हैं तथा जिनका निर्माण वैज्ञानिक अनुसन्धान और विश्लेषण के आधार पर हुआ हो, न कि मनमाने तौर पर अथवा परम्परागत त्रुटि सुधार (Trial and Error) प्रणाली के आधार पर।"

पीटर ड्रकर के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्ध का सारभूत तत्त्व कार्य के व्यवस्थित अध्ययन, कार्य का इसके तत्त्वों में विश्लेषण तथा श्रमिक के कार्य के प्रत्येक तत्त्व के निष्पादन में व्यवस्थित सुधार करने में निहित है।

जी. एस. सुधा के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्धन एक ऐसी प्रबन्धकीय विचारधारा है जो रूढ़िवादी, परम्परागत एवं अनुमानित धारणाओं के स्थान पर तथ्यों, तर्कों, प्रयोगों एवं विश्लेषण पर आधारित सिद्धान्तों को स्वीकार करती है। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सुव्यवस्थित प्रबन्ध है।

एच. पी. केण्डाल ने कुशलता के आधार पर प्रबन्ध का वर्गीकरण करते हुए निम्न तीन प्रकार के प्रबन्ध बताए हैं–

1) **अव्यवस्थित प्रबन्ध (Unsystematised Management)**–अव्यवस्थित प्रबन्ध में कार्य करने की पद्धति दोषपूर्ण होती है।
2) **व्यवस्थित प्रबन्ध (Systematised Management)**–व्यवस्थित प्रबन्ध के अन्तर्गत सम्पूर्ण क्रियाएँ नियमित ढंग से की जाती है।
3) **वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध में नियोजन एवं नियन्त्रण का केन्द्रीकरण होता है।

संक्षेप में कहा जाए तो, लगातार अन्वेषण के द्वारा प्रबन्ध को प्रभावशाली बनाने को ही वैज्ञानिक प्रबन्ध कहा जाता है।

1.5.2. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Scientific Management Theory)

उपरोक्त दी गई परिभाषाओं का विश्लेषण करने के पश्चात् यह ज्ञात किया जा सकता है कि वैज्ञानिक प्रबन्धन की क्या विशेषताएँ है। वैज्ञानिक प्रबन्धन की विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

1) **निश्चित लक्ष्य एवं योजना (Definite Goals and Plan)**–वैज्ञानिक प्रबन्धन में लक्ष्यों की एक रूपरेखा तैयार की जाती है। यह सुनिश्चित किया जाता है कि लक्ष्य प्राप्ति हेतु किस प्रकार आवश्यक साधन एकत्रित किए जाएंगे तथा उन्हें किस प्रकार उपयोग किया जाएगा।

2) **नियमावली (A Set of Rules)**–विश्लेषण एवं प्रयोग के आधार पर निष्कर्षों को क्रियान्वित करने हेतु नियम बनाए जाते हैं। प्रत्येक कर्मचारी को इन नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। जिससे प्रबन्धकीय अनुशासन बना रहे।

3) **कार्यक्षमता में वृद्धि (Increase in Efficiency)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रमुख लक्षण है–कार्य क्षमता में वृद्धि करना। लागत कम करने, समय बचाने एवं जल्द कार्य को पूर्ण करने वाली प्रणालियों के निरन्तर प्रयोग से कार्यक्षमता में वृद्धि स्वाभाविक है।

4) **मितव्ययिता (Thrift)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधार मितव्ययिता को माना जाता है। सभी प्रकार के अपव्यय को दूर करने एवं उत्पादन के गैर आवश्यक तत्त्वों को समाप्त करने हेतु विशेष प्रयास किए जाते हैं जिससे कि कम लागत पर अधिक उत्पादन हो सके।

5) **गतिशील प्रकृति (Dynamic Nature)**–वैज्ञानिक प्रबन्धन एक गतिशील एवं परिवर्तनशील विचार है। इसके अन्तर्गत् "विकास एवं परिवर्तन" के सिद्धान्त को सर्वोपरि माना जाता है।

6) **टीम भावना (Team Spirit)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध का एक प्रमुख लक्षण है–सामूहिक हित के लिए सामूहिक प्रयास। वैज्ञानिक प्रबन्धन में प्रबन्ध का कार्य सभी कर्मचारियों में टीम भावना जाग्रत करना है एवं उन्हें लक्ष्य प्राप्ति हेतु सामूहिक रूप से प्रेरित करना है।

1.5.3. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के उद्देश्य (Objective of Scientific Management Theory)

वैज्ञानिक प्रबन्धन को न्यूनतम व्यय पर अधिकतम लाभ प्राप्त करने की इच्छा ने जन्म दिया है। वैज्ञानिक प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य है–श्रम लागत को कम कर यंत्रों का अधिक प्रयोग करना। मैरी कुशिंग नाइल्स के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्धन मानवीय एवं भौतिक शक्ति तथा समय का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करके सहकर्मियों तथा समाज के मध्य सन्तुष्टि प्रदान करके सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति करता है।"

टैलर के अनुसार, "वैज्ञानिक प्रबन्धन इस मान्यता पर आधारित है कि श्रमिक तथा नियोक्ता दोनों के हित (स्वार्थ) एक हैं और दीर्घकाल में नियोक्ता की समृद्धि के बिना कर्मचारी की समृद्धि नहीं हो सकती है। श्रमिकों को इच्छित अधिक मजदूरी तथा नियोक्ता को सस्ता श्रम, वैज्ञानिक प्रबन्ध से ही सम्भव है।"

डॉ. जोन्स के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1) श्रम एवं पूंजी में समन्वय स्थापित करना।
2) कार्य की सभी शाखाओं में अधिक क्षमता की दृष्टि से प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध करना।

3) विशेषज्ञ एवं सलाहकार व्यवस्था द्वारा व्यक्तिगत निर्णय के क्षेत्र को सीमित करना।
4) कच्चा माल, उपकरण, कार्यविधि, कार्य दशा में सुधार एवं प्रमापीकरण करना।
5) श्रमिकों को अत्यधिक कार्यभार थकान या दुर्घटनापूर्ण कार्यों से सुरक्षित रखना।
6) मार्ग निर्धारण, कार्य विन्यास, उत्पादकीय सामग्री का आयोजन, समय क्रम निर्धारण, क्रम भण्डारण एवं लेखा विधियों में सुधार करना।
7) निरन्तर मार्गदर्शन, सामयिक शिक्षण एवं तत्काल पुरस्कार की व्यवस्था करना।
8) अनुमान एवं पूर्वधारणाओं के आधार पर बने हुए नियमों के बदले तथ्यों एवं विश्लेषण के आधार पर नियम बनाना।
9) संस्थाओं एवं शाखाओं में समन्वय के अधिक अवसर उपलब्ध कराना तथा उन पर नियन्त्रण स्थापित करना जिससे कार्य विलम्ब, त्रुटियों, दुर्घटनाओं एवं कार्य के प्रति उपेक्षा की मात्रा कम हो सके।
10) श्रमिकों की योग्यता के अनुसार काम उपलब्ध करना, उन्हें प्रशिक्षण द्वारा उन्नति के अवसर प्रदान करना एवं कार्यक्षमता में वृद्धि करना।

1.5.4. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर (Frederic Winslow Taylor)

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर ने अन्य वचिारकों की तुलना में लोक–प्रशासन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रबन्ध का प्रत्येक विद्यार्थी टेलर के नाम से परिचित है। फ्रेडरिक विंस्लो टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्धन का जनक माना जाता है वे पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका में उद्योग के प्रबन्धन पर गंभीर शोध प्रयास किए। टेलर ने उद्योगों की समस्याओं को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाने की वकालत की और प्रबन्ध को विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। इसलिए प्रायः उनका न केवल वैज्ञानिक प्रबन्धन के जनक के रूप में सम्मान किया जाता है बल्कि उन्हें आधुनिक प्रबन्धन तकनीकों और उपागमों का प्रणेता भी समझा जाता है। प्रबन्ध की वैज्ञानिकता पर जोर देने तथा प्रबन्ध को वैज्ञानिक आधार पर संचालित करना ही वैज्ञानिक प्रबन्ध का सार है।

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर का जन्म 20 मार्च, 1856 को संयुक्त राज्य अमेरिका के पेनिसिलवेनिया के जर्मन टाउन शहर में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा फ्रांस तथा जर्मनी के विद्यालयों में हुई। इन्होंने हावर्ड लॉ स्कूल से इण्टर पास किया। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण कम रोशनी में पढ़ने से इनकी दृष्टि कमजोर हो गयी जिसके कारण इन्हें अपनी पढ़ाई कुछ समय के लिए बन्द कर दी। इसके बाद 1875 तक टेलर की दृष्टि इतनी ठीक हो गई थी कि उन्होंने मात्र 18 वर्ष की आयु में फिलाडेल्फिया के हाइड्रोलिक वर्क्स में काम करना प्रारम्भ किया तथा इसके बाद 1878 में वे 'मिडवेल स्टील कम्पनी' में श्रमिक बन गए। बाद में न्यूजर्सी के हॉबोकन स्टीवेन्सन प्रौद्योगिक संस्थान में यान्त्रिक अभियान्त्रिकी में उपाधि प्राप्त की और मिडवेल स्टील कम्पनी के मुख्य अभियन्ता (engineer) बन गए। उन्होंने उस समय की कई प्रमुख कंपनियों में काम किया, जिनमें बेथलेहम स्टील कॉर्पोरेशन भी शामिल है, जहाँ शायद उनका सबसे प्रसिद्ध प्रयोग हुआ था। टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्धन पद्धति को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए 45 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति ले ली तथा अपनी मृत्यु तक अपना समय वैज्ञानिक प्रबन्ध की तकनीकों के शोध में लगाया। उन्हें पेंसिल्वेनिया विश्वविद्यालय से मानद उपाधि मिली और 1906 में उन्हें अमेरिकन सोसाइटी ऑफ मैकेनिकल इंजीनियर्स (ASME) का अध्यक्ष चुना गया। 21 मार्च, 1915 को 64 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई। दक्षता के प्रति उनका लगाव असीमित था और काम करने की दक्षता अपार थी। उनका अविश्वसनीय सक्रिय जीवन एक उल्लेखनीय चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

1.5.5. वैज्ञानिक प्रबन्धन के विकास में टेलर का योगदान (Taylor's Contribution to the Development of Scientific Management)

टेलर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर अनेक पुस्तकें लिखीं और कई लेख प्रकाशित करवाए। वैज्ञानिक प्रबन्धन के विकास में ट्रेलर का योगदान उनके शोध प्रबन्धों में दर्ज है जो कि इस प्रकार है –

1894 – Notes on Belting
1895 – A Piece & rate System
1896 – The adjustment of wages to efficiency
1903 – Shop management
1906 – On the art of cutting metals
1911 – Principles of Scientific Management

1) अमेरिका की यान्त्रिक इंजीनियरिंग सोसाइटी के समक्ष टेलर का 1895 में एक लेख 'ए पीस रेट सिस्टम' प्रस्तुत किया गया। टेलर ने इस लेख में सुझाव दिया कि जहाँ भी विभेदात्मक पुरस्कार व्यवस्था को अपनाया जाता है वहाँ की मजदूरी–भुगतान व्यवस्था में कुछ सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए। जो इस प्रकार है–
   i) समय के जरिए कार्य का परीक्षण और विश्लेषण ताकि दर या मानक निर्धारण किया जा सके।
   ii) अंशों में कार्य की भिन्न–भिन्न दर।
   iii) भुगतान व्यक्ति को करना ना कि व्यक्ति के पद को।

2) 1903 में प्रस्तुत अपने लेख 'शॉप मैनेजमेन्ट' (Shop Management) में टेलर ने कार्यशाला संगठन और प्रबन्धन तंत्र की विस्तार से चर्चा की है–
   i) अच्छे प्रबन्ध का उद्देश्य ऊँची मजदूरी का भुगतान और कम इकाई उत्पादन लागत होता है।
   ii) प्रबन्धन तंत्र को प्रबन्धन समस्याओं के निदान के लिए शोध और प्रयोग की वैज्ञानिक पद्धतियों का इस्तेमाल करना चाहिए।
   iii) कार्य की दशाओं का प्रमापीकरण किया जाना चाहिए तथा वैज्ञानिक आधार पर कर्मचारियों का चयन किया जाए।
   iv) प्रबन्धन को हर हालत में कामगारों के लिए औपचारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए साथ ही नए नियुक्ति कामगारों को विशेष निर्देश दिया जाना चाहिए जिससे कि वह काम के लिए मानक औजारों और सामग्री का ही इस्तेमाल करें।
   v) वैज्ञानिक आधार पर श्रमिकों व प्रबन्ध के बीच मैत्रीपूर्ण सहयोग की भावना का विकास किया जाना चाहिए।

3) टेलर के मत में 'प्रबन्ध' यह जानने की कला है कि आप दूसरों से क्या करवाना चाहते हैं और इसके बाद यह देखना कि किस प्रकार वे इसे श्रेष्ठ तरीके और मितव्ययता के साथ करते हैं। अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ साइन्टिफिक मैनेजमेन्ट' में टेलर 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध सिद्धान्त' (Principle of Management by Exception) का प्रतिपादन करते हैं। टेलर का मत था कि दिन–प्रतिदिन के कार्य के सम्पादन के लिए प्रबन्ध द्वारा कुछ नीतियों, नियमों, विधियों, प्रक्रियाओं तथा प्रमापों को लागू कर देना चाहिए। इसके बाद प्रबन्ध को अपना ध्यान केवल उन्हीं मामलों पर रखना चाहिए जहाँ प्रमापों के अनुरूप कार्य नहीं हुआ है, या निर्धारित मात्रा से अधिक काम

हुआ है। प्रबन्ध को केवल वहीं ध्यान देना चाहिए जहाँ निर्धारित नीतियों और प्रक्रियाओं का अनुसरण नहीं किया जा रहा है या नहीं किया जा सकता। प्रबन्ध को केवल अपवादस्वरूप ही दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप करना चाहिए। यही टेलर का 'अपवाद द्वारा प्रबन्ध' का सिद्धान्त है।

4) अपने लेख 'दी आर्ट ऑफ कटिंग मैटल्स' से भी टेलर को काफी ख्याति प्राप्त हुई। यह लेख टेलर के आनुभावकि प्रयोगों पर आधारित था।

1.5.6. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientfiic Management of Frederic Winslow Taylor)

टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त संगठन का पहला क्रमबद्ध सिद्धान्त है। टेलर का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक के रूप में ही जाना जाता है। वैज्ञानिक प्रबन्धन दृष्टिकोण का विकास औद्योगिक क्रान्ति की प्रारम्भिक अवस्था में हुआ। जिसके माध्यम से औद्योगिक विकास की कुछ समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया गया। औद्योगिक समाज की मुख्य चिंताएँ, दक्षता सुधारना, उत्पादन की लागत घटाना और लाभ बढ़ाना था। जिसको दो प्रमुख रणनीतियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। जिसमें एक का सम्बन्ध कामगारों की दक्षता प्रबन्धन के साथ कार्य की प्रौद्योगिकी तथा तकनीकी सुधारने से है, जबकि दूसरे का सम्बन्ध नई कालोनियों के लिए बाजार का विस्तार करना है। टेलर औद्योगिक समाज की पहली समस्या का समाधान करने का प्रयास कर रहे थे। इसलिए उन्होंने कार्य करने के वैज्ञानिक ज्ञान और संगठनों का प्रबन्धन करने के वैज्ञानिक तरीके पर बल दिया। टेलर के अनुसार प्रबन्ध यह जानने की कला है कि आप दूसरे लोगो से क्या चाहते हैं और उसके बाद यह देखना कि किस प्रकार कम खर्च पर अधिक दक्षता से यह कार्य किया जाता है।

टेलर के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध यह मानकर चलता है कि मालिक और श्रमिक दोनो के वास्तवकि हित समान एवं एक ही हैं क्योंकि मालिको की सम्पन्नता बिना श्रमिकों की सम्पन्नता के लम्बे समय तक चल नहीं सकती। इसलिए यह सम्भव है कि श्रमिक को ऊँची मजदूरी दी जानी चाहिए (जो वह चाहता है) एवं मालिक को निम्न श्रम लागत दी जानी चाहिए (जो वह चाहता है)। यह सही है कि सर्वप्रथम वैज्ञानिक प्रबन्ध शब्द का प्रयोग लुई बैन्डीस ने 1910 में किया था फिर भी टेलर को वैज्ञानिक प्रबन्ध का जनक माना जाता हैं। वैज्ञानिक प्रबन्ध पर उनके विचार 'शॉप मैनेजमेन्ट' तथा 1911 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'प्रिंसिपल ऑफ साइन्टिफिक मैनेजमेन्ट' में मिलते हैं। इसी पुस्तक के शीर्षक ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को लोकप्रिय बना दिया।

1.5.6.1. टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के तत्त्व या सिद्धान्त (Elements/Principles of Taylor's Scientific Management)

वैज्ञानिक प्रबन्ध के कुछ मूलभूत सिद्धान्त हैं। इन सिद्धान्तों के पालन से ही उसके उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

1) **वैज्ञानिक न कि अनुभव या अनुमान (Scientific not Rule of Thumb)**–टेलर महोदय का मानना है कि प्रत्येक कार्य हेतु वैज्ञानिक विधि का विकास किया जाना चाहिए। कार्य निष्पादन की परम्परागत विधियों, "अंगूठे के नियम", परीक्षण एवं भूल विधि, अनुमान, अटकलबाजी का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। अंगूठे के नियम का अर्थ स्पष्ट करते हुए टेलर महोदय लिखते हैं, "यह श्रमिकों के मस्तिष्क, हाथों व शरीर तथा उनके कार्य कौशल, दक्षता व चतुराई पर आधारित होता है तथा जो अभिलिखित नहीं होता है।"

2) **संघर्ष के स्थान पर मैत्री (Harmony not Discord)**–टेलर का मानना है कि किसी भी संगठन में नियोक्ता एवं श्रमिक दोनों ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। दोनों के संयुक्त प्रयासों से ही संगठन का संचालन हो सकता है। अतः दोनों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तथा कल्याणकारी सामंजस्य होना अति आवश्यक हैं। संघर्ष एवं असंगति से संगठन को हानि पहुँचती है।

3) **कार्य सम्बन्धी अनुमान का सिद्धान्त (Principle of Task Idea)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध का यह आधारभूत सिद्धान्त है इसमें सर्वप्रथम यह सुनिश्चित किया जाता है कि हम श्रमिकों से क्या कार्य करवाना चाहते हैं तथा एक कुशल श्रमिक से इस कार्य के सम्बन्ध में क्या अपेक्षित है?

4) **प्रयोग (Experiment)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध में कराए जाने वाले कार्यों का सही अनुमान लगाने हेतु समुचित प्रयोग करना अति आवश्यक है। प्रयोग के माध्यम से श्रमिकों की विभिन्न क्रियाओं की जाँच एवं उनका विश्लेषण किया जाता है जिससे श्रमिकों में सुधार करने एवं कुशलता बढाने की सम्भावना का पता लगाया जा सके।

5) **सहकारिता न कि व्यक्तिवाद (Cooperation not Individualism)**–फ्रेडरिक टेलर का मानना है कि किसी भी संगठन में नियोक्ता एवं उसके श्रमिक परस्पर एक–दूसरे के सहयोगी होते हैं। अतः संगठन में उन्हें एक–दूसरे के हितों, लक्ष्यों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए।

6) **नवीनतम यंत्र तथा उपकरण (Modern Machine and Equipment)**–वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं वैज्ञानिक यन्त्रीकरण में प्रत्यक्ष सह–सम्बन्ध है। अधिकांशतः श्रमिकों की कुशलता उन यंत्रों एवं उपकरणों पर भी निर्भर करती है जो उन्हें कार्य करने हेतु दिया जाता है। पुरानी एवं अकुशल मशीनों से न ही कुशलता से उत्पादन होता है और न ही उत्पादित माल की किस्म में सुधार होता है। अतः बड़ी सावधानी से यंत्र एवं उपकरण का चुनाव करना चाहिए।

7) **कारखानों का उपयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद वातावरण (Congenial and Healthy Factory Environment)**–जिन कारखानों में कर्मचारी कार्य करते हैं वहाँ के उपयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद वातावरण हेतु निम्न सुविधाओं का होना आवश्यक है–शुद्ध वायु का आवागमन, शीतकाल में गर्म तापमान की व्यवस्था एवं ग्रीष्म ऋतु में शीतदायक हवा की व्यवस्था, जलपानगृह, मनोरंजनगृह, श्रमिकों को कार्य करने हेतु पर्याप्त स्थान एवं अन्य।

8) **क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation)**–संगठन के निम्नलिखित तीन प्रारूप होते हैं–
   i) विभागीय संगठन
   ii) कर्मचारी संगठन
   iii) क्रियात्मक संगठन।

1.5.6.2. टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन की तकनीकें (Techniques of Taylor's Scientific Management)

टेलर द्वारा निर्धारित तकनीकें उसके अपने कैरियर/जीवन वृत्ति के दौरान किए गए शोध कार्यों पर आधारित हैं। वैज्ञानिक प्रबन्धन की तकनीकें इस प्रकार हैं–

1) **मानसिक क्रान्ति (Mental Revolution)**–मानसिक क्रान्ति का विचार टेलर का मौलिक योगदान है। टेलर मानसिक क्रान्ति को वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल तत्त्व मानते हैं। मानसिक क्रान्ति से आशय श्रमिकों और मालिकों की मानसिकता में परिवर्तन से है अर्थात् श्रमिकों को चाहिए कि वे प्रबन्धकों को अपना हितैषी समझें तथा उनके

साथ सहयोग की भावना का परिचय दें। साथ ही प्रबन्धकों को चाहिए कि वे अपने मस्तिष्क से इस विचारधारा का त्याग करें कि श्रमिक कामचोर होते हैं और कम परिश्रम से अधिक मजदूरी प्राप्त करना चाहते हैं। श्रमिकों एवं प्रबन्धकों की मान्यताओं एवं विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने को ही वे मानसिक क्रान्ति कहते हैं। इस प्रबन्धन तकनीक के अनुसार, सहयोग की भावना को बढ़ावा देने और दक्षता बढ़ाने के लिए सकारात्मक मानसिकता काफी महत्त्वपूर्ण है। इसके अभाव में, किसी संगठन में श्रम विभाजन और जिम्मेदारी के प्रतिनिधिमंडल के बारे में संघर्ष उत्पन्न होना तय है। परिणामस्वरूप, नियोक्ताओं और उनके श्रमिकों दोनों को सहयोग के माध्यम से और व्यावसायिक परिचालनों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर अपनी फर्म की समग्र उत्पादकता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

2) **प्रकार्यात्मक–फौरमैनशिप (Functional Formanship)**–टेलर की यह अवधारणा कार्यों के विशेषीकरण पर आधरित है। समान्यतः, एक कार्यात्मक संगठन में, उपलब्ध कार्य को विभिन्न भागों में विभाजित किया जाता है और उन श्रमिकों को सौंपा जाता है जो उनमें कुछ हद तक विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रणाली में श्रमिक के कार्यों को निर्देशित करने का दायित्व आठ व्यक्तियों (अधिकारियों) का होता है। वैज्ञानिक प्रबन्धन की तकनीकों के अनुसार, एफडब्ल्यू टेलर ने सुझाव दिया था कि किसी संगठन को नियोजन और उत्पादन विभाग दोनों की गुणवत्ता और दक्षता बढ़ाने के लिए उप–विभागों में विभाजित किया जाना चाहिए। अतः इन आठ में से चार व्यक्ति नियोजन विभाग से सम्बन्धित और चार उत्पादन विभाग से सम्बन्धित हैं। एक कार्यात्मक संगठन में, योजना विभाग का नेतृत्व एक योजना प्रबन्धक करता है। अन्य कर्मचारी और उनके कार्य इस प्रकार हैं–

i) **नियोजन प्रभारी–**

a) **कार्यक्रम क्लर्क (Routine Clerk)**–कार्यक्रम क्लर्क का कार्य दैनिक कार्यक्रम तैयार करना तथा उससे सम्बन्धित आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना है।

b) **निर्देशन कार्ड क्लर्क (Instruction Card Clerk)**–इस क्लर्क का कार्य निर्देश पत्र तैयार करना है (जिसमें काम के प्रकार, लागू करने की प्रक्रिया और इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरण और कच्चे माल के बारे में जानकारी होती है) और उन्हें गैंग बॉस तक पहुँचाना है।

c) **समय एवं लागत क्लर्क (Time and Cost Clerk)**–यह विभिन्न क्रियाओं में लगने वाले समय और लागतों के सम्बन्ध में सूचनाएँ रखने का कार्य करता है।

d) **अनुशासक (Disciplinarian)**–यह अधिकारी यह सुनिश्चित करता है कि सौंपे गए कार्य अनुशासित तरीके से निष्पादित किए जाएं।

ii) **उत्पादन प्रभारी–**

a) **गैंग बॉस (Gang Boss)**–इसका कार्य प्रत्येक श्रमिक से निर्धारित योजना के अनुसार कार्य लेना, श्रमिकों को कार्य की आवश्यक सूचना, मार्गदर्शन व सामग्री प्रदान करना होता है।

b) **स्पीड बॉस (Speed Boss)**–यह श्रमिकों की कार्य की गति पर निगरानी रखता है। इसका दायित्व इस बात का ध्यान रखना है कि प्रत्येक कार्य सही समय पर हो।

c) **रिपेयर बॉस (Repair Boss)**–यह सभी उपकरणों को अच्छी कार्यशील स्थिति में रखने के लिए जिम्मेदार होता है और उससे संबंधित समस्याओं का तुरंत समाधान करता है।

d) **निरीक्षक (Inspector)**–यह अपने उद्यम में उत्पादित वस्तुओं की किस्म और गुण आदि की जाँच करता है तथा देखता है कि वस्तुएँ विक्रय योग्य हैं या नहीं। टेलर की इस सम्पूर्ण योजना को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

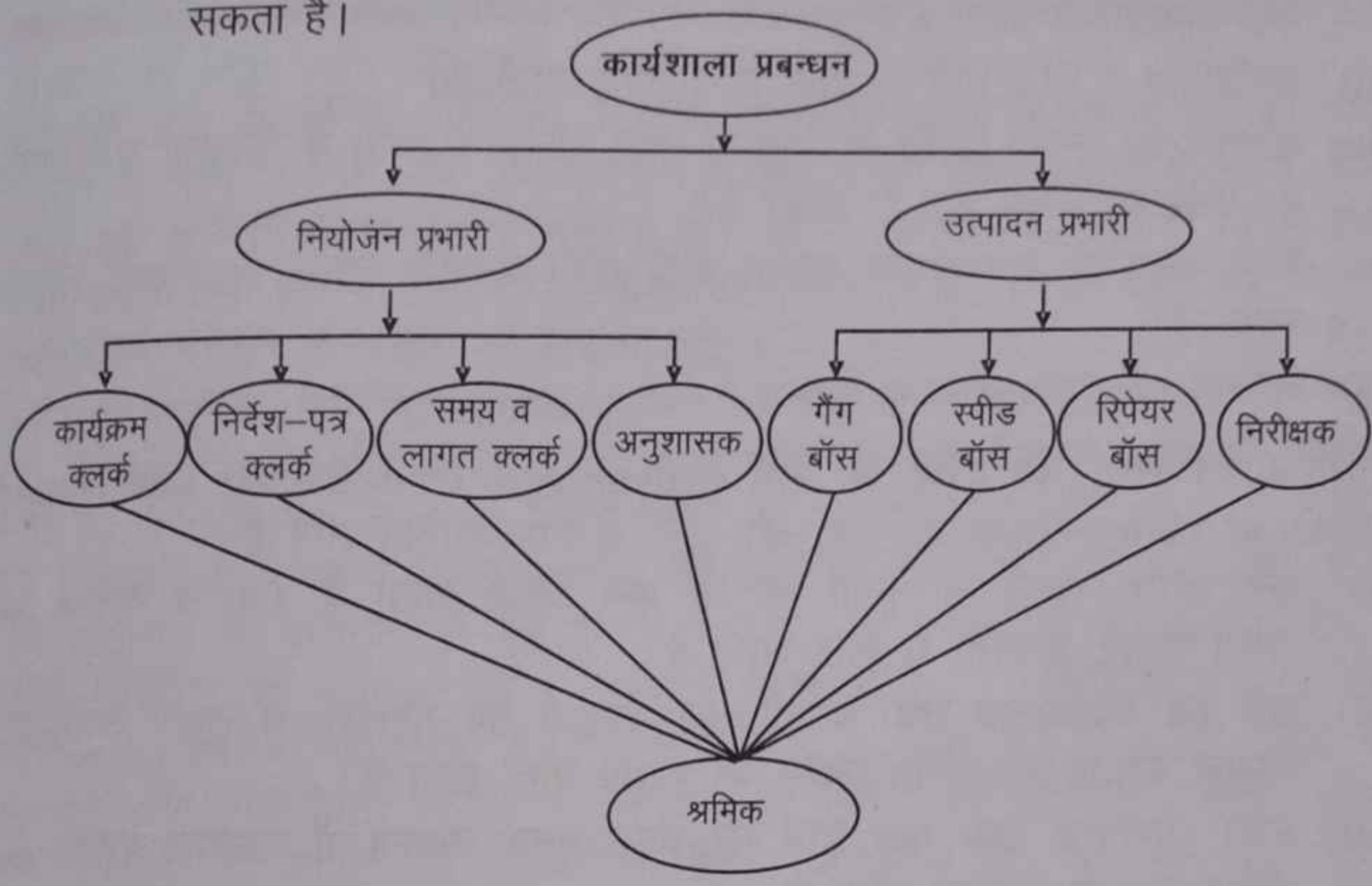

चित्र 1.1– फ्रेडरिक विन्सलो टेलर– प्रकार्यात्मक फौरमैनशिप

टेलर महोदय ने अपने वैज्ञानिक प्रबन्धन में क्रियात्मक संगठन को मान्यता दी है। इस संगठन में प्रबन्ध तथा सहायक कर्मचारियों के निदेशन सम्बन्धी सम्पूर्ण कर्तव्य को कार्य की पद्धति के अनुसार विभाजित कर दिया जाता है।

1.5.7. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के लाभ (Advantages of Scientific Management Theory)

सर्वांगीण उन्नति के लिए वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रयोग किया जाता है। इसका उद्देश्य इस प्रकार से उद्योग का प्रबन्ध करना है कि उससे सम्बन्धित लाभ सभी को प्राप्त हो सके। अतः इस प्रबन्ध के द्वारा उद्योग से सम्बन्धित सभी वर्गों जैसे–श्रमिकों, उद्योगपतियों एवं राष्ट्र को लाभ पहुँचता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध से विभिन्न वर्गों को जो लाभ प्राप्त होते हैं उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

1) **उत्पादकों एवं नियोक्ताओं की दृष्टि से लाभ (Advantages from Producers and Employers Point of Views)**–उत्पादकों एवं नियोक्ताओं की दृष्टि से निम्नलिखित लाभ हैं–

i) उत्पादन, नियोजन तथा नियन्त्रण साधनों के कुशलतम उपयोग एवं श्रमिकों की कार्यक्षमता में सुधार के फलस्वरूप उत्पादन बढ़ जाता है।

ii) औजारों, सामग्रियों, उपकरणों एवं कार्य–विधियों के प्रमाणीकरण के फलस्वरूप उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार होता है।

iii) प्रमापीकृत वस्तुओं का उत्पादन, निर्माताओं की प्रतिष्ठा व ख्याति में बढ़ोत्तरी करती है।

iv) वैज्ञानिक प्रबन्धन कमी को समाप्त करता है।

v) उत्पादकों का लाभ अधिक बढ़ जाता है।

vi) वेतन में वृद्धि एवं कार्य करने की स्थितियों में सुधार होने से औद्योगिक शांति स्थापित होती है।

2) **श्रमिकों की दृष्टि से लाभ (Advantages from the Labourers Point of View)**–श्रमिकों की दृष्टि से निम्नलिखित लाभ हैं–
   i) वैज्ञानिक चुनाव, प्रशिक्षण एवं सही कार्य पर श्रमिकों को लगाए जाने पर उनकी कार्य क्षमता बढ़ जाती है।
   ii) कार्यक्षमता में वृद्धि होने से वेतन में भी वृद्धि होती है।
   iii) श्रमिकों को उनकी प्रवृत्ति के अनुसार कार्य सौपने से काम में नीरसता घट जाती है। काम का समय कम हो जाता है।
   iv) कार्य करने में अनावश्यक थकान नहीं होती जिससे उनका कार्यकारी जीवन बढ़ता है।
   v) श्रमिकों को मुफ्त प्रशिक्षण मिलता है।

3) **समाज एवं राष्ट्र की दृष्टि से लाभ (Advantages from Society and Nation Point of View)**–समाज एवं राष्ट्र की दृष्टि से निम्नलिखित लाभ हैं–
   i) कम लागत लगने से मूल्यों को भी कम किया जाता है, जिससे समाज को सस्ती वस्तुएँ आसानी से मिल जाती हैं।
   ii) बढ़ी हुई कार्यक्षमता तथा प्रमापीकरण वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार लाता है। जिससे समाज को उन्नत किस्म की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं।
   iii) अच्छी गुणवत्ता तथा कम दाम पर प्राप्त मूल्य, समाज में उपभोग बढ़ाता है। जीवन स्तर में बदलाव आता है।
   iv) उत्पादन बढ़ने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
   v) कार्यकुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है।

1.5.8. वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Scientific Management Theory)

प्रशासन के क्षेत्र में टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों ने क्रांति उत्पन्न कर दी एवं औद्योगिक समस्याओं के निराकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। परन्तु टेलर का यह सिद्धान्त आलोचना से परे नहीं है। इस सिद्धान्त की निम्नवत् बिन्दुओं पर आलोचना की गई है–

1) यह केवल कारखाना स्तर पर उत्पादन पर जोर देता है।
2) यह सिद्धान्त मानवीय पक्ष की अवहेलना करता है।
3) इस सिद्धान्त में कहा गया है कि श्रमिक केवल एक मशीन है जिसका उद्देश्य उत्पादन करना है।
4) इस सिद्धान्त के अन्तर्गत् मानवीय अभिप्रेरणाओं की व्याख्या केवल आर्थिक लाभ के लिए की गयी है।
5) इसमें श्रमिकों के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओं की अवहेलना की गयी है।
6) यह सिद्धान्त प्रशासनिक तानाशाही को जन्म देता है।
7) इसके अन्तर्गत् कार्य विधियों, कार्य माप एवं वेतन का वैज्ञानिक तरीके से उचित मापन नहीं किया जाता है।
8) टेलर महोदय के मानसिक क्रांति में वर्णित है कि सभी औद्योगिक समस्याओं का समाधान नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य आपस में विचार विमर्श द्वारा किया जाएगा। इससे श्रम संगठनों की शक्ति क्षीण होती है।

1.6. प्रशासनिक प्रबन्धन सिद्धान्त (ADMINISTRATIVE MANAGEMENT THEORY)

लोक प्रशासन की प्रकृति, मुख्य रूप से एक विज्ञान या कला के रूप में है उसके स्वरूप के बारे में विचार–विमर्श तथा वाद–विवाद में प्रशासनिक प्रबन्धन दृष्टिकोण का विकास हुआ। कुछ कर्त्ताओं तथा अनुभववादियों ने कुछ ऐसे सिद्धान्तों की चर्चा की जिन्हें प्रशासन में कुशलता तथा मितव्ययिता को सुनिश्चित करने के लिए सार्वभौमिक रूप से समय, स्थान तथा सरकार की प्रकृति से प्रभावित हुए बिना, कार्यान्वित किया जा सकता है। इस विचार के समर्थक, डेनहार्ट (Denhardt) कहते है कि प्रत्येक संगठन के प्रबन्ध में मौलिक हित एक समान होते हैं। इसलिए हमें आशा करनी चाहिए कि एक क्षेत्र में सीखे गए पाठों को सरलतापूर्वक अन्य को प्रेषित किया जा सकता है या एक संदर्भ में सीखे गए पाठ संगठनों के सामान्य सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों के लिए योगदान दे सकते हैं तथा लोक प्रशासन के अध्ययनों में यह दृष्टिकोण आज भी प्रभावशाली है। इस मॉडल तथा इसकी परिभाषा को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। उन्नीसवीं सदी व बीसवीं सदी के शुरुआत में महाद्वीपीय यूरोप पश्चिमी देशों में मुख्य रूप से प्रयोग किया गया। कुशलता तथा मितव्ययता सार्वजनिक संगठन का एक मुख्य उद्देश्य रहा है। इसलिए उस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रशासनिक सुधार आवश्यक थे। इन दो उद्देश्यों एवं संबंधित चिंतन के कारण, लोक प्रशासन के सिद्धान्तकारों ने उन्नीसवीं तथा प्रारंभिक बीसवीं सदियों में औपचारिक संगठन के प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित किया।

इस दृष्टिकोण के प्रमुख विचारकों में लूथर गुलिक, लिन्डल उर्विक, हेनरी फेयोल (Luther Gullick, Lyndall Urwick, Henri Fayol) तथा मैरी पार्कर फोलेट (Mary Parker Follet) आदि शामिल है। इस दृष्टिकोण को प्रशासन के संरचनात्मकवादी (Structuralist) सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। सैद्धान्तिक विचारक सार्वजनिक तथा निजी प्रशासन के बीच भेद नहीं करता है। इस विचार या दृष्टिकोण की मान्यता है कि कोई भी संगठन औपचारिक संरचना के अभाव में कार्य नहीं कर सकता, जिसमें कार्यों, उत्तरदायित्वों तथा शक्तियों एवं कर्मचारियों के एक दूसरे से सम्बन्धों के बारे में स्पष्ट विवरण होता है क्योंकि प्रशासन सामूहिक उद्देश्यों तथा संगठन के दायित्वों की अभिव्यक्ति होता है, संगठन का ढाँचा ही संगठन की आवश्यकता के अनुसार संगठनात्मक कार्य में संलग्न व्यक्तियों के व्यवहार तथा निष्पादन को निश्चित या नियमित करता है।

प्रशासनिक प्रबन्धन दृष्टिकोण सिद्धान्त, सामाजिक अनुक्रिया का निर्धारणात्मक दृष्टिकोण अपनाता है, जैसा कि सामाजिक विज्ञान शब्दकोष में वर्णित हैं, क्योंकि इसके पीछे की मान्यता यह है कि व्यक्ति अपने कल्याण से स्वतंत्र रहकर तथा सामूहिक ध्येय एवं स्वयं के विशेष उद्देश्यों के बीच सम्बन्धों पर ध्यान न केन्द्रित करके संगठनात्मक कुशलता में अधिकतम वृद्धि करते हैं। उर्विक (Urvick) की दृष्टि में संगठनात्मक संरचना के अभाव में चीजें अतार्किक, कठोर, अर्थहीन तथा अयोग्य हो जाती हैं दूसरा, इस दृष्टिकोण के प्रतिपादकों की मान्यता यह है कि कुछ ऐसे सिद्धान्तों को विकसित किया जा सकता है, जिनकी सार्वभौमिक उपयुक्तता होती है। उद्योग तथा सेना में लम्बे अनुभव तथा प्रयोगों के आधार पर इन सिद्धान्तों का विकास होता है।

इस सिद्धान्त के कुछ प्रमुख विचारक एवं उनके विचार इस प्रकार हैं–

1) हेनरी फेयोल, 2) लूथर गुलिक, 3) लिन्डल उर्विक।

1.7. हेनरी फेयोल (HENRI FAYOL)

1.7.1. परिचय (Introduction)

हेनरी फेयोल, जिन्हें आधुनिक प्रबन्धन सिद्धान्त के जनक के रूप में भी जाना जाता है, उन्होंने प्रबन्ध प्रक्रिया को व्यापक रूप से प्रभावित किया। फेयोल ही प्रथम विचारक थे जिन्होंने प्रबन्ध (प्रशासन) की सार्वभौमिकता को स्पष्ट किया तथा प्रबन्ध (प्रशासन) के सामान्य सिद्धान्तों की रचना की। उन्होंने एक सामान्य सिद्धान्त पेश किया जिसे प्रबन्धन के सभी स्तरों और हर विभाग पर लागू किया जा सकता है। फेयोल द्वारा प्रतिपादित प्रशासनिक सिद्धान्त लोक–प्रशासन के अन्य विद्वानों द्वारा स्वीकार किए गए और आज भी काफी हद तक ये सिद्धान्त सभी स्थानों और सभी प्रकार के संगठनों पर लागू किए जा सकते हैं।

अंग्रेजी साहित्य में जो स्थान बेकन (Bacon) का है, वही स्थान प्रबन्ध के क्षेत्र में फेयोल का है। हेनरी फेयोल का जन्म 1841 में फ्रांस में हुआ। खनन अभियान्त्रिकी में स्नातक की उपाधि लेने के बाद 19 वर्ष की आयु में अभियन्ता के रूप में एक कम्पनी में कार्य करने लगे तथा 12 वर्षो तक यहाँ कार्य किया। 1878 में फेयोल को हवा में कोयले के स्वतः प्रज्वलन पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया था। रिपोर्ट को अच्छी प्रतिक्रिया मिली और परिणामस्वरूप फेयोल को अच्छी प्रतिष्ठा मिली। वे खनन के क्षेत्र में एक प्रभावशाली व्यक्ति बन गए।

1888 में, वे इस खनन कंपनी के प्रबन्ध निदेशक बन गए, जिसमें 1,000 से अधिक लोग काम करते थे। अपने व्यावहारिक ज्ञान और विशेषज्ञ प्रबन्धन कौशल के आधार पर, हेनरी फेयोल कठिन परिस्थितियों में अपनी कंपनी का मार्गदर्शन करने में निपुण थे। उनके नेतृत्व में, कंपनी फ्रांस में स्टील और लोहे के सबसे सफल और सबसे बड़े उत्पादकों में से एक बन गई। हेनरी फेयोल इस पद पर 30 वर्षों तक (1918 तक) बहुत सफल रहे। अपनी मृत्यु से 7 वर्ष पूर्व फेयोल रिटायर हो गए और 1925 तक, अपनी मृत्यु तक इन्होंने अपना ध्यान प्रशासन के सिद्धान्तों के प्रचार–प्रसार में लगाया।

1.7.2. हेनरी फेयोल की रचनाएँ (Writings of Henri Fayol)

फेयोल काफी योग्य लेखक थे। उन्होंने भू–गर्भ शास्त्र, खनन अभियान्त्रिकी, प्रबन्ध, प्रशासन आदि विषयों पर अनेक रचनाएँ की। लोक–प्रशासन में एक चिन्तक के रूप में प्रसिद्धि दिलाने वाली उनकी पुस्तक 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट' थी जो 1916 में फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित हुई थी।

1929 में इसका अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट किया गया है।

फेयोल की कुछ अन्य रचनाएँ (लेख) इस प्रकार हैं–

1) Discourse on the General Principles of Administration (1908)
2) The Reform of the Public Service (1918)
3) The Industralisation of the State (1919)
4) Administrative Reforms of the Posts and Telegraphs (1921)
5) The Theory of Administration in the State (1923)

1.7.3. हेनरी फेयोल का लोक प्रशासन या प्रबन्ध में योगदान (Contribution of Henri Fayol to Public Administration or Management)

प्रबन्ध के क्षेत्र में आधुनिक, क्रियात्मक या प्रशासनिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों के विशेषज्ञ हेनरी फेयोल का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने प्रशासन के कुछ सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किए और उन्हें सार्वभौमिक रूप से लागू करने की वकालत की। फेयोल प्रशासन की सार्वभौमिकता का दावा करते हुए लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच में भेद को नकारते हैं। प्रबन्धकीय क्रियाओं के सम्बन्ध में फेयोल ने अपने विचारों को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया है।

1) **प्रबन्धकीय योग्यता एवं प्रशिक्षण**–हेनरी फेयोल प्रबन्धकीय प्रशिक्षण पर जोर देते हैं। प्रबन्ध के विकास के क्रम में सर्वप्रथम हेनरी फ्रेयोल द्वारा प्रबन्धकों की योग्यता और उनके प्रशिक्षण को प्रभावित किया गया। उनके अनुसार 1–1 प्रबन्धक में शारीरिक, मानसिक, सदाचार, शैक्षणिक और आर्थिक एवं अनुभव सहित छह विशेषताओं का होना आवश्यक है। फेयोल प्रशिक्षण को सतत् प्रक्रिया मानते हैं और विश्वास करते हैं कि संगठन में प्रत्येक उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ के शिक्षक के समान होता है। फेयोल के मत में प्रबन्ध या प्रशासन के शिक्षण–प्रशिक्षण से प्रबन्धक अपने कार्यों को अधिक सुगमतापूर्वक संचालित कर पाएंगे।

2) **प्रबन्ध के तत्व**–फेयोल का स्पष्ट रूप से मानना था कि नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय और नियन्त्रण वे आवश्यक तत्त्व हैं जो हर तरह के उद्यम में आवश्यक होते हैं, चाहे वह सार्वजनिक हों या निजी। उनके अनुसार नियोजन प्रबन्धक सबसे प्रमुख कार्य है, क्योंकि इसी के आधार पर सभी कार्यों की रूपरेखा तैयार की जाती है। उचित नियोजन के अभाव में किसी उपक्रम में कार्यों के निष्पादन में संशय बना रहता है। नियोजन द्वारा निर्धारित कार्य के निष्पादन के लिए संगठन संरचना की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा कार्य का विभिन्न व्यक्तियों में वितरण किया जाता है। कार्य वितरण के बाद अधीनस्थों के लिए उचित निर्देश की व्यवस्था की जाती है। नियंत्रण की आवश्यकता कार्य के नियोजन के अनुसार संपादित कराने के लिए होती है। इस प्रकार फेयोल जहाँ लोक–प्रशासन व निजी प्रशासन के भेद को दर किनार करते हैं वहीं प्रशासन की सार्वभौमिकता को स्पष्ट करते हैं।

3) **प्रबन्ध के सिद्धान्त**–हेनरी फेयोल द्वारा प्रबन्ध के क्षेत्र में विकास प्रबन्ध के 14 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया, जो प्रबन्धकों को उनके कार्यों के निष्पादन में सहायता प्रदान करते हैं। फेयोल ने प्रबन्ध समस्या के शोध कार्य हेतु औद्योगिक संगठन के समस्त क्रियाओं को 6 वर्गों में विभाजित किया है।

यह क्रियाएँ उत्पाद, क्रय विक्रय एवं विनिमय, पूंजी की प्राप्ति एवं उसके अधिकतम उपयोग, संपत्ति तथा माल की सुरक्षा, स्टाफ मूल्यांकन एवं आर्थिक चिट्ठा निर्माण और प्रबन्धन के क्रियाओं (नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण) से संबंधित होती हैं। फेयोल ने उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों के कार्यों में प्रशासन की मात्रा इस प्रकार बताई–

क्र.सं.	कर्मचारी	प्रशासन कार्य
i)	वर्कमैन	5%
iii)	शॉप मैनेजर	25%
v)	प्लांट मैनेजर	40%

क्र.सं.	कर्मचारी	प्रशासन कार्य
ii)	फोरमैन	15%
iv)	विभागीय प्रमुख	35%
vi)	जनरल मैनेजर	50%

1.7.4. हेनरी फेयोल की औद्योगिक एवं प्रशासनिक क्रियाएँ (Industrial and Administrative Activities of Henry Fayol)

हेनरी फेयोल के औद्योगिक एवं प्रशासनिक क्रियाओं अथवा गतिविधियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है–

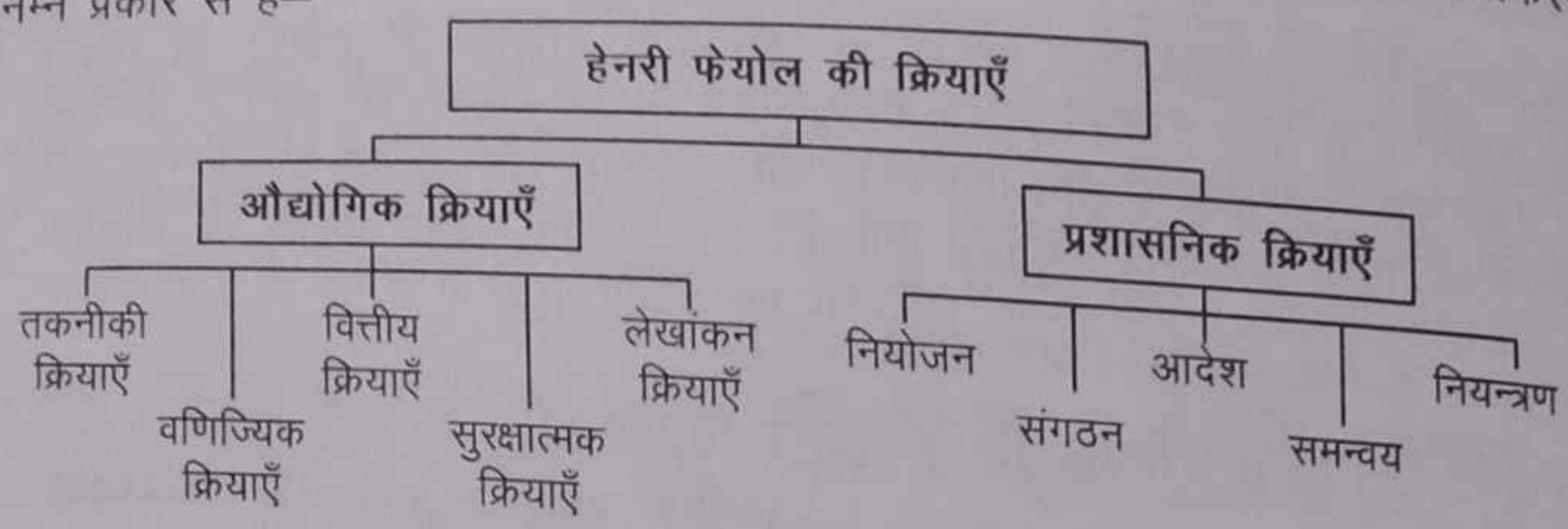

1.7.4.1. औद्योगिक क्रियाएँ (Industrial Activities)

1) **तकनीकी क्रियाएँ (Technical Activities)**–प्रथम समूह की क्रियाओं को फेयोल तकनीकि क्रियाएँ मानते थे। इसमें उत्पादन, विनिर्माण एवं अनुकूलन से सम्बन्धित क्रियाओं को शामिल किया गया है। इन तीनों की प्रकृति तकनीकी होती है। संस्था के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु ये गतिविधियाँ आवश्यक होती हैं।

2) **वाणिज्यिक क्रियाएँ (Commercial Activities)**–दूसरी क्रियाओं की भाँति वाणिज्यिक क्रियाएँ भी उद्योग हेतु आवश्यक होती है। वाणिज्यिक क्रियाओं के अन्तर्गत क्रय, विक्रय एवं विनिमय शामिल होते है। औद्योगिक इकाई हेतु बाजार की स्थिति, प्रतिस्पर्द्धा की प्रकृति, मूल्य विनियमन एवं दूरदर्शिता इत्यादि की जानकारी रखना आवश्यक है।

3) **वित्तीय क्रियाएँ (Financial Activities)**–इनमें पूँजी की प्राप्ति तथा पूँजी के उचित उपयोग से जुड़ी क्रियाएँ सम्मिलित की जाती है। पूँजी के बिना कोई भी औद्योगिक गतिविधियाँ क्रियान्वित नहीं की जा सकती है। पूँजी के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है– चाहे कच्चा माल खरीदना हो या मशीनें या कर्मचारियों के वेतन भत्ते अथवा उद्यम का विस्तार हो। इसीलिए पूँजी की प्राप्ति एवं उसके उचित उपयोग हेतु समुचित वित्तीय प्रबन्ध का होना आवश्यक है।

4) **सुरक्षात्मक क्रियाएँ (Protective Activities)**–उद्यम हेतु सुरक्षा की महती आवश्यकता है। यदि संगठन में कार्य करने वाले लोगों को स्वयं की सुरक्षा का पूर्ण विश्वास होता है तो वे संगठन में अच्छी प्रकार से कार्य करने में सफल होते है। असुरक्षा के माहौल में कार्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः ये आवश्यक है कि चोरी, आग, अतिवृष्टि और दूसरी सामाजिक गड़बड़ियों, हड़ताल, तालाबंदी, पत्थरबाजी से व्यक्तियों और सम्पत्ति की सुरक्षा की उचित व्यवस्था की जाय।

5) **लेखांकन क्रियाएँ**–इसके अन्तर्गत स्टॉक परीक्षण, सन्तुलन पत्र, लागत, आँकड़े इत्यादि क्रियाएँ शामिल है। ये समस्त क्रियाएँ संगठन के स्वास्थ्य हेतु लाभदायक होती हैं। यदि उद्यम की वित्तीय स्थिति के सन्दर्भ में लेखांकन से जुड़ी क्रियाओं के सम्पादन में किसी भी प्रकार की कमी होती है तो यह संगठन हेतु हानिकारक होता है।

1.7.4.2. प्रशासनिक क्रियाएँ (Administrative Activities)

हेनरी फेयोल ने औद्योगिक क्रियाओं के अन्तिम समूह में प्रशासनिक क्रियाओं को रखा है। ये क्रियाएँ प्रशासन के तत्त्व कहलाते है। फेयोल के अनुसार, प्रबन्ध करने का तात्पर्य

नियोजन करना, संगठन बनाना, आदेश देना नियन्त्रण रखना तथा समन्वय स्थापित करना है। प्रशासनिक क्रियाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्व आते हैं–

1) **नियोजन (Planning)**–फेयोल के अनुसार नियोजन एवं पूर्वानुमान प्रशासन के प्रथम तत्त्व है। 'कार्य की योजना' (Plan of Action) नियोजन का सबसे अधिक प्रभावी उपकरण है। प्रबन्ध का प्रथम कार्य 'काम की योजना' बनाना है। कार्य योजना में कार्य किस प्रकार किया जायेगा, किन चरणों में, किन विधियों से किया जायेगा आदि का वर्णन किया जाता है। इसीलिए कार्य की योजना बनाना आवश्यक है। इसके सहयोग से संसाधनों का समुचित उपयोग संभव है। यह संगठन के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होती है।

फेयोल के अनुसार एक अच्छी कार्य योजना के निम्नलिखित तत्त्व होते है–

i) एकता
ii) स्वायत्तता
iii) लचीलापन
iv) संक्षिप्तता

2) **संगठन (Organisation)**–प्रबन्धन का दूसरा कार्य संगठन है। सरकारी अभिकरण अथवा औद्योगिक इकाई को संगठित करने का आशय है कि उसके संचालन हेतु कच्चे माल, उपकरण, पूँजी तथा कर्मचारी इत्यादि की व्यवस्था करना। मानवीय एवं भौतिक दोनों पक्ष संगठन में सम्मिलित होते है। फेयोल ने उन कार्यों को बताया, जो प्रत्येक संगठन को सम्पादित करने होते है तथा जो प्रबन्धकीय प्रकृति के होते हैं–

i) इस बात को निश्चित करना कि योजना को बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से बनाया गया है तथा इसे भलीभाँति लागू किया जा रहा है।
ii) एकल, समर्थ तथा ऊर्जावान, पथ प्रदर्शक सत्ता की स्थापना करना।
iii) कर्मचारियों को अपनी पहल प्रदर्शित करने हेतु अभिप्रेरित करना।
iv) यह देखना कि मानवीय तथा भौतिक संगठन, संगठन के लक्ष्यों, संसाधनों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप हो।
v) स्पष्ट, विशिष्ट तथा संक्षिप्त निर्णय लेना।
vi) स्पष्टतः कर्तव्यों को परिभाषित करना।
vii) अनुशासन बनाए रखना।
viii) यह निश्चित करना की स्वयं का हित सामान्य हितों के अधीन रहें।
ix) आदेश की एकता पर विशिष्ट ध्यान देना।
x) कर्मचारियों को सेवा के बदले बिना भेदभाव के पुरस्कृत करना।
xi) आदेश की एकता पर विशिष्ट ध्यान देना।

3) **आदेश देना (Command)**–संगठन के संचालन हेतु आदेश का होना नितान्त आवश्यक है। इसके माध्यम से संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों से अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है। फेयोल के अनुसार आदेश देने की कला व्यक्तिगत गुणों तथा सामान्य सिद्धान्तों की जानकारी पर आधारित होती है। फेयोल ने बताया है कि जो व्यक्ति संगठन में आदेश देने की शक्ति को प्रयोग करते है। उसे निम्नलिखित बातों को जानना आवश्यक है–

i) उसे अपने कर्मचारियों के सन्दर्भ में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।
ii) कर्मचारियों को उससे जोड़ने वाली व्यवस्था का ज्ञान होना चाहिए।
iii) उसे एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।
iv) उसे अयोग्य कर्मचारियों को हटा देना चाहिए।

v) समय–समय पर संगठन का अंकेक्षण करना चाहिए एवं संक्षिप्त चार्ट बनाने चाहिए।

vi) कार्मिकों के मध्य एकता, ऊर्जा, पहल तथा विश्वास उत्पन्न करने के उद्देश्य होने चाहिए।

vii) उसे विस्तृत विवरण में नहीं जाना चाहिए।

4) **समन्वय (Coordination)**–फेयोल के अनुसार समन्वय प्रबन्धन का वह कार्य है जिसके द्वारा संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है। जिससे कार्य आसानी से होता रहे तथा कोई अवरोध न उत्पन्न हो। संगठन कई प्रकार के कार्य करता है। प्रत्येक इकाई के माध्यम से सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों में दोहराव एवं मतभेदों में दोहराव तथा मतभेदों के दूर करने हेतु समन्वय की स्थापना आवश्यक है। फेयोल का मानना था कि जिन संगठनों में समन्वय की कमी होती है वहाँ संगठन के विभाग एक–दूसरे की कोई जानकारी नहीं रखते है तथा उनके मध्य सहयोग की कमी होती है। फेयोल का मानना है कि सम्मेलनों तथा सम्पर्क अधिकारियों के माध्यम से संगठन की स्थापना करनी चाहिए।

5) **नियन्त्रण (Control)**–नियन्त्रण को भी फेयोल ने प्रबन्धन का आवश्यक तत्त्व माना है। फेयोल के अनुसार, "नियन्त्रण का अभिप्राय सत्यापन करना है कि क्या उपक्रम की प्रत्येक क्रिया अपनाई गई योजनाओं, दिए गए आदेशों तथा स्थापित सिद्धान्त के अनुसार हो रही है या नहीं। इसका उद्देश्य दुर्बलताओं और गलतियों को मालूम करना है जिससे समय पर उन्हें सुधारा जा सके तथा उनकी पुनरावृत्ति रोकी जा सके।" फेयोल का मानना था कि संस्था में ठीक समय पर नियन्त्रण स्थापित किया जाना चाहिए एवं उसके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रभावी नियन्त्रण हेतु फेयोल ने दो जरूरी बातें बताई है–
पहला– यह उचित समय पर किया जाना चाहिए।
दूसरा– यह अनुमति द्वारा किया जाना चाहिए।

फेयोल का मानना है कि उपर्युक्त क्रियाओं को सम्पादित करने हेतु प्रशासकों में निम्नलिखित गुण अवश्य होने चाहिए–

i) **शैक्षणिक गुण**–कार्य सम्बन्धी ज्ञान के अलावा सामान्य ज्ञान की जानकारी।
ii) **शारीरिक गुण**–स्वास्थ्य, मेहनत आदि।
iii) **मानसिक गुण**–समझने तथा सीखने की योग्यता, निर्णय लेना तथा अनुकूलता।
iv) **तकनीकी गुण**–कार्य की जानकारी।
v) **नैतिक गुण**–शक्ति, दृढ़ता, प्रेरणा, इज्जत, वफादारी।
vi) **अनुभव**–उचित कार्य करने से प्राप्त।

फेयोल ने प्रबन्ध के सिद्धान्तों का समुचित प्रशिक्षण प्रदान किए जाने पर बल दिया। उनका मानना था कि प्रत्येक उपक्रम के कर्मचारियों में वाणिज्यिक, वित्तीय सुरक्षा, लेखा व प्रबन्धकीय कार्यों को करने की योग्यता होनी चाहिए। इन योग्यताओं को विकसित करने हेतु उन्होंने स्कूल, कॉलेज एवं व्यावसायिक संस्थानों में प्रबन्ध विषय पढ़ाये जाने का प्रस्ताव रखा था। उन्होंने कहा था कि, "प्रबन्धकीय योग्यता तकनीकी योग्यता की भाँति पहले स्कूल व बाद में कार्यशाला में विकसित की जा सकती है व की जानी चाहिए।"

शैक्षिक संस्थाओं में प्रबन्ध का अध्ययन न होने का प्रमुख कारण उन्होंने इसके व्यवस्थित सिद्धान्तों का कमी होना बताया है। इसका प्रशिक्षण तभी संभव है जब प्रबन्ध के सर्वमान्य सिद्धान्तों की स्थापना की जाय। उद्योगों में विरोधी प्रबन्धीय व्यवहार तथा व्यक्तिगत सिद्धान्तीकरण की प्रथा का प्रचलन था। प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों, नियमों, विधियों, कार्य पद्धतियों, मूलाधारों की कमी थी। इसीलिए फेयोल ने प्रबन्ध के सिद्धान्तों का निर्माण किया। उनके अनुसार, "प्रबन्ध की प्राथमिक शिक्षा प्राथमिक स्कूलों में, कुछ व्यापक शिक्षा माध्यमिक स्कूलों व प्रबन्ध की पूर्णतः उच्च व गहन शिक्षा उच्चतर शैक्षणिक संस्थाओं में प्रदान की जानी चाहिए।"

1.7.5. हेनरी फेयोल के प्रबन्ध तथा प्रशासन के सिद्धान्त (Principles of Management and Administration of Henry Fayol)

हेनरी फेयोल ने 1916 ई. में अपनी पुस्तक General and Industrial Administration में प्रबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन किया है। उनके मत से किसी भी औद्योगिक संस्थान का प्रबन्ध करने के लिए प्रबन्धकों को कतिपय सामान्य मूलभूत सिद्धान्तों की जानकारी होना जरूरी है यह सिद्धान्त लचीला है। इसको किसी भी स्थिति में लागू किया जा सकता है। हेनरी फेयोल के प्रबन्ध तथा प्रशासन के चौदह सिद्धान्त इस प्रकार है–

1) **कार्य का विभाजन (Division of Works)**–फेयोल ने लिखा है कि कर्मचारियों को संगठन के सबसे महत्त्वपूर्ण 6 औद्योगिक क्रियाओं– तकनीकी, व्यापारिक, वित्तीय सुरक्षा, लेखाक्रम एवं प्रबन्धकीय आदि को करने की योग्यता विकसित करनी चाहिए। इसके लिए विशिष्ट ज्ञान का होना आवश्यक है। यह किसी भी प्रबन्ध के उत्पादन में वृद्धि करता है। इसका आशय है कि विशिष्टीकरण तथा प्रमाणीकरण से अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपक्रम अथवा संस्थान में कार्य का सम्पादन श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए। इसके उत्पादन के मानवीय तथा भौतिक साधनों की कार्यकुशलता को बढ़ाया जा सकता है। फेयोल के अनुसार, किसी भी संगठन में कर्मचारियों को उनकी विशेषता तथा अनुभव के अनुरूप ही कार्य बांटना चाहिए।

2) **अधिकार एवं उत्तरदायित्व (Rights and Responsibilities)**–फेयोल के मत से अधिकार का अर्थ 'आदेश देने तथा आज्ञा पालन करवाने से' होता है। ये अधिकार दो प्रकार के होते है। i) कार्यालयी अधिकार तथा ii) व्यक्तिगत अधिकार।
   i) **कार्यालयी अधिकार**–यह व्यक्ति को कानूनी रूप से प्रदान किया जाता है।
   ii) **व्यक्तिगत अधिकार**–यह व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व, बुद्धिमत्ता, अनुभव एवं नैतिक बल के माध्यम से प्राप्त करता है।

   फेयोल का मानना था कि प्रबन्ध में अधिकार तथा उत्तरदायित्व घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते है। एक–दूसरे के बिना ये व्यर्थ है। अतः फेयोल ने दोनों में समानता लाने पर बल दिया था। चूंकि ये एक कार्य के दो पहलू है जिनका प्रयोग सभी व्यवसायिक क्रिया में किया जाता है। कई संयोजन अधिकारों में शामिल किए जाते है।

3) **अनुशासन (Discipline)**–फेयोल के मत से अनुशासन का तात्पर्य समझौतों के प्रति आस्था प्रदर्शित करना है। जिससे आदेशों का पालन किया जा सके तथा व्यक्ति स्वयं की योग्यता तथा क्षमता के अनुरूप कार्य कर सके। प्रबन्धक के व्यक्तित्व पर ही संस्थान का अनुशासन निर्भर करता है। अच्छे अनुशासन के लिए एक सफल नेतृत्व की जरूरत होती है।

इसमें तीन बातों का होना जरूरी है–

i) समस्त स्तरों पर अच्छे तथा सुनियोजित पर्यवेक्षण का होना।

ii) समझौते स्पष्ट तथा उचित होने चाहिए।

iii) दण्ड विधान को दृढ़तापूर्वक तथा विवेक के साथ लागू करने का नियम होना चाहिए।

4) **आदेश की एकता (Unity of Command)**–उनके अनुसार एक कर्मचारी को आदेश देने वाला एक ही अधिकारी होना चाहिए जिससे असुविधा तथा अनुशासन भंग की स्थिति न पैदा हो। यदि आदेश देने वाले एक से अधिक अधिकारी होंगे तो कर्मचारियों के मध्य भ्रम पैदा हो जायेगा। यदि एक अधिकारी होगा तो कर्मचारी अपनी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह से निभायेंगे।

5) **निर्देश की एकरूपता (Unity of Direction)**–इस सिद्धान्त के अनुसार सभी एक समान लक्ष्य वाली क्रियाओं के समूह की एक ही योजना होनी चाहिए एवं उसका एक ही अधिकारी होना चाहिए। इस अधिकारी को दिए जाने वाले निर्देश में एकरूपता का होना जरूरी है जिससे क्रियाओं तथा प्रयासों में समन्वय सरलता से किया जा सके किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न हो।

फेयोल ने आदेशों की एकता एवं निर्देशों की एकरूपता में अंतर बताते हुए लिखा है कि, "आदेशों की एकता का सम्बन्ध केवल विभिन्न स्तरों पर कार्यरत कर्मचारियों से है जबकि निर्देशों की एकरूपता समूचे निगम शरीर से सम्बन्धित है।"

6) **व्यक्तिगत हित की तुलना में सामान्य हित को महत्त्व (Importance to General Interest over Individual Interest)**–फेयोल का कहना था कि प्रबन्ध के उद्देश्य पर व्यक्ति हित का प्रभाव परिलक्षित होता है। व्यक्ति चाहे कर्मचारी हो अथवा प्रबन्धक उसे संगठन को सबकुछ मानना चाहिए तथा संगठन के हित में अपने हितों को मिला देना चाहिए। किसी भी संस्थान के हितों एवं व्यक्तिगत हितों में टकराव नहीं होना चाहिए। यह तभी मुमकिन है जब उच्च अधिकारी एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करें।

7) **कर्मचारियों का पारिश्रमिक (Remuneration of Personnel)**–फेयोल ने कहा था कि, संगठन में पारिश्रमिक और क्षतिपूर्ति नीति इस तरह की होनी चाहिए कि उससे कर्मचारी एवं नियोक्ता दोनों संतुष्ट रहें। पारिश्रमिक का आशय है सेवाओं के उपलक्ष्य में दिया जाने वाला प्रतिफल। फेयोल के मत से, "इसकी मात्रा इतनी होनी चाहिए जो कर्मचारी और संस्था दोनों के लिए न्यायसंगत हो।"

8) **केन्द्रीकरण (Centralisation)**–यह सिद्धान्त निर्देशन तथा नियन्त्रण के ऐसे केन्द्रीयकरण पर जोर देता है जिससे पूरा संगठन गतिशील रह सके। आशय यह है कि संस्था के उच्च अधिकारियों के साथ ही साथ सभी कर्मचारियों के साथ सम्बन्ध रखता है।

फेयोल ने केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर बल देते हुए कहा कि, "किसी भी संस्थान में अधिकारियों का किस सीमा तक विकेन्द्रीकरण किया जाय, यह भिन्न–भिन्न संस्थानों की प्रकृति और आकार पर निर्भर करता है। एक बड़े उद्योग में अधिकारों का केन्द्रीकरण ज्यादा नहीं होगा अपितु वहाँ उच्च स्तरीय प्रबन्ध से मध्यम व निम्न स्तरीय प्रबन्धकों तक अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होगा। इसके विपरीत एक छोटे उपक्रम में अधिकार सत्ता का केन्द्रीकरण व्यापक पैमाने पर मिलेगा।"

9) **समता (Equity)**–इसके लिए सहानुभूति तथा न्याय का होना जरूरी है। प्रबन्धकों को स्वयं के कर्मचारियों के साथ सहानुभूति तथा न्याय के साथ व्यवहार करना चाहिए। इससे कर्मचारी में आदर, आज्ञाकारिता एवं स्वामिभक्ति की भावना पैदा होगी। प्रबन्ध के समस्त स्तरों पर समता के सिद्धान्त को लागू करना चाहिए।

10) **सोपान श्रृंखला (Scalar Chain)**–यह पदसोपान पर आधारित सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन में उच्च से निम्न अधिकारियों एवं सत्ता की एक श्रृंखला होती है जिसके माध्यम से आदेश, सुझाव इत्यादि भेजे जाते हैं एवं निम्न स्तर से उनकी प्रतिक्रिया दी जानी चाहिए। इस श्रृंखला का पालन सम्प्रेषण में किया जाना चाहिए लेकिन यदि देरी की संभावना हो तो प्रत्येक अधिकारी स्वयं की उच्च अधिकारी की आज्ञा लेकर दूसरे अधिकारी से सम्पर्क स्थापित कर सकते है। जिसे दिए गए **चित्र** के आधार पर समझा जा सकता है–

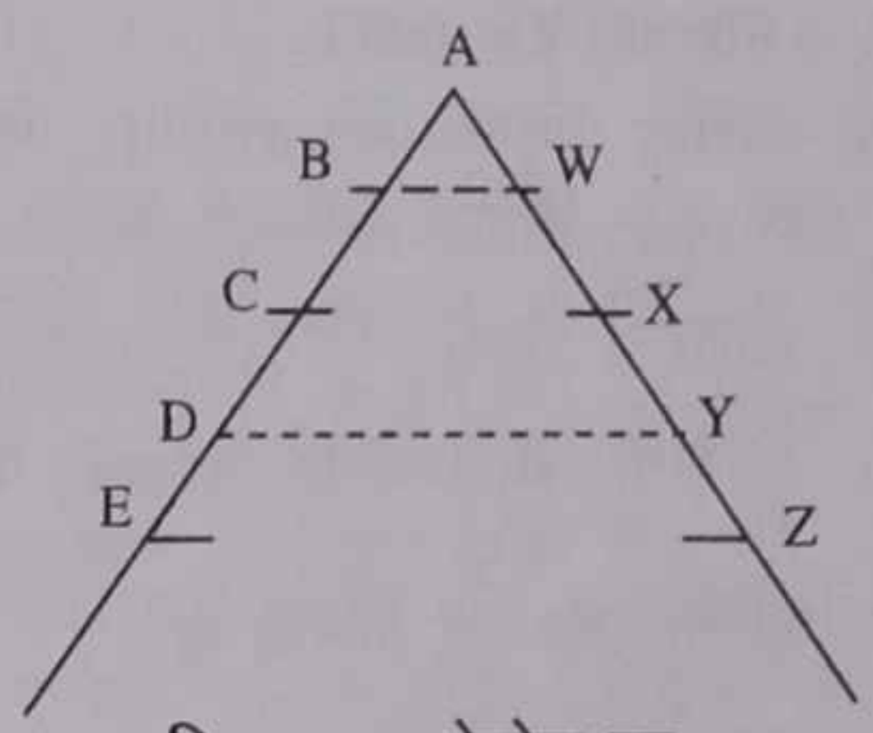

चित्र 1.2– फेयोल का 'गैंग–प्लैंक'

11) **व्यवस्था (Order)**–यह सिद्धान्त वस्तुओं तथा व्यक्तियों के संगठन पर आधारित है यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि प्रत्येक व्यक्ति तथा वस्तु हेतु एक उचित स्थान होता है तथा प्रत्येक स्थान हेतु एक उचित वस्तु तथा एक उपयुक्त व्यक्ति। इसीलिए व्यक्तियों तथा वस्तुओं को समुचित स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। प्रबन्ध में कम लागत पर अधिक उत्पादन करने के लिए उचित व्यक्ति व वस्तु का होना जरूरी है। इसके लिए प्रबन्धकीय क्रियाओं के दो पहलू– प्रथम अच्छा संगठन तथा दूसरा– अच्छा चयन का होना नितान्त आवश्यक है।

12) **कर्मचारियों के पदों की स्थिरता (Stability of Tensure of Personnel)**– कर्मचारियों को कार्य की सुरक्षा एवं पद की स्थिरता प्रदान करना ही इस सिद्धान्त का उद्देश्य है। यह जरूरी होता है क्योंकि कर्मचारियों के प्रशिक्षण में समय तथा लागत का खर्च होता है। पदों को बार–बार बदलने पर उद्योग के कार्य में अवरोध उत्पन्न होता है जो एक अकुशल प्रबन्धन का परिचय देता है। पदों में स्थिरता न होने पर कर्मचारियों के मनोबल में कमी आती है जो संगठन के नीति की निरन्तरता को खत्म करता है।

13) **प्रेरणा (Motivation)**–इस सिद्धान्त के अन्तर्गत किसी योजना पर विचार करने तथा उसके क्रियान्वयन का कार्य आता है। आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सोचने विचारने की शक्ति होती है। अतः किसी भी योजना को तैयार करने तथा उसे लागू करने में कर्मचारियों को छूट होनी चाहिए। इससे कर्मचारियों में उत्साह तथा शक्ति बढ़ेगी। इसीलिए फेयोल के अनुसार, "प्रबन्धकों को चाहिए कि वे कर्मचारियों में प्रेरणा की भावना उत्पन्न करने का कार्य करे।"

14) **सहयोग की भावना (Spirit of Cooperation)**–यह सिद्धान्त संगठन की शक्ति है। जो 'Union is Strength' के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रबन्धकों को अपने कर्मचारियों के साथ मिलकर एक टीम के रूप में कार्य करना चाहिए एवं सबसे सहयोग प्राप्त करना चाहिए। सहयोग की भावना उत्पन्न करने के लिए सम्प्रेषण के महत्त्व पर बल देना चाहिए। श्रमिकों में एकता न होना संस्थान के हितों के लिए घातक होता है। पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के लिए आदेश में एकरूपता होने के साथ 'फूट डालो और शासन करो' वाली शक्तियों को खत्म करना चाहिए।

1.7.6. प्रबन्धक के गुण (Attributes of Managers)

1) **शारीरिक गुण**–स्वास्थ्य (Health), जोश (Vigour), स्फूर्ति (Energization), उपस्थिति (Appearance)
2) **मानसिक योग्यता**–समझने और सीखने की क्षमता (Ability to Understand and Learm), निर्णय (Judgement), अनुकूलनशीलता (Adaptibility), मानसिक शक्ति (Mental Vigour)।
3) **नैतिक गुण**–उत्तरदायित्व स्वीकारने की इच्छा (Willingness to Accept Responsibility), दृढ़ता (Firmness)।
4) **सामान्य शिक्षा**–विभिन्न मामलों की जानकारी , संगठन के सम्बन्ध में सम्पूर्ण ज्ञान।
5) **विशिष्ट ज्ञान**–इसमें प्रबन्धक का उस कार्य के बारे में विशिष्ट ज्ञान शामिल है जो कि उसे सौंपा जाता है, चाहे यह किसी भी प्रकृति का क्यों न हो जैसे– तकनीकी, वाणिज्यिक एवं वित्तीय ज्ञान।
6) **अनुभव**–कार्य करने से उत्पन्न ज्ञान अनुभव में शामिल है। अपने अनुभव के आधार पर फेयोल निम्न निष्कर्ष निकालते हैं–
   i) एक श्रमिक के लिए उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योग्यता तकनीकी योग्यता होती है।
   ii) जैसे–जैसे पदसोपान में उन्नति होती है, वैसे–वैसे प्रशासनिक योग्यताओं का महत्त्व बढ़ने लगता है और तकनीकी योग्यताओं का महत्त्व घटने लगता है। प्रशासक की सबसे महत्त्वपूर्ण योग्यता उसकी प्रशासनिक क्षमताएँ होती हैं।

1.7.7. आलोचना (Criticism)

फेयोल के प्रशासन तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में योगदान की आलोचना निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है–

1) फेयोल ने प्रशासन तथा प्रबन्ध के संरचनात्मक पहलुओं के सन्दर्भ में किसी भी तरह के विचार प्रस्तुत नहीं किए।
2) उन्होंने प्रशासन तथा प्रबन्ध के जिन सिद्धान्तों को बताया है वह मुख्यतः माइनिंग कंपनी के लिए है। इसीलिए ये सिद्धान्त सभी संगठनों के लिए लागू नहीं किए जा सकते है।
3) फेयोल द्वारा प्रतिपादित स्केलर श्रृंखला के सिद्धान्त प्रशासन के लिए उपर्युक्त नहीं है चूंकि इसके अनुसार प्रत्येक प्रस्ताव तथा आदेश को आने–जाने में विभिन्न सीढ़ियों से गुजरना पड़ता है। इसमें कई दिन, सप्ताह अथवा महीने लग सकते है।
4) उनके आदेश की एकता का सिद्धान्त प्रशासन में समुचित रूप से लागू नहीं हो सकता है। चूंकि किसी भी संगठन में एक तकनीकी अधिकारी को स्वयं के तकनीकी बॉस तथा प्रबन्ध संचालक दोनों के आदेशों को मानना पड़ता है।

फेयोल की प्रबन्धकीय विचारधारा में नॉरमन कथबर्त ने निम्नलिखित कमियाँ बतायी हैं–

1) फेयोल ने प्रबन्ध के सिद्धान्तों पर जरूरत से ज्यादा बल दिया है।
2) इनके सिद्धान्तों, तत्त्वों तथा कार्यों में कई स्थानों पर दोहराव पाया जाता है।
3) फेयोल ने वरिष्ठ प्रबन्धकों तथा प्रशासकों को एक 'बौद्धिक विशिष्ट वर्ग' माना है, लेकिन इस विचार को सार्वभौमिक रूप से ग्रहण नहीं किया जा सकता है।
4) उन्होंने ढाँचे तथा प्रक्रियाओं में स्पष्ट अन्तर नहीं किया है। उनकी परिभाषाओं के कई शब्दों में अस्पष्टता व सही ज्ञान की झलक दिखायी पड़ती है। फेयोल ने शैक्षिक संस्थाओं के प्रबन्ध की शिक्षा पर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया था लेकिन प्रबन्धकीय शिक्षा की सीमाओं के विषय में विस्तृत तथा स्पष्ट रूप से उन्होंने कुछ हीं कहा।

1.8. लूथर गुलिक (LUTHER GULICK)

1.8.1. परिचय (Introduction)

संगठनों के प्रबन्ध की 'शास्त्रीय' विचारधारा के श्रेष्ठ प्रतिपादकों और उसे लोकप्रिय बनाने वालों में लूथर गुलिक तथा लिंडल उर्विक का नाम सबसे महत्त्वपूर्ण है। शास्त्रीय सिद्धान्त का अत्यन्त व्यापक विश्लेषण गुलिक और उर्विक द्वारा 1937 में सम्पादित 'Papers on the Science of Administration', में किया गया है। इन दोनों ने आगे चलकर फेयोल के विचारों को आगे बढ़ाया। लूथर गुलिक लोक प्रशासन के विशेषज्ञ थे और अमेरिकन सोसायटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन के संस्थापकों में से एक थे। गुलिक लोक–प्रशासन में शास्त्रीय विचारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। लिंडल उर्विक के साथ मिलकर उन्होंने 1937 में 'पेपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन की रचना की। लोक–प्रशासन के विकास में यह एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी।

लूथर गुलिक का जन्म जापान के ओसाका में वर्ष 1892 में हुआ था और उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की तथा राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद के साथ कार्य किया। उन्होंने 1954–56 के दौरान न्यूयार्क सिटी के प्रशासक के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने कई विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर और अन्य देशों के लिए प्रशासन में परामर्शदाता के रूप में कार्य किया।

उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार है– "एडमिनिस्ट्रेटिव रिफ्लैक्शन्स फ्रॉम वर्ल्ड वार-II" "(Administrative Reflections from world war-II) पेपर्स ऑन दी साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन (Paper on The Science of Administration)", और माडर्न मैनेजमेंट फॉर दी सिटी ऑफ न्यूयार्क (Modern Management for the City of New York) मेट्रोपालीटन प्राब्लम्स ऑफ अमेरिकन आइडियाज, (The Metropolitan Problems and American Ideas– 1962), (Next Steps in Public Administration), 'Who Are we to Believe' (1957),'The Dynamics of Public Administration: Today as Guidelines for the Future', 'Time and Public Administration'। गुलिक को सिविल सेवा और सैन्य तथा औद्योगिक संगठनों के कार्य का विपुल अनुभव था। इन लेखकों से हम लोक प्रशासन और व्यापार प्रशासन को एक साथ आते हुए देखते है। शास्त्रीय विचारधारा को विकसित करने में विभिन्न विद्वानों का योगदान रहा है लेकिन इस विचारधारा के अन्तर्गत शास्त्रीय सिद्धान्तों को विकसित करने का श्रेय लूथर गुलिक एवं उर्विक को जाता है। इस विचारधारा का विश्लेषण लूथर गुलिक ने 1937 में सम्पादित 'Paper on the Science Administration' में किया है। लूथर गुलिक औपचारिक संगठन विचारधारा के समर्थक थे। लोक–प्रशासन को लूथर गुलिक का योगदान अनेक क्षेत्रों में रहा। प्रशासन में लूथर गुलिक के योगदान को आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

1.8.2. संगठन के सिद्धान्त (Principles of Organisation)

गुलिक एक परम्परावादी विचारक के रूप में जाने जाते है। उन्होंने संगठन की कार्यकुशलता को देखते हुए उसके स्तर को बढाने के उद्देश्य से कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर अत्यधिक बल दिया है। गुलिक ने संगठन को पारिभाषित करते हुए कहा है कि "संगठन सत्ता का औपचारिक ढाँचा है। जिसके द्वारा कुछ निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यो को विभाजित और निर्धारित किया जाता है तथा उनका समन्वय किया जाता है।" संगठन मूलतः एक औपचारिक संरचना अथवा योजना है इस योजना

का निर्माण कुछ निश्चित सिद्धान्तों की सहायता से विशेषज्ञ ठीक उसी प्रकार कर सकते है जिस प्रकार कोई वस्तुकार वस्तुपरकता के सिद्धान्तों की सहायता से किसी भवन निर्माण की योजना बनाता है। लूथर गुलिक हेनरी फेयोल द्वारा प्रतिपादित चौदह सिद्धान्तों से काफी प्रभावित थे। गुलिक ने संगठन के दस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो इस प्रकार है–

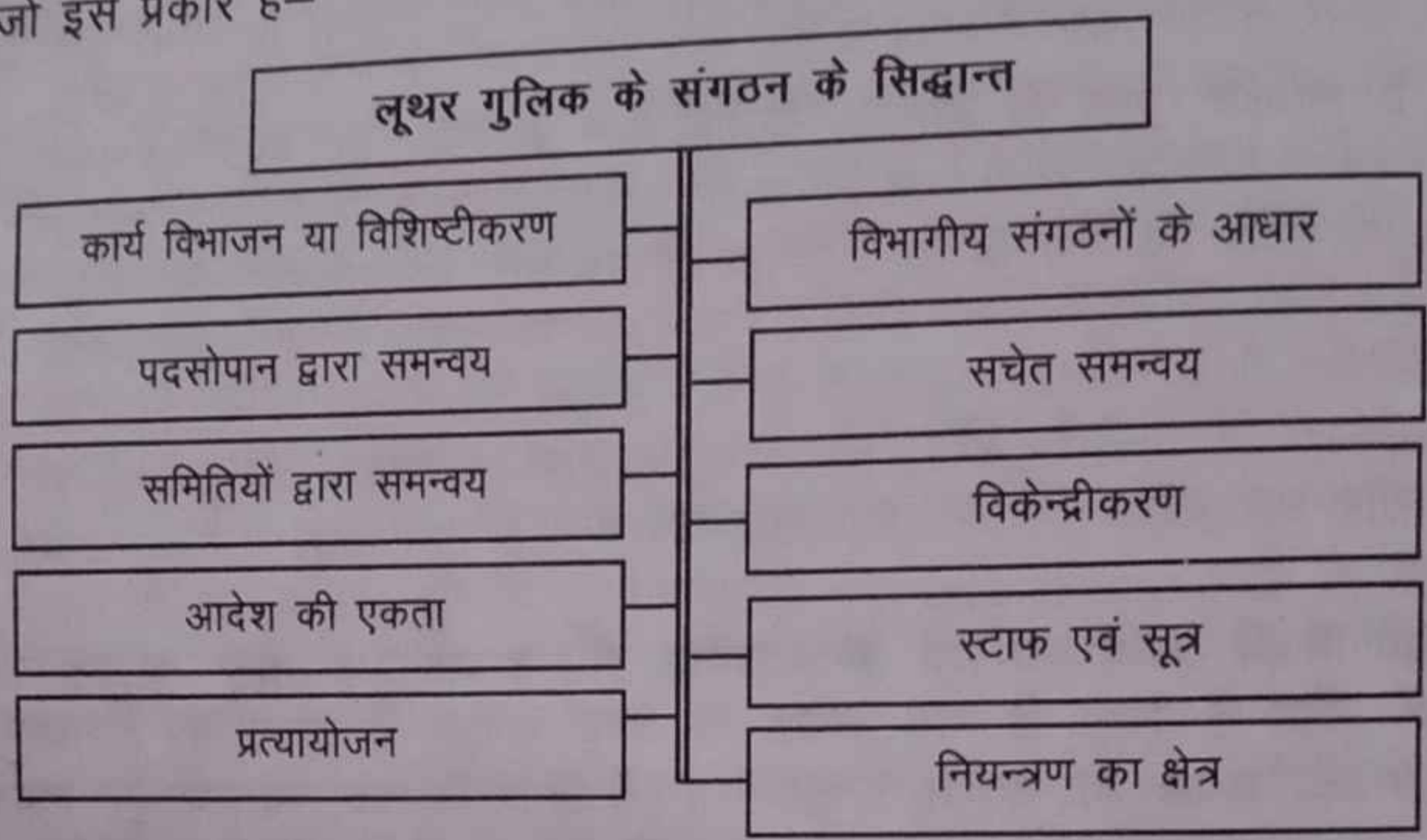

1) **कार्य विभाजन या विशिष्टीकरण (Division of Work or Specialisation)**– गुलिक ने अपने दस सिद्धान्तों में सबसे अधिक महत्त्व कार्य विभाजन एवं विशिष्टीकरण के सिद्धान्त को दिया है और कहा है कि "कार्य विभाजन संगठन की बुनियाद ही नहीं बल्कि वह संगठन की वजह भी है। कार्य विभाजन और एकीकरण ही वे माध्यम है जिससे मनुष्य जाति सभ्यता की प्रक्रिया में स्वयं को उन्नत पाता है।"

गुलिक के ऐसे विचार थे कि कार्यो को छोटी–छोटी इकाईयों में विभाजित करके कार्यो को प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार बाँटा जाय कि जो जिस योग्य हो उसे वही कार्य सौपा जाए। जब सौपा हुआ कार्य करने में वह व्यक्ति निपुण हो जाता है तो उसे विशिष्टीकरण की संज्ञा में रखा जाता है। इससे संगठन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है एवं कार्य कुशलता में भी वृद्धि होती है साथ ही न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। जैसे– लोक प्रशासन का शिक्षक, लोक प्रशासन पढ़ाने का कार्य करता है और अर्थशास्त्र का शिक्षक, अर्थशास्त्र पढाने का कार्य करता है।

2) **विभागीय संगठनों के आधार (Basic of Departmental Organisation)**– संगठन या विभागों के कार्य में कुशलता एवं गुणवत्ता बनाये रखने के उद्देश्य से आवश्यक है कि उसे आवश्यकतानुसार इकाईयों एवं उप इकाइयों में विभक्त कर दिया जाए। विभागीय संगठनों के आधार सिद्धान्त में लूथर गुलिक ने कार्य विभाजन के सिद्धान्तों को ही व्यवहारिकता प्रदान की है। उसने संगठन में विशेषज्ञता को सुनिश्चित करते हुए विभागों के गठन का विचार प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार विभागों का गठन चार आधार पर होना चाहिए–

i) उद्देश्य (Purpose)।
ii) प्रक्रिया (Process)।
iii) व्यक्ति (Person)।
iv) स्थान या क्षेत्र (Place)।

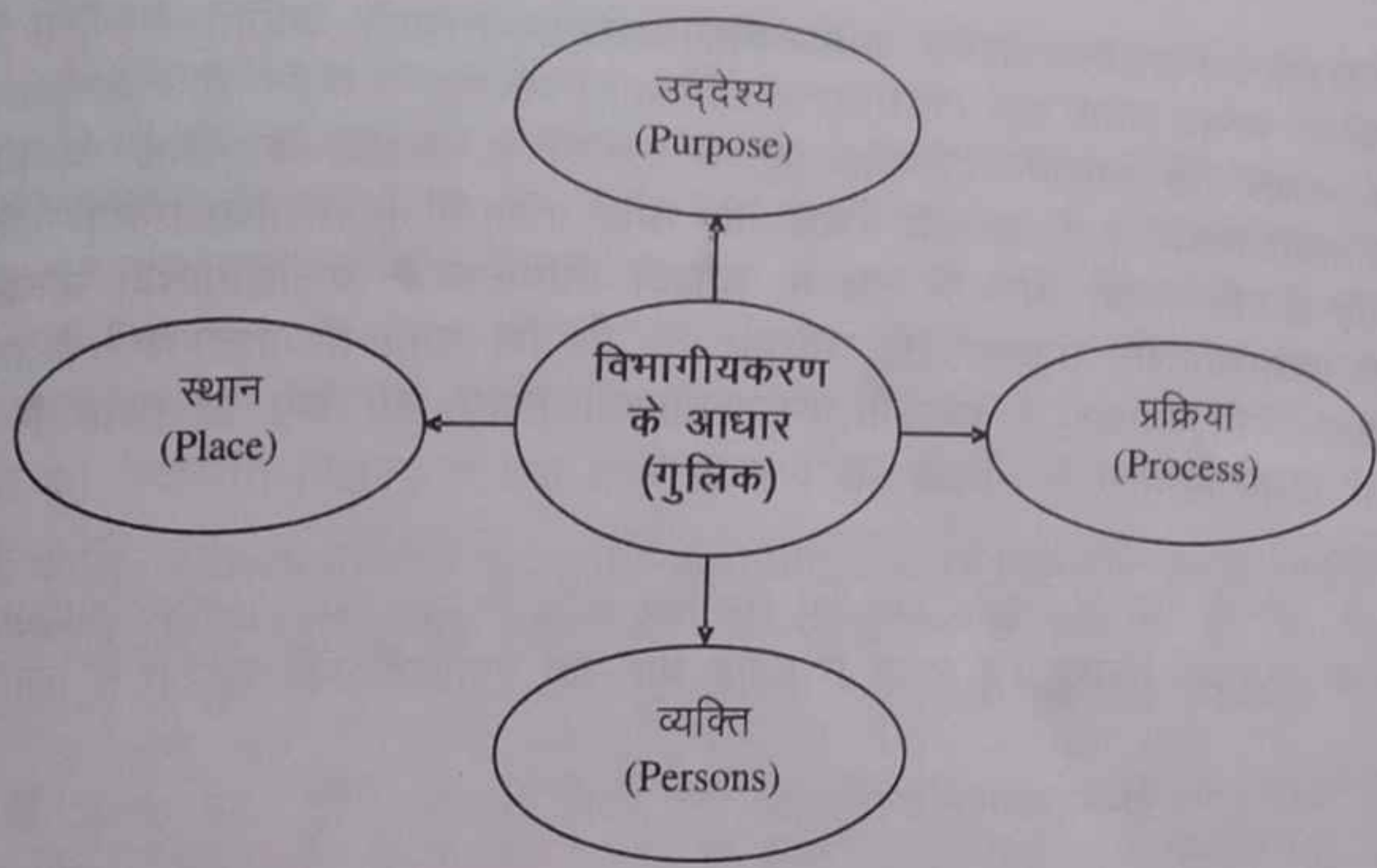

चित्र 1.3– गुलिक के विभागीयकरण के आधार

लूथर गुलिक के विभागीय संगठनों के आधारों को Four 'P' के नाम से भी जाना जाता है। जिसे उपर्युक्त चित्र में दर्शाया गया है। विस्तार में इसका विवरण इस प्रकार दिया है।

i) **उद्देश्य (Purpose)**–जब किसी किए जाने वाले कार्यो के आधार पर किसी संगठन का निर्माण होता है तब उसे उद्देश्य या कार्य पर आधारित कहा जाता है जैसे भारत में केन्द्र सरकार में स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, श्रम तथा रोजगार, जीवन बीमा निगम इत्यादि विभाग इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

ii) **प्रक्रिया (Process)**–यह एक विशिष्ट प्रकार की प्राथमिक कौशल एवं तकनीकी है। अन्य शब्दों में इसे उस योग्यता अथवा ज्ञान के अन्तर्गत देखा जाता है जिसमें विशिष्टीकरण की प्रकृति होती है जैसे विधि मंत्रालय, निर्माण कार्य तथा आवास इत्यादि विभाग इस सिद्धान्त के आधार पर व्यवस्थित है।

iii) **ग्राहक / व्यक्ति (Person)**–ग्राहक से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसकी सेवा की जानी है। अर्थात विभागों का संगठन किसी व्यक्ति विशेष वर्ग विशेष तथा समुदाय विशेष के सामान्य हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस आधार पर संगठित विभागों का सम्बन्ध उस वर्ग विशेष की आवश्यकता एवं हितों तक सीमित रहता है। इस आधार पर संगठित विभागों का उदाहरण है पुनर्वास विभाग, बच्चों से सम्बन्धित विभाग, अनुसूचित जाति / जनजाति, अल्पसंख्यक वर्ग से सम्बन्धित विभाग, वृद्धजनों से सम्बन्धित विभाग, रोजगार से सम्बन्धित विभाग इत्यादि।

iv) **स्थान या क्षेत्र (Place)**–किसी स्थान से सम्बन्धित योजना की पूर्ति में कोई कठिनाई न हो और जल्द से जल्द कार्य को पूरा किया जा सके इस दृष्टिकोण से विभागों का संगठन क्षेत्र की योजना बनायी जाती है। जैसे– विदेश मंत्रालय के क्षेत्रीय प्रभाग, इन्दिरा गाँधी नहर परियोजना, रेलवे के क्षेत्रीय मण्डल आदि इसी आधार पर बने संगठन के अन्तर्गत आते है।

3) **पदसोपान द्वारा समन्वय (Coordination through Hierarchy)**–पदसोपान संगठन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है। इसमें पदों की एक श्रृंखला होती है और सभी पदों के कार्य एवं जिम्मेदारी निर्धारित कर दिया जाता है। इस श्रृंखला के मध्य स्थापित कई स्तरों अर्थात उच्च अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच उचित सम्बन्धों के कारण संगठन में समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है।

4) **सचेत समन्वय (Deliferate Coordination)**–गुलिक ने संगठन में पूर्ण विचार बनाकर, सचेत प्रक्रिया के माध्यम से उचित तालमेल का वातावरण विकसित करने पर बल दिया है। उन्होंने तालमेल की ऐसी व्यवस्था स्थापित कि जिसमें संगठन के सभी हिस्से आपस में टकराए बिना और कार्य की पुनरावृत्ति किए बिना निर्धारित लक्ष्यों की टीम और टीम भावना के साथ आगे बढ़े। गुलिक का ऐसा मत था कि किसी भी संगठन के प्रभावपूर्ण, लाभपूर्ण एवं सतत् कार्य संचालन के लिए उसके उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संगठन के साधनों एवं प्रयासों में पूर्व–विचार करके उचित तालमेल स्थापित किया जाना चाहिए।

5) **समितियों द्वारा समन्वय (Coordination through Committees)**–गुलिक के ऐसे विचार थे कि संगठन में समितियों का गठन कर इनके माध्यम से औपचारिक व प्रभावी समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

6) **विकेन्द्रीकरण (Decentralisation)**–विकेन्द्रीकरण से तात्पर्य है कि प्रशासनिक सत्ता का किसी एक स्थान पर स्थित न होना। गुलिक ने विकेन्द्रीकरण को संगठन का प्रमुख सिद्धान्त मानते हुए कहा है कि इसके माध्यम से संगठन में कार्य विभाजन और विशिष्टीकरण को सुनिश्चित करने में सफलता प्राप्त होगी। संगठन में विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था पर गुलिक ने अत्यधिक जोर दिया है। उनके अनुसार कर्मचारियों तथा उच्च पदाधिकारियों द्वारा उत्तरदायित्वों को सम्पन्न करने पर कार्य में शीघ्रता तथा उपर्युक्त निर्णय की अधिक सम्भावना बनी रहती है।

7) **आदेश की एकता (Unity of Command)**–आदेश की एकता सिद्धान्त से अभिप्राय है कि संगठन में कर्मचारी केवल किसी एक उच्च अधिकारी के आदेशों का पालन करे तथा उसी के प्रति उसकी जवाबदेही हो। यह सिद्धान्त एक व्यक्ति–एक स्वामी (One man – one Boss) के विचार का समर्थन करता है। यदि कर्मचारी को एक से अधिक आदेश मानने की या उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायित्व सम्भालने के आदेश दिए जाएंगे तो उसे कार्य करने में देरी लगेगी और आदेशों के पालन में व्यर्थ में संघर्ष होगा और कार्य भी जिम्मेदारी के साथ पूरा नहीं किया जा सकेगा।

8) **स्टाफ एवं सूत्र (Staff and Line)**–स्टाफ तथा लाइन/सूत्र दोनों ही शब्दों को सैनिक संगठन की शब्दावली से लिया गया है। क्योंकि सैनिक संगठनों में सर्वोच्च पद पर सेनापति और उसके अधीनस्थ पदों पर कर्नल, मेजर, कैप्टन आदि अधिकारी होते है। इन सभी को लाइन अधिकारी कहा जाता है। जिनका कार्य युद्ध क्षेत्र में सेना का नेतृत्व करना, निर्णय लेना, नीति बनाना, आदेश देना होता है। सैनिक प्रशासन में सूत्र अधिकारियों के अलावा अन्य अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं जिनका मुख्य कार्य अधिकारियों की सहायता करना, परामर्श देना तथा सेवाओं का प्रबन्ध करना होता है। जिन्हें स्टाफ कहते है। गुलिक ने संगठन के लिए इन दोनों इकाइयों को महत्त्वपूर्ण माना है। वास्तव में संगठन की सफलता, सार्थकता एवं कार्यकुशलता बहुत हद तक दोनों के सुचारू संचालन पर निर्भर करती है।

9) **प्रत्यायोजन (Delegation)**–प्रशासकीय संगठन में प्रत्योजन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सरल अर्थ में प्रत्यायोजन कार्यभार को कम करने के लिए अन्य व्यक्तियों को अपने कार्य का कुछ भाग आवश्यक अधिकारियों सहित सौंपना प्रत्यायोजन कहलाता है। अपने अधीनस्थ को अधिकारी कुछ अधिकार देता है। किन्तु निरीक्षण और नियन्त्रण का अधिकार अपने पास रखता है। गुलिक के अनुसार यदि ऐसा नहीं किया गया तो अधीनस्थ अपनी जिम्मेदारियों को भली प्रकार नहीं निभा पाएंगे। और संगठन अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रहेगा।

10) **नियन्त्रण का क्षेत्र (Area of Control)**–'नियंत्रण का क्षेत्र' से आशय उन अधीनस्थ कर्मचारियों से है जिन पर उच्च अधिकारी पूर्ण रूप से नियंत्रण रख सकता है। अर्थात यह वह आदर्श संख्या है जिस पर एक उच्च अधिकारी एक समय पर एक साथ एक निश्चित संख्या से अधिक अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण नहीं रख सकता है। गुलिक ने यह निश्चित संख्या स्पष्ट रूप से तय नहीं की है। लूथर गुलिक ने नियन्त्रण के क्षेत्र को प्रभावित करने वाले अग्रलिखित तत्व बतलाये है– कार्य, व्यक्तित्व, समय एवं स्थान।

1.8.3. लूथर गुलिक का पोस्डकॉर्ब सम्बन्धी विचार (POSDCORB Ideas of Luther Gulick)

लोक प्रशासन के क्षेत्र में पोस्डकार्ब दृष्टिकोण **'लूथरगुलिक'** की देन है। इस विचार के अनुसार इसके क्षेत्र में संगठन, योजनाएँ, कर्मचारियों की व्यवस्था, निर्देशन व समायोजन करना, रिपोर्ट बनाना एवं बजट तैयार करना शामिल किए जाते हैं। लूथर गुलिक के अनुसार, "प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किए जाने और निर्धारित उद्देश्यों की परिपूर्ति से है।" लोक प्रशासन की परिभाषा देते हुए लूथर गुलिक ने कहा है कि– "लोक प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जो सरकार से सम्बन्धित है और इसलिए उसका सम्बन्ध कार्यपालिका से है जहाँ कि सरकार का काम मुख्य रूप से होता है। यद्यपि उसके स्पष्ट रूप से उन प्रशासकीय समस्याओं पर भी ध्यान देना होता है। जो व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका के क्षेत्र में आते है।" लोक प्रशासन के क्षेत्र के सम्बन्ध में लूथर ने पोस्डकॉर्ब (POSDCARB) मत का प्रतिपादन किया है।

पोस्डकॉर्ब विचार के माध्यम से लूथर गुलिक ने लोक प्रशासन के कार्य क्षेत्र की सरकार की कार्यपालिका के कार्यो के सन्दर्भ में गिनाया हैं पोस्डकॉर्ब एक प्रबन्धक द्वारा किए जाने वाले कार्यो के प्रथम सात अक्षरों से मिलकर बना शब्द है, जिसका प्रत्येक अक्षर एक विशिष्ट कार्य को दर्शाता है, जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

P	Planning	नियोजन
O	Organising	संगठन
S	Staffing	स्टॉफ (कर्मचारी)
D	Directing	निर्देशन
Co	Coordinating	समन्वय
R	Reporting	रिपोर्ट (प्रतिवेदन)
B	Budgeting	बजट–निर्माण

1) **नियोजन (P– Planning)**–संगठन में कार्य करने से पहले उस कार्य की तैयारी करना नियोजन कहलाता है। प्रत्येक प्रशासकीय कार्य को समाप्त करने से पहले ही उसकी योजना बना ली जाती है। और यह सुनिश्चित कर लिया जाता है कि कार्य को सम्पन्न करने के लिए किन तरीकों को अपनाया जाएगा। भारत के विकास के लिए अपनाई गई पंचवर्षीय योजनाएँ इसके उदाहरण है।

2) **संगठन बनाना (O– Organisation)**–योजनाएँ बनाने के बाद संगठन का निर्माण किया जाता है। संगठन का अभिप्राय उस ढाँचे से है जो मानवीय तथा भौतिक साधनों के द्वारा एक विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्थापित किया जाता है। काम का विभाजन करना तथा विभाग को उपविभागों में बाँटने की प्रक्रिया भी संगठन की क्रिया का अंग है।

3) **कार्मिकों की व्यवस्था करना (Staffing)**–संगठन में कार्यरत कार्मिकों पर संगठन की कार्य कुशलता एवं प्रभावशीलता निर्भर करती है। अतः संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के दृष्टि से कर्मचारियों की उचित व्यवस्था आवश्यक है। कार्मिकों की भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, पदोन्नति एवं कार्य करने की अनुकूल दशाओं का निर्माण आदि इसके अन्तर्गत शामिल है।

4) **निर्देशन देना (Directing)**–आवश्यकता पड़ने पर समय–समय पर प्रशासन के उच्च स्तर पर पदस्थापित पदाधिकारी अपने अधीनस्थों को दिशा–निर्देशन जारी कर उनका मार्गदर्शन करते है। निर्देशन प्रायः उच्च सत्ता द्वारा किया जाता है। तथा अधीनस्थ कर्मचारी उन निर्देशों का पालन एवं अनुसरण कर कार्यों को समाप्त करते है।

5) **समन्वय करना (Coordination)**–समन्वय का अर्थ तालमेल बनाये रखना है अर्थात किसी संगठन में लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किए जाने वाले समूह प्रयासों में उचित तालमेल बनाये रखना। जिससे कार्य को सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सके। समन्वय के माध्यम से समय की बचत कार्यों में टकराव, दोहराव एवं पुनरावृत्ति को रोकने का प्रयास किया जाता है। सम्पूर्ण शास्त्रीय विचारकों ने इसे महत्त्वपूर्ण गतिविधि के रूप में स्वीकारा है।

6) **प्रतिवेदन देना (Reporting)**–संगठन की प्रशासकीय प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग रिपोर्ट देना भी है इसका अर्थ प्रशासकीय सम्बन्ध में हो रहे कार्यों की सूचना उन लोगों को प्रदान करना है जिनके प्रति कर्मचारी उत्तरदायी है। प्रतिवेदन को मुख्यतः प्रशासनिक गतिविधियों, उपस्थितियों, कमियों एवं प्रशासन के सम्मुख समस्याओं का उल्लेख किया जाता है।

7) **बजट बनाना (Budgeting)**–वित्त को प्रशासन की संजीवनी के रूप में जाना जाता है। इसके अन्तर्गत वित्तीय योजनाएँ तैयार करना, लेखा–जोखा तथा प्रशासकीय विभागों को वित्तीय साधनों के द्वारा अपने नियंत्रण में रखना आदि बातें सम्मिलित है। पोस्डकॉर्ब विचारधारा के समर्थकों की ऐसी मान्यता है कि योजना बनाना, संगठन, कार्मिक प्रबन्ध, समन्वय स्थापित करना, बजट निर्माण एवं प्रतिवेदन आदि मौलिक बातें है जो प्रशासन प्रबन्ध के समस्त क्षेत्रों पर समान रूप से लागू होती है। पोस्डकॉर्ब की आलोचना कई विद्वानों ने की है। लेथिस मरियम के अनुसार, "यह सिद्धान्त अत्यन्त स्वेच्छाचारी, काल्पनिक एवं संकुचित है जिनमें प्रशासन के वास्तविक तत्वों को कोई स्थान नहीं दिया गया है तथा यह केवल प्रबन्ध की तकनीक पर बल देता है इसमें विषयवस्तु की पूर्णतः उपेक्षा की गई है।"

1.8.4. मुख्यालय क्षेत्रीय कार्यालय सम्बन्ध (Relation between Headquarters and Regional Units)

प्रधान कार्यालय का मुख्यालय (Head quarter) से तात्पर्य ऐसे कार्यालय अधीक्षक से है, जो पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण का कार्य करता है। तथा प्रायः राजधानी में स्थित होता है। मुख्यालय संगठन के अन्तर्गत मंत्रालय एवं विभाग आते है। क्षेत्रीय कार्यालय से तात्पर्य ऐसे कार्यालय से है जिसे प्रशासनिक कार्य करने से पूर्व मुख्यालय अथवा प्रधान कार्यालय से अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है। तथा यह उनके (मुख्यालय के) नियंत्रण एवं निर्देश में रहते है। नियंत्रण एवं निर्देश के दृष्टिकोण से लूथर ने क्षेत्रीय कार्यालय को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है–

1) सभी अंगुलियाँ (All Fingres)।
2) छोटी भुजाएँ तथा लम्बी अंगुलियाँ (Short Arms, Long Fingers)।
3) लम्बी भुजाएँ तथा छोटी अंगुलियाँ (Long Arms, short Fingers)।

निम्नलिखित चित्रों में 'H' को मुख्यालय/प्रधान कार्यालय तथा 'R' को क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा समझाया गया है–

1) **सभी अंगुलियाँ (All Fingres)**–इस संगठन का अर्थ यह है कि इसमें बहुत सारी अंगुलियाँ है। जो मुख्य कार्यालय से क्षेत्र तक सीधी दिशा में जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि केन्द्रीय मुख्य कार्यालय समस्त क्षेत्रीय इकाइयों के साथ सीधा सम्पर्क स्थापित करता है। उनके मध्य किसी प्रकार का भौगोलिक या प्रादेशिक उप विभाग नहीं होता है। इस विश्लेषण को इस चित्र के आधार पर समझाया जा सकता है।

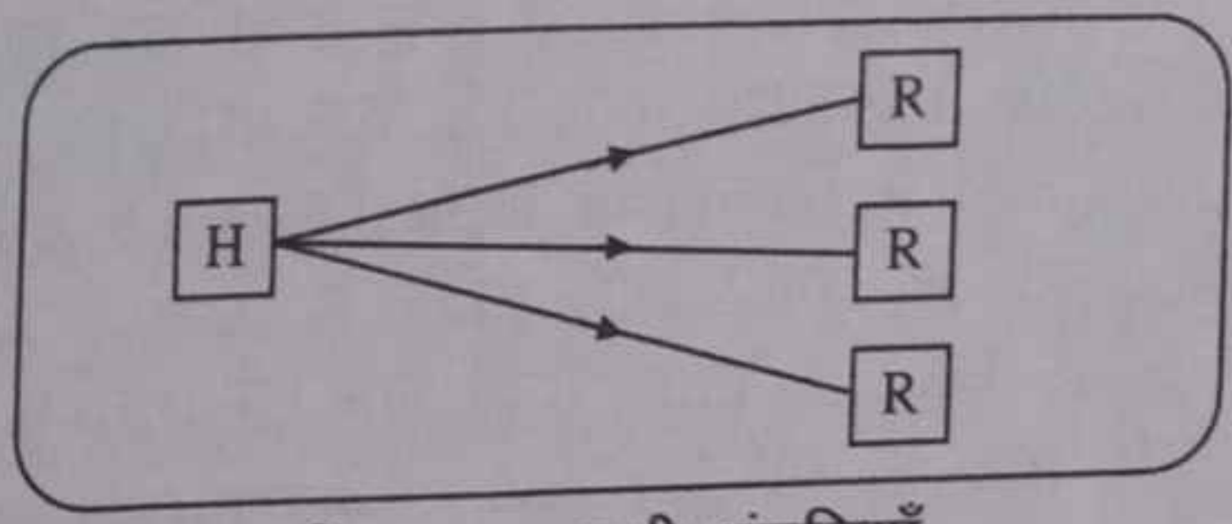

चित्र 1.4– सभी अंगुलियाँ

2) **छोटी भुजाएँ तथा लम्बी अंगुलियाँ (Short Arms and Long Fingers)**–इस प्रणाली में भौगोलिक या प्रादेशिक उप विभाग होते है किन्तु वे मुख्य कार्यालय में ही स्थित होते है। इसको इस प्रकार समझा जा सकता है जैसे– भारत के विदेश मन्त्रालय में पश्चिम एशिया सम्भाग, यूरोपीय सम्भाग इत्यादि। ये सम्भाग विदेश मन्त्रालय के नई दिल्ली स्थित मुख्यालय में ही है।

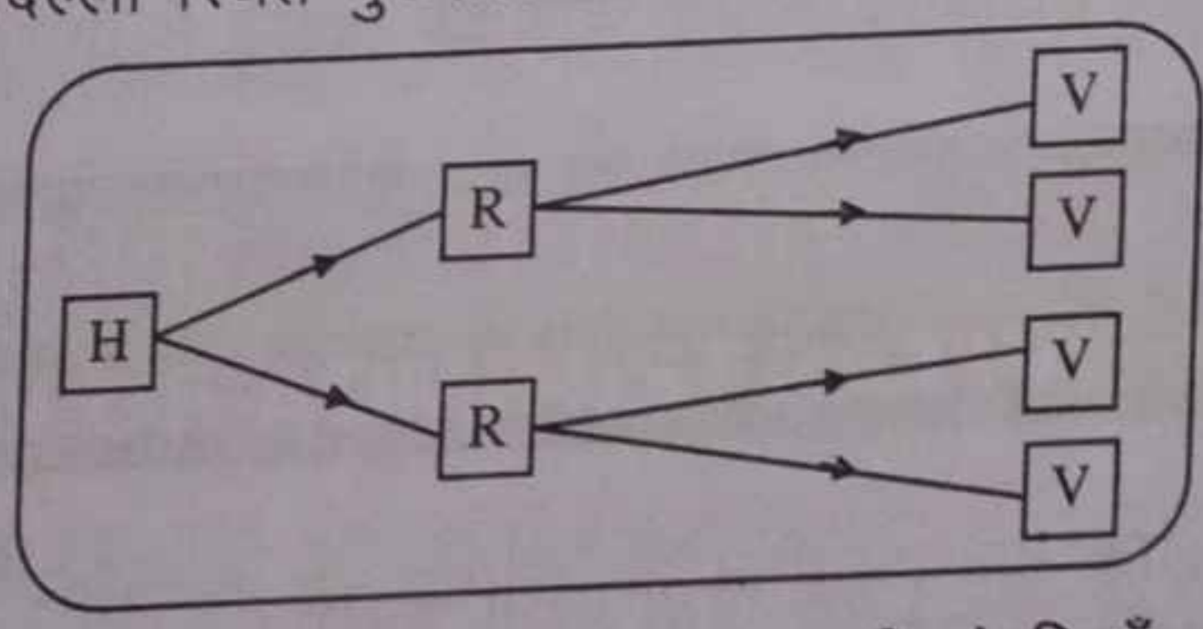

चित्र 1.5– छोटी भुजाएँ तथा लम्बी अंगुलियाँ

3) **लम्बी भुजाएँ तथा छोटी अंगुलियाँ (Long Arms and Short Fingers)**–इस प्रकार के संगठन में भौगोलिक उपविभाग या क्षेत्रीय अभिकरण मुख्य कार्यालय से बाहर दूर क्षेत्र में स्थित होते है। क्षेत्रीय कार्यालय को इस ढंग से विकेन्द्रीकरण कर दिया जाता है। जैसे–भारत में जिला प्रशासन जिसका मुखिया जिलाधीश होता है। इसको निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

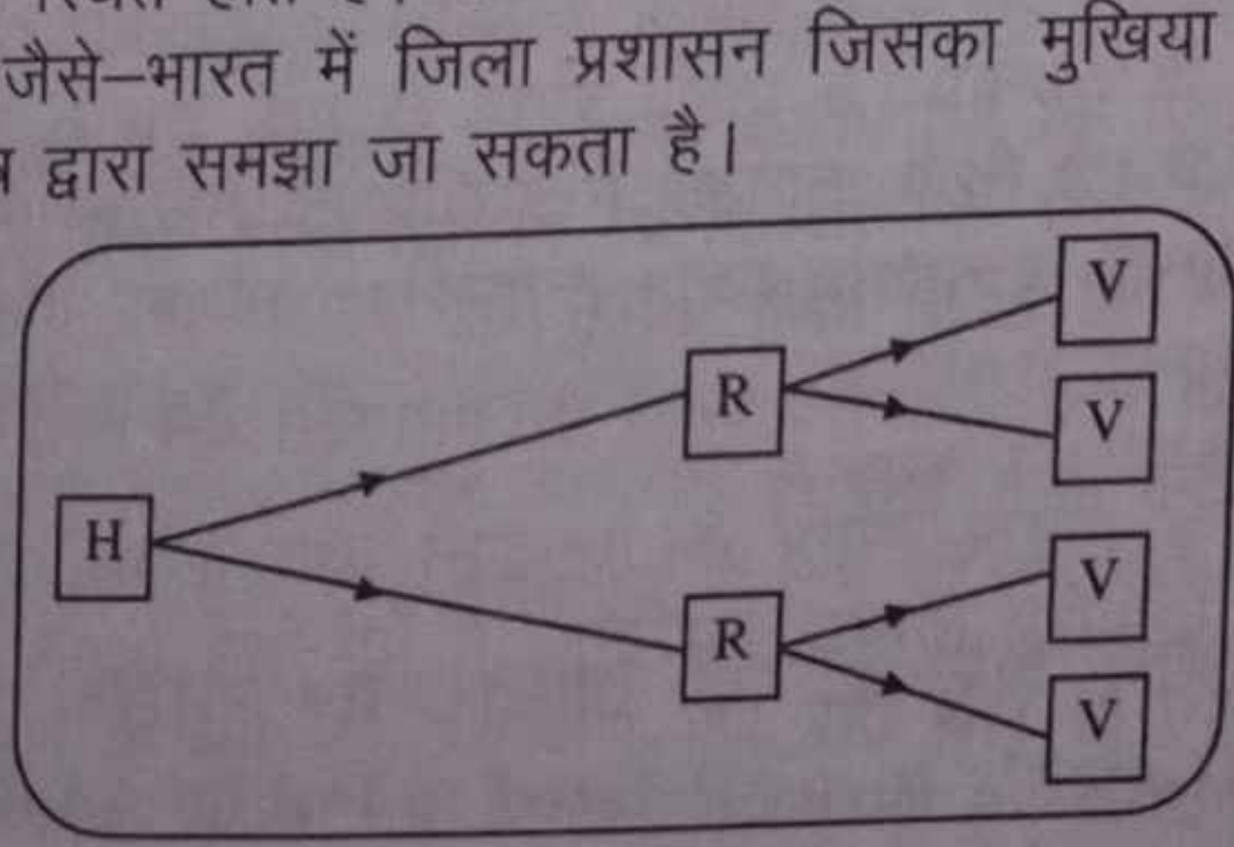

चित्र 1.6–लम्बी भुजाएँ–छोटी अंगुलियाँ

इस तरह लूथर गुलिक के अनुसार क्षेत्रीय संस्थानों पर मुख्यालय का नियंत्रण उपर्युक्त दर्शाए गये तीनों रूपों में सम्भव है।

1.8.5. लोक प्रशासन पर गुलिक के विचार (Views of Gulick on Public Administration)

लूथर गुलिक लोक प्रशासन को शासन की कार्यपालिका शाखा से सम्बन्धित कार्यों तक ही सीमित मानते है। उनके अनुसार, "लोक प्रशासन प्रशासकीय विज्ञान का वह भाग है जिसका सम्बन्ध शासन से होता है। यद्यपि व्यवस्थापिका और न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याएँ भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याएँ ही हैं। एक अन्य स्थान पर गुलिक लोक–प्रशासन की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि, "प्रशासन का सम्बन्ध कार्यों को पूरा करवाने और निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति कराने से है।" गुलिक लोक–प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच समानताओं पर जोर देते हैं और इनके बीच बढ़ती अन्तः क्रियाओं का समर्थन करते हैं। गुलिक का विचार था कि लोक–प्रशासन मुख्यतः पर्यावरण में कार्य करता है अतः लोक–प्रशासन को बदलती हुई स्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। गुलिक के अनुसार भविष्य में निम्न 3 सरकारी परिवर्तन होने चाहिए–

1) अर्न्तराष्ट्रीय सरकारी क्रिया के विस्तार, आकार और आयतन में वृद्धि
2) घरेलू अर्थव्यवस्था के नियन्त्रण और विनियमन में राष्ट्र–राज्य का प्रवेश
3) महानगरीय व्यवस्थापन के नए प्रतिमान का विकास जिसे 'मेगापोलीज' कहा जाता हैं।

1.8.5.1. प्रशासनिक सुधारक के रूप में गुलिक के विचार (Gulick's Views as an Administrative Reformer)

गुलिक केवल सिद्धान्तवादी या लोक–प्रशासन के दार्शनिक नहीं थे बल्कि लोक–प्रशासन में सुधार (Improvement) में उनकी रुचि थी और प्रशासनिक सुधारक के रूप में गुलिक ने निम्न विचार दिए–

1) सम्बद्ध गतिविधियों को एक इकाई के रूप में प्रबंधित किया जाए।
2) सभी एजेन्सियों को कुछ विभागों में संग्रहित कर देना चाहिए।
3) अपनी योग्यता और तकनीकी ज्ञान को सिद्ध कर चुके हर संगठनात्मक इकाई को एक ही अधिकारी के अधीन कर दिया जाना चाहिए।
4) प्राधिकार को उत्तरदायित्व से जोड़ दिया जाना चाहिए।
5) प्रत्येक विभागाध्यक्ष के पास नियमित मूल्यांकन हेतु स्वयं का स्टाफ होना चाहिए।
6) इस प्रकार के कार्यो को करने का उत्तरदायित्व किसी विशिष्ट कार्यकर्ता को दी जानी चाहिए।
7) निर्वाचित पदाधिकारियों की संख्या घटा दी जानी चाहिए।
8) मण्डल और आयोगों का प्रशासनिक कार्यों हेतु उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।
9) मुख्य कार्यकारी के पास विभागाध्यक्षों को नियुक्त करने, उन्हें हटाने तथा उनके कार्य को निर्देशित करने की शक्ति होनी चाहिए।
10) मुख्य कार्यकारी के पास विभागीय कार्यों पर प्रतिवेदन देने तथा उन्नत विधियाँ सुझाने के लिए शोध स्टाफ होना चाहिए।

1.8.5.2. युद्धकालीन अनुभवों के आधार पर गुलिक के लोक–प्रशासन सम्बन्धी विचार (Gulick's Ideas Related to Public Administration based on Wartime Experiences)

गुलिक ने द्वितीय विश्वयुद्ध के अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर यह बताया कि नीति और प्रशासन के मध्य कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। उनके विचार में युद्धकाल और शान्तिकाल के लोक–प्रशासन दोनो भिन्न–भिन्न होते हैं। गुलिक कहते हैं कि जब

1937 में उनका 'पैपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हुआ था उसके बाद बहुत कुछ ऐसा घटित हुआ जिससे लोक–प्रशासन काफी प्रभावित हुआ। गुलिक लोक–प्रशासन में मानवीय–घटक को अत्यधिक महत्त्व देते हैं क्योंकि सरकारें मानवों द्वारा ही उन्ही के लिए बनाई जाती है। गुलिक के अनुसार राज्य का मुख्य कार्य मानवीय कल्याण होना चाहिए न कि युद्ध। साथ ही गुलिक लोक–प्रशासन में समय घटक के महत्त्व पर बल देते हैं। अपने युद्धकालीन अनुभवों के आधार पर गुलिक ने लोक–प्रशासन के लिए 15 सबक (पाठ) तैयार किए हैं जो निम्नलिखित है–

1) युद्ध के प्रशासन हेतु अमेरिकी सरकारी तन्त्र पूर्णतया पर्याप्त है।
2) सार्वभौमिक रूप से समझा जाने वाला प्रयोजनों का एक स्पष्ट विवरण प्रभावशाली प्रशासन की असाधारण गारण्टी है।
3) प्रयोजन से कार्यक्रम का अनुवाद प्रशासन का एक जटिल तत्त्व है।
4) प्रभावी क्रिया का अपरिहार्य गतिशील प्रनियम समन्वय है।
5) प्रशासनिक व्यवहारों की अनेक तकनीकें हो सकती हैं, उस पर नियन्त्रण होना चाहिए।
6) युद्ध से यह स्पष्ट हो गया है कि नियोजन प्रबन्ध का आवश्यक और सतत परिमाण है।
7) तकनीकी नियन्त्रण और प्रशासनिक नियन्त्रण ।
8) व्यापक कार्यों वाले संगठन अधिक प्रभावकारी होते हैं।
9) नियन्त्रण के क्षेत्र को जरूरत से ज्यादा खींचा गया है।
10) राष्ट्रीय आपत्तियों में क्षमतावान कार्मिक अनिवार्य है तथा रचनात्मक प्रशासनिक उत्कृष्टता अमूल्य है।
11) युद्ध से लोक–प्रशासन में समय तत्त्व के महत्त्व का बोध हुआ है।
12) अच्छे प्रशासन हेतु लोकमत का समर्थन आवश्यक है।
13) प्रशासन के नियमित सदस्यों के संगठित हित समूहों के सदस्य परामर्शदाता और सेल्समैन के रूप में सरकारी कार्यक्रमों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं ।
14) प्रयोजन की एकता और स्पष्टता से प्रशासन में उचित प्रभावशीलता की क्रिया आती है।
15) अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन के कारण कोई नई समस्याएँ उत्पन्न नहीं हुई हैं।

1.8.5.3. भावी माँगों के अनुरूप गुलिक के लोक–प्रशासन सम्बन्धी विचार (Gulik's Ideas Related to Public Administration in Accordance with Future Demands)

प्रशासनिक विज्ञान में विश्वास रखते हुए गुलिक ने लोक–प्रशासन को भावी माँगों के अनुरूप सामर्थ्यवान बनाने के लिए 5 सूत्री कार्यक्रम बताया है जो इस प्रकार है–

1) लोक–प्रशासन को बदलती हुई क्रिया के क्षेत्र के रूप में मानवीय आवश्यकताओं के प्रति अनुकूलित होना चाहिए मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक और महानगरीय क्षेत्रों में।
2) लोक प्रशासन को विश्लेषण और समझ के रूप में या अध्ययन अनुशासन के रूप में व्यापार के अध्ययन और अन्य प्रशासनों के अध्ययनों से सम्बन्धित होना चाहिए।
3) लोक–प्रशासन को कार्मिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है।
4) लोक–प्रशासन को 'ऑटोमेशन' (कम्प्यूटर) के अवसरों को अपनाना चाहिए और आगे बढ़ना चाहिए।
5) अपने सिद्धान्तों और व्यवहारों पर लोक–प्रशासन को पुनर्विचार करना चाहिए और नया सूत्रीकरण करना चाहिए।

1.8.6. लूथर गुलिक के विचारों की आलोचना (Criticism of the Ideas of Luther Gulick)

लूथर गुलिक ने हेनेरी फेयोल तथा टेलर के विचारों से प्रभावित होकर प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि के लिए एक प्रबन्धकीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इन विचारकों ने इस प्रयास में जिस प्रकार संगठनात्मक संरचना, मानव व्यवहार एवं संगठनात्मक वातावरण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किए उसकी तीखी आलोचना हुई। विभिन्न विचारकों द्वारा इनके विरुद्ध दी गई आलोचनाएँ निम्नवत् हैं–

1) साइमन ने लूथर गुलिक के विचारों की आलोचना करते हुए कहा कि उनके विचार मशीन प्रारूप की स्थापना करते हैं एवं इनके सिद्धान्त मुहावरा से अधिक कुछ भी नहीं हैं।
2) कुछ विद्वानों के अनुसार शास्त्रीय सिद्धान्तों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है तथा ये अंगूठे के नियम पर आधारित हैं।
3) एल.डी. व्हाइट का मत है कि यह कोई नियम नहीं है। यह केवल व्यवहार के कार्यात्मक नियम हो सकते हैं जो कि अनुभव के आधार पर विकसित किये जा सकते हैं।
4) वारेन बेनिस आलोचना करते हुए वर्णित करते हैं कि इनके द्वारा स्थापित संगठन 'मनुष्य विहीन संगठन' है।
5) लूथर गुलिक ने संगठन में कार्यरत मनुष्य अथवा कर्मचारियों को संगठन के कलपुर्जे के रूप में प्रस्तुत किया। जिस कारण व्यक्ति का मशीनीकरण हुआ है।
6) गुलिक की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि दोनों ने औपचारिक संगठन से संबंधित तत्त्वों पर बल दिया है। अनौपचारिक संगठन में न तो उनके विचार थे और न ही उन्होंने शायद इसका अहसास किया है।

1.9. लिंडेल उर्विक (LENDALL URWICK)

1.9.1. परिचय (Introduction)

उर्विक का जन्म सन् 1891 ई. में ब्रिटेन में हुआ था। उन्होंने 'ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' से इतिहास विषय में स्नातक की डिग्री प्राप्त की थी। लिंडेल उर्विक ने अपने करियर की शुरूआत सेना में प्रबन्धन सलाहकार अधिकारी के रूप में की थी। वे "न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय" में प्रोफेसर के पद पर भी रहे। इसके अतिरिक्त उन्होने ब्रिटेन तथा यूरोप की कई प्रबन्ध संस्थाओं में भी कार्य किया है। उन्होंने अपने लेखन द्वारा शास्त्रीय संगठन सिद्धान्त के साथ वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणाओं को एकीकरण किया। उर्विक ने प्रबन्धकीय प्रभावशीलता को बढ़ाने के उद्देश्य से हेनरी फेयोल की तरह सामान्य सिद्धान्तों का एक सन्तुलित क्रम विकसित किया। ये सिद्धान्त आधुनिक प्रबन्धन के लिए केवल रूपरेखा ही तैयार नहीं करते हैं, वरन् विभिन्न उद्योगों एवं संगठनात्मक संरचनाओं के सम्बंध में सर्वकालिक अंतर्दृष्टि भी प्रदान करते हैं। 1983 में उनकी मृत्यु हो गई।

1.9.2. उर्विक की रचनाएँ (Compositions of Urwick)

उर्विक ने अनेक पुस्तकों की रचना की और उनके बहुत से लेख भी प्रकाशित हुए। 1937 में लूथर गुलिक के साथ मिलकर उन्होने 'पेपर्स ऑन दि साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' का संपादन किया था। उर्विक की कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ निम्नलिखित हैं।–

1) Dynamic Administration
2) Committees on Organization

3) Papers on the Science of Administration
4) Management of Tomorrow
5) The Theory of Organisation
6) Freedom and Coordination
7) The Golden Book of Management
8) The Patterns of Management
9) The Meaning of Rationalisation
10) The Elements of Administration
11) The Making of Scientific Management
12) The Patterns of Management and Leadership in the XX Century Organizations

उर्विक ने अपनी पुस्तक 'कमीटीज ऑन ऑर्गेनाइजेशन' में समितियों पर मौलिक विचार प्रस्तुत किए तथा संचार के क्षेत्र में अग्रणी योगदान दिया। 'द मीनिंग ऑफ रैशलाइजेशन' पुस्तक में उर्विक ने यह प्रदर्शित करने की कोशिश की है कि क्यों ब्रिटेन अमरीकी वैज्ञानिक प्रबन्ध को स्वीकार करने में सतर्कता बरत रहा है। 'द मेकिंग ऑफ साइन्टिफिक मैनेजमेन्ट' पुस्तक को तीन भागों में प्रकाशित कराई गई थी, उसमें उन्होंने सामाजिक सम्बन्धों पर प्रौद्योगिकी के प्रभावों का विश्लेषण किया है। उर्विक की सबसे महत्त्वपूर्ण कृति प्रथम बार 1943 में प्रकाशित 'द एलीमेन्ट्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' मानी जाती है। उर्विक ने सन् 1956 में 'भारतीय लोक प्रशासन संस्थान' नई दिल्ली में दिए एक व्याख्यान में शासन में प्रबन्ध के महत्त्व पर बल दिया।

1.9.3. उर्विक के संगठन के सिद्धान्त (Urwick's Theory of Organisation)

उर्विक ने संगठन के निम्नलिखित 8 सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं–

1) उद्देश्य का सिद्धान्त
2) समानता का सिद्धान्त
3) उत्तरदायित्व का सिद्धान्त
4) पदसोपान का सिद्धान्त
5) नियन्त्रण क्षेत्र का सिद्धान्त
6) विशेषीकरण का सिद्धान्त
7) समन्वय का का सिद्धान्त
8) परिभाषा या निर्धारण का सिद्धान्त

1) **उद्देश्य का सिद्धान्त**–उर्विक के इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक संगठन का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। यह सिद्धान्त संगठन के भीतर की सभी गतिविधियों के मार्गदर्शन हेतु एक स्पष्ट और आकर्षक दृष्टि को परिभाषित करने के महत्त्व पर बल देता है। एक बेहतर ढंग से व्यक्त उद्देश्य किसी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किए गए प्रयासों और संसाधनों को समायोजित करते हुए प्रकाश पुंज के रूप में कार्य करता है।

2) **समानता का सिद्धान्त**–उर्विक का यह सिद्धान्त प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व के मध्य समानता है। किसी भी संगठन के निरंतर और निर्बाध संचालन को सुनिश्चित करने के लिए समानता के सिद्धान्त पर बल दिया जाता है। संगठन के प्रत्येक चरण के लिए प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व की समान रूप से व्यवस्था की जाती है। उत्तरदायित्व के अभाव में प्राधिकारों के दुरूपयोग होने की संभावना रहती है। इसी प्रकार प्राधिकार के अभाव में उत्तरदायित्व का निर्वाह करना कठिन है। इसलिए दोनों में समानता है।

3) **उत्तरदायित्व का सिद्धान्त**–अधिकार के साथ उत्तरदायित्व भी आता है। उर्विक के अनुसार जिम्मेदारी किसी भूमिका को प्राप्त अधिकार के अनुरूप होनी चाहिए।

प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों को अपने कार्यों के लिए समान रूप से उत्तरदायी होना चाहिए। जिससे संगठन में स्वामित्व और नैतिक व्यवहार की संस्कृति विकसित हो सके। यह सिद्धान्त अनिवार्य रूप से मानता है कि किसी संगठन के भीतर अधिकार और उत्तरदायित्व के मध्य एक सीधा और स्पष्ट संरेखण होना चाहिए। अर्थात किसी व्यक्ति या भूमिका को सौंपी गई जिम्मेदारियाँ सीधे उस अधिकार के अनुरूप होनी चाहिए जो उन जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए दिए गए हैं।

4) **पदसोपान का सिद्धान्त**–इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार को सही ढंग से परिभाषित किया जाना चाहिए। क्योंकि व्यवस्था बनाए रखने तथा अनुशासन सुनिश्चित करने के लिए अधिकार और इनका उचित प्रयोग आवश्यक है। संगठन में एक पिरामिडीय प्रकार का ढाँचा बनाया जाना चाहिए, जिसमें उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों पर नियन्त्रण रख सकें। पदसोपान का सिद्धान्त संगठन मे एकीकरण की स्थापना में सहायक होता हैं।

5) **नियंत्रण की सीमा का सिद्धान्त**–नियंत्रण की अवधि वस्तुतः किसी वरिष्ठ द्वारा प्रबंधित अधीनस्थों की संख्या से सीधे संबंधित है। उर्विक के अनुसार अत्यधिक अवधि प्रबन्धकीय प्रभावशीलता को कम कर सकती है, जबकि कम अवधि सूक्ष्म प्रबन्धन का कारण बन सकती है। अतः प्रभावी पर्यवेक्षण और सहायता को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्यक्ष रिपोर्ट की एक अनुकूलतम संख्या होनी चाहिए।

6) **विशेषज्ञता का सिद्धान्त**–उर्विक के अनुसार श्रम को विशिष्ट कार्यों में विभाजित करना कर्मचारियों में विशेषज्ञता विकसित करने और काम की गुणवत्ता बढ़ाने में सहायक होता है, इसलिए दक्षता के लिए विशेषज्ञता का होना अनिवार्य है। यह सिद्धान्त संगठन के भीतर केंद्रित कौशल विकास और स्पष्ट भूमिका की आवश्यकता पर बल देता है।

7) **समन्वय का सिद्धान्त**–संगठन के सभी भाग सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करें यह केवल प्रभावी समन्वय द्वारा ही सुनिश्चित किया जा सकता है। संगठनात्मक सामंजस्य प्राप्त करने के लिए उर्विक प्रबन्धकीय समन्वय की भूमिका को महत्त्वपूर्ण मानते थे।

8) **परिभाषा या निर्धारण का सिद्धान्त**–उर्विक के परिभाषा सिद्धान्त के अनुसार संगठन के भीतर कर्तव्यों और सम्बंधों को स्पष्ट एवं सटीक ढंग से परिभाषित किया जाना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक भूमिका को उचित प्रकार से समझा जाए तथा अधिकार और पदों के मध्य सम्बन्धों के विषय में अपेक्षाएं स्पष्ट होनी चाहिए। संगठन इन पहलुओं को परिभाषित करके, संचालन में दक्षता को बढ़ा सकते हैं, स्पष्टता ला सकते हैं, और संचार में सुधार कर सकते हैं।

अतः संगठन के उपर्युक्त आठ सिद्धान्तों के महत्त्व का प्रतिपादन उर्विक करते हैं। इसके बाद उर्विक के विचारों पर हेनरी फेयोल का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इस प्रकार वे हेनरी फेयोल, मुने एवं रिले, टेलर, मैरी पार्कर फॉलेट तथा ग्रेक्यूनास के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अपनी पुस्तक 'द एलीमेंट्स ऑफ एडमिनिशट्रेशन' (The Elements of Administration- 1943) में उनत्तीस (29) सिद्धान्तों को प्रतिपादित किए, जो इस प्रकार हैं–

1) अन्वेषण (Investigation)
2) पूर्वानुमान (Forecasting)
3) नियोजन (Planning)
4) उपयुक्तता (Appropriatness)

5) संगठन (Organisation)
6) समन्वय (Coordination)
7) व्यवस्था (Order)
8) आदेश (Command)
9) नियन्त्रण (Control)
10) समन्वयात्मक सिद्धान्त (Coordinative Principle)
11) सत्ता (Authority)
12) स्केलर प्रक्रिया (Scalar Process)
13) कार्यों को देना (Assignment of Functions)
14) नेतृत्व (Leadership)
15) प्रत्यायोजन (Delegation)
16) कार्यात्मक परिभाषा (Functional Definition)
17) निर्धारक (Determinative)
18) अनुप्रयोंगात्मक (Applicative)
19) व्याख्यात्मक (Interprative)
20) सामान्य हित (General Interest)
21) केन्द्रीयकरण (Centralization)
22) कार्मिकों की व्यवस्था (Staffing)
23) भावना (Spirit)
24) चयन तथा पदस्थापन (Selection and Placement)
25) पुरस्कार एवं दण्ड (Rewards and Punishment)
26) पहल (Inittative)
27) समानता (Equility)
28) अनुशासन (Discipline)
29) स्थायित्व (Stability)।

उर्विक ने उपर्युक्त सिद्धान्तों के विषय में लिखा है कि, "ये सिद्धान्त सभी मानवीय संगठनों की प्रबन्ध व्यवस्था को संचालित करते है। संगठन के उद्देश्य कर्मचारी या उपक्रम की संवैधानिक, राजनीतिक अथवा सामाजिक विचारधारा पर विचार किये बिना इन सिद्धान्तों का अध्ययन एक तकनीकी प्रश्न के रूप में किया जा सकता है।"

1.9.4. उर्विक के सिद्धान्त की प्रासंगिकता (Relevance of Urwick's Principles)

उर्विक ने ये सिद्धान्त 20वीं सदी की शुरूआत में प्रतिपादित किए थे, परन्तु वर्तमान के परिवर्तित होते व्यावसायिक वातावरण में भी उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है। आधुनिक संगठन समकालीन संदर्भों के अनुसार इन सिद्धान्तों को अपनाकर अत्यधिक लाभ उठा सकते हैं।

1) **स्पष्ट उद्देश्य और बेहतर कार्यप्रणाली**–संगठन स्पष्ट उद्देश्यों को बनाए रखते हुए बाजार में होने वाले परिवर्तनों पर तीव्र प्रतिक्रिया देने के लिए बेहतर कार्यप्रणाली अपना सकते हैं।
2) **विशेषज्ञता और क्रॉस–फंक्शनल टीमें**–विशेषज्ञता को अवश्य महत्त्व दें, परन्तु नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए क्रॉस–फंक्शनल सहयोग को भी बढ़ावा दें।
3) **समन्वय और डिजिटल उपकरण**–बेहतर समन्वय स्थापित करने और सुव्यवस्थित संचार के लिए डिजिटल उपकरणों और पोर्टलों का उपयोग करें।

4) **अधिकार और सशक्तिकरण**–कर्मचारी सशक्तिकरण के साथ अधिकार का संतुलन बनाए रखें और नवाचार एवं उत्तरदायित्व की संस्कृति को प्रोत्साहन दें।
5) **उत्तरदायित्व और नैतिक नेतृत्व**–नैतिक नेतृत्व को प्रोत्साहित करना और सुनिश्चित करना कि उत्तरदायित्व, पारदर्शी नीतियों के माध्यम से स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया हो।
6) **स्केलर श्रृंखला और समतल संरचनाएं**–स्केलर श्रृंखला के साथ–साथ, उन समतल संरचनाओं पर भी विचार करें जो ग्राहकों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने और त्वरित निर्णय लेने में सक्षम हों।
7) **कमान की एकता और लचीली भूमिकाएं**–परियोजना की जरूरतों के अनुसार लचीली भूमिकाओं को अनुमति प्रदान करते हुए कमान की एकता को सुनिश्चित करें।
8) **नियंत्रण की अवधि और सहयोगात्मक नेतृत्व**–सहयोगात्मक नेतृत्व मॉडल के द्वारा नियंत्रण की अवधि अनुकूलित करें, जो टीम की स्वायत्तता को बल प्रदान करती है।
9) **समानता और समावेशन**–एक समावेशी संस्कृति के माध्यम से इस प्रकार की समानता लाने का प्रयास करें, जिसमें विविधता को महत्त्व प्राप्त हो और निष्पक्ष व्यवहार को प्रोत्साहन मिले।
10) **व्यवस्था और नवाचार**–प्रक्रियाओं में व्यवस्था होनी चाहिए और वातावरण ऐसा निर्मित करें, जो नई सोच और नये प्रयोगों को प्रोत्साहित करे।

1.9.5. उर्विक का z सिद्धान्त (Urwick's Z Theory)

लिंडेल उर्विक एक ब्रिटिश प्रबन्धन विचारक और लेखक थे। संगठनात्मक प्रभावशीलता के सम्बंध में उनका Z सिद्धान्त अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक "द एलिमेंट्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन" में रेखांकित किया है। उर्विक के अनुसार प्रशासन और प्रबन्धन के दो मूलभूत पहलू होते हैं–वैज्ञानिक और कलात्मक। जिन्हें क्रमशः Z अक्षर की क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर रेखाओं के रूप में दर्शाया गया है। इनमें वैज्ञानिक पहलू दक्षता पर केंद्रित प्रबन्धन के व्यवस्थित, तर्कसंगत पक्ष को प्रभावित करता है, इसके अन्तर्गत मानकीकरण, विश्लेषण, डोमेन और माप जैसी विधियाँ आती हैं। उर्विक ने इसे वस्तुनिष्ठता, तर्क एवं कारण में निहित माना। वहीं दूसरी ओर कलात्मक पहलू में प्रभावोत्पादकता पर केंद्रित प्रबन्धन का मानवीय एवं सहज पक्ष शामिल है। इसके अन्तर्गत ज्ञान, विवेक, समीक्षा और रचनात्मकता जैसे तत्व आते हैं। उर्विक ने इसे व्यक्तिपरकता, ज्ञान और सहानुभूति में निहित माना। उर्विक ने इस सम्बन्ध में तर्क दिया कि तेजी से बढते प्रशासन के लिए वास्तव में दोनों पहलुओं की ही आवश्यकता होती है। केवल एक पहलू पर अधिक बल देने से समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अकेले वैज्ञानिक पहलू पर जोर देने से कठोरता हो सकती है, जबकि मात्र कलात्मक पहलू से अव्यवस्था हो सकती है। उर्विक का Z सिद्धान्त उन समग्र तत्कालीन वैज्ञानिक प्रबन्धन विचारों का जवाब था जो कि दक्षता, माप और व्यवस्था पर अत्यधिक संकीर्ण रूप से केंद्रित थे। उनका उद्देश्य समीकरण में मानवीय एवं लचीले प्रबन्धन पक्ष को शामिल करना था। तर्कसंगतता और अंतर्ज्ञान के मध्य पूरक किन्तु तनावयुक्त सम्बन्ध के विषय में उनकी अंतर्दृष्टि वर्तमान में भी प्रतिध्वनि रखती है। संगठनात्मक प्रशासन प्रबन्धन के दोनों बुनियादी किन्तु पूरक पहलुओं का संक्षिप्त विश्लेषण निम्नवत है–

1) **वैज्ञानिक पहलू**–वैज्ञानिक पहलू में शामिल हैं–
   i) कार्य की व्यवस्थित योजना, संगठन एवं समन्वय
   ii) तर्क, कारण एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण का उपयोग

iii) कार्यों एवं भूमिकाओं का विशेषज्ञीकरण
iv) दक्षता पर केंद्रित एक तर्कसंगत, यंत्रवत दृष्टिकोण
v) प्रक्रियाओं का मानकीकरण और आउटपुट का मापन

2) **कलात्मक पहलू**–कलात्मक पहलू में शामिल हैं–
i) बुद्धिमत्ता, रचनात्मकता एवं उचित निर्णय
ii) परिवर्तन, जटिलता और तनाव से निपटने की क्षमता
iii) अंतर्ज्ञान, रचनात्मकता एवं व्यक्तिपरक अनुभव का उपयोग
iv) प्रभावशीलता पर केंद्रित एक मानवतावादी और जैविक दृष्टिकोण
v) सामाजिक परिस्थितियों को संभालने और लोगों को प्रेरित करने का कौशल

सफल प्रशासकीय प्रबन्धन हेतु वास्तव में वैज्ञानिक और कलात्मक दोनों ही पहलुओं की आवश्यकता होती है, परन्तु उनके मध्य एक अंतर्निहित तनाव भी होता है। वैज्ञानिक पहलू पर अधिक बल देने से कठोरता आती है, और लचीलेपन का अभाव हो जाता है। वहीं कलात्मक पहलू पर बल देने से संरचना, प्रणाली और पूर्वानुमेयता की हानि होती है। प्रबन्धकों को तार्किक रूप से विचार करने के साथ–साथ सहज ज्ञान से तथा व्यवस्थित रूप से सोचने के साथ–साथ लचीले ढंग से और विश्लेषणात्मक रूप से विचार करने के साथ ही रचनात्मक रूप से भी सोचने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त आवश्यकता होती है, एक "जीवित संरचना" की जो वैज्ञानिक एवं कलात्मक दोनों ही दृष्टिकोणों के स्तरीय अनुप्रयोग के माध्यम से परिवर्तित होती वास्तविकताओं के अनुकूल हो।

1.9.6. उर्विक के अन्य प्रशासनिक विचार (Urwick's Other Administrative Ideas)

लोक प्रशासन तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में लिण्डल एफ० उर्विक उस दौर का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब संगठन की शास्त्रीय या संरचनात्मक या औपचारिक संगठन या विचारधारा अपने शीर्ष पर थी। गुलिक एवं उर्विक द्वारा रचित पुस्तक 'Papers on the Science of Administration (वर्ष 1937)' के समय लगभग सन् 1930 से 50 के बीच यह विचारधारा काफी लोकप्रिय रही। लोक प्रशासन के साहित्य में अधिकांश विद्वान अमेरिका का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु एक ब्रिटिश चिन्तक एवं लेखक के रूप में उर्विक का योगदान भी कम नहीं आंका जा सकता है।

उर्विक का नाम प्रशासन को विज्ञान मानने वाले विद्वानों में अग्रणी हैं तथा इस सम्बन्ध में वे कुछ सुनिश्चित सिद्धान्तों की स्थापना पर बल देते हैं। सन् 1942 में 'Institute of Industrial Administration' लन्दन में 'प्रशासन के सिद्धान्तों' पर दिए गए उर्विक के पांच व्याख्यानो में उर्विक ने प्रशासन की प्रकृति को वैज्ञानिक माना है, जो कि सन् 1943 में 'The Elements of Administration' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए हैं, इसके साथ वे प्रशासन के संचालन के लिए कौशल एवं कला पक्ष पर भी जोर देते हैं।

उर्विक का मानना हैं कि प्रशासनिक कार्यों में सफलता के लिए सीमित ज्ञान काफी नहीं है, बल्कि निरन्तर व्यवहार के माध्यम से ही प्रशासनिक कौशल विकसित किया जा सकता है। वे कहते है कि "प्रशासनिक कौशल ना तो खरीदा जा सकता है और ना ही इसके 'शार्ट कट' रास्ते हैं। प्रशासनिक कुशलता के लिए कठिन अध्ययन, गहन चिन्तन तथा बौद्धिक सिद्धान्तों के प्रशिक्षण (वास्तविक एवं कार्य समस्या पर आधारित) की कीमत चुकानी पड़ती है।" लोक प्रशासन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते हुए उर्विक ने तर्क

दिया है कि "जिस प्रकार किसी सेतु के निर्माण के लिए अभियांत्रिकी के कुछ निश्चित नियम होते हैं, उसी प्रकार संगठन के संचालन के लिए निश्चित सिद्धान्त होते हैं।" इन संगठनात्मक सिद्धान्तों के सभी परम्परागत, राजनीतिक तथा व्यक्तिगत तथ्यों को प्राथमिकता की दृष्टि से ध्यान में रखना आवश्यक है, अन्यथा उस संगठन के लक्ष्यों या व्यक्तियों के परिश्रम का वांछित फल नहीं मिल सकेगा।

प्रशासन को विज्ञान बनाने के लिए उर्विक ने निम्न तर्क दिए हैं–

1) 'The Making of Scientific Management (1945–48) के Volume 3 में उर्विक ने सामाजिक सम्बन्धों पर प्रौद्योगिकी के प्रभावों का पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है। उर्विक कहते हैं कि "पाश्चात्य सभ्यता एक स्थापित सभ्यता के स्थान पर अनुकूलन योग्य सभ्यता बन गई है, लेकिन सबसे अधिक बदलाव प्रौद्योगिकीय तरीकों में आया है। दुःख की बात यह है कि वर्तमान प्रशासन (प्रबन्ध) ही प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ा बाधा बना हुआ है।" उर्विक ने इसी पुस्तक में अमेरिकी प्रशासनिक व्यवस्था एवं विकास की आलोचना भी की है।

2) उर्विक ने प्रबन्ध ज्ञान पिरामिड की रेखाचित्र प्रस्तुत करते हुए इसके कलात्मक, मानवीय तथा अभियांत्रिक पक्षों पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि मुख्य रूप से इसमें चार पक्ष सम्मिलित हैं, पहला– कार्य का विज्ञान, दूसरा– व्यक्ति एवं कार्य का समायोजन, तीसरा– कार्य का समूहीकरण एवं सहसम्बन्ध तथा चौथा– समूहों का निर्देशन एवं अभिप्रेरणा।

3) उर्विक के अनुसार, "प्रशासनिक प्रबन्ध सिद्धान्त में प्रशासन तथा प्रबन्ध को एकीकृत करते हुए निम्नलिखित चार तत्वों को सम्मिलित किया जाता है"–
   i) विवेकशीलता (तार्किकता),
   ii) कार्यकुशलता,
   iii) कार्य विशिष्टिकरण तथा
   iv) औपचारिक सम्बन्ध

4) यह सिद्धान्त इसके तत्व संगठन के उच्च स्तरों, कार्यरत कार्यपालक अधिकारियों के कार्य एवं व्यवहार से सम्बन्धित हैं। आगे उर्विक ने नेतृत्व के लिए स्वास्थ्य या शारीरिक क्षमता, प्रबन्धकीय योग्यताओं समझदारी एवं मानसिक शक्ति, समानता तथा नैतिकता को आवश्यक बताया है।

5) संगठन में 'सूत्र' एवं 'स्टाफ' अवधारणा को अपनाने के क्रम में उर्विक ने स्पष्ट रूप से विस्तारपूर्वक लिखा है कि "यह अवधारणा हमने सैन्य प्रशासन से ग्रहण की है, जबकि इसे व्यवसाय प्रशासन एवं लोक प्रशासन में ज्यों का त्यों अपनाना कठिन है। सैन्य प्रशासन में सूत्र एवं स्टाफ की अवधारणा कम से कम चार स्थितियों, सूत्र, व्यक्तिगत स्टाफ, विशेष स्टाफ तथा सामान्य स्टाफ को स्पष्ट करती है। इसी के अनुसार इन्हें कार्य, सत्ता तथा उत्तरदायित्व प्रदान किया जाता हैं।"

6) उर्विक ने अपनी पहली पुस्तक वर्ष 1929 में लिखित 'The Meaning of Rationalisation' में उस दौर में लोकप्रिय हो रही वैज्ञानिक प्रबन्ध की अमेरिकी विचारधारा तथा इस सम्बन्ध म ब्रिटेन द्वारा अपनायी गई सावधानियों का वर्णन भी किया है।

इसके अलावा उर्विक ने नौकरशाही संगठन के क्रम में लिखा है "यदि मानवीय सहयोग की व्यवस्थाएँ एक निश्चित आकार लेने के बाद विकसित होने लगती हैं, तो संगठन का

नौकरशाही प्रारूप स्वतः ही अनिवार्य हो जाता है।" उनकी दृष्टि में बहुत सारे कारणों तथा गुणों से युक्त नौकरशाही स्वयं को परम आवश्यक बना देती है। इसी प्रकार उर्विक द्वारा विगत सदी के तीसरे दशक में रॉवण्ट्री एण्ड कम्पनी में ओलिवर शेल्डन के साथ 'नीतिपरक आदर्शवाद' (Ethical Idealism) विषय पर किया गया कार्य, मानव–सम्बन्धों के हाथोर्न प्रयोगों से मिलता–जुलता माना जाता है, किन्तु यह प्रयोग पूरी तरह से सफल नहीं कहा जा सकता है।

1.9.7. उर्विक की आलोचना (Criticism of Urwick)

लिण्डल एफ. उर्विक के लेखन एवं विचारों को लेकर कभी भी व्यक्तिगत रूप से बहुत अधिक आलोचना नहीं हुई है, बल्कि उनकी आलोचना प्रशासन या संगठन के परम्परागत या शास्त्रीय विचारधारा के समर्थक होने के कारण उसी सन्दर्भ में की गई है। हरबर्ट साइमन तथा वाल्डो को इनकी आलोचना करने में अग्रणी माना जाता है।

यह आलोचनाएँ इस प्रकार हैं–

1) साइमन के अनुसार, शास्त्रीय विचारधारा के कुछ विशेष सिद्धान्तों जैसे– कार्य–विभाजन, आदेश की एकता, पदसोपान तथा नियंत्रण के क्षेत्र के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी बातें विद्यमान हैं।
2) इन प्रशासनिक सिद्धान्तों को साइमन ने केवल कहावतें या लोकोक्तियाँ या मुहावरे के रूप में माना है।
3) उर्विक के सिद्धान्तों को व्यवहारवाद के विपरीत आदर्शात्मक बताया जाता है, क्योंकि इनमें 'क्या होना चाहिए' पर बल है न कि 'क्या है' पर।
4) संगठन के परम्परागत सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए यह कहा गया है कि इनके सिद्धान्त में संरचना पर अधिक बल दिया गया है तथा संगठन को 'बन्द इकाई' माना गया है, साथ ही आर्थिक प्रोत्साहनों पर जोर देते हुए व्यक्ति को मशीन के समान विश्लेषित किया गया है।
5) उर्विक एवं अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित संगठनात्मक सिद्धान्तों को बहुत से विद्वानों ने केवल अनुभवात्मक दर्शन पर आधारित नियम बताया है, क्योंकि इन्हें विस्तृत परीक्षणों के परिणामों के आधार पर प्रतिपादित नहीं किया गया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी उर्विक के सिद्धान्त का सकारात्मक पक्ष यह है कि संगठन के अध्ययन के लिए वर्तमान समय में भी परम्परागत उपागम तथा सिद्धान्त ही मूलाधार बने हुए हैं तथा उर्विक ने इन सिद्धान्तों को निरन्तरता प्रदान की है। ब्रिटेन में प्रबन्ध तथा प्रशासन के सिद्धान्तों को लोकप्रिय एवं विशेष बनाने में उर्विक का सर्वाधिक योगदान रहा है। उर्विक के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए आलोचक यह भी तर्क देते हैं कि उनके सिद्धान्त का कोई प्रयोगात्मक आधार नहीं है क्योंकि वे केवल अनुभव और दर्शन पर आधारित हैं।

साइमन जैसे विचारक उनके सिद्धान्तों को 'कहावतें' और लोकोक्तियाँ कहकर आलोचना करते हैं। उर्विक पर संगठन के औपचारिक पहलुओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने और मानवीय पक्षों की अवहेलना करने का आरोप भी लगाया जाता है। साथ ही उर्विक का दृष्टिकोण 'शास्त्रीय' या 'मैकनिस्टिक' होने के कारण हमेशा आलोचना का शिकार होता है। इन आलोचनाओं के बावजूद भी उर्विक के विचारों का लोक प्रशासन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है तथा लोक प्रशासन में उनके योगदान को सदैव स्मरण किया जाएगा।

1.10. अभ्यास प्रश्न (EXERCISE)

1.10.1. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1) प्राचीनकाल में लोक प्रशासन के विकास से आप क्या समझते हैं?
2) भारत का मैकियावेली किसे कहा गया है?
3) कौटिल्य का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
4) वुडरो विल्सन की दो रचनाएँ बताइए।
5) प्रशासनिक प्रबन्धन सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है?

1.10.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1) लोक प्रशासन विकास के चार चरण लिखिए।
2) वैज्ञानिक प्रबन्धन सिद्धान्त के अर्थ एवं परिभाषा बताइए।
3) हेनरी फेयोल का लोक प्रशासन/प्रबन्ध में क्या योगदान रहा। किन्हीं एक का वर्णन कीजिए।
4) लूथर गुलिक का परिचय देते हुए उनके संगठन के सिद्धान्तों का नामोल्लेख कीजिए।
5) लिंडेल उर्विक के Z सिद्धान्तों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

1.10.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) लोक प्रशासन का जनक किसे कहा जाता है? आधुनिक काल में लोक प्रशासन के विकास का वर्णन कीजिए।
2) कौटिल्य के अर्थशास्त्र से क्या आशय है? कौटिल्य के वित्त विभागों का उल्लेख कीजिए।
3) वुडरो विल्सन का परिचय देते हुए, उनके योगदानों पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
4) हेनरी फेयोल की दो रचनाएँ लिखिए। लोक प्रशासन पर गुलिक के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
5) लिंडेल उर्विक का संक्षिप्त परिचय दीजिए। लिंडेल उर्विक के अन्य प्रशासनिक विचारों का उल्लेख कीजिए।

इकाई–2

प्रशासनिक सिद्धान्तों का परिचय
INTRODUCTION OF ADMINISTRATIVE THEORIES

2.1. नौकरशाही (BUREAUCRACY)

2.1.1. परिचय (Introduction)

नौकरशाही को कर्मचारी तंत्र या अधिकारी तंत्र भी कहा जाता है। यह प्राचीनकाल से चली आ रही एक व्यवस्था है। नौकरशाही शब्द जितना सुपरिचित है उतना ही बदनाम एवं अप्रिय है। नौकरशाही में कर्मचारीगण अपने पद की जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए एक विशिष्ट प्रकार का आचरण करते हैं। इस नौकरशाही की संस्थागत रूप रचना और संगठनात्मक तथा संरचनात्मक पहलू को कार्मिक प्रशासन के रूप में जाना जाता है। इसमें शामिल विषय लोक सेवाओं की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन, पद वर्गीकरण तथा अन्य है। कार्मिक प्रशासन के इन समस्त पहलुओं की संतोषजनक व्यवस्था होने पर भी यह उम्मीद की जा सकती है कि नौकरशाही अच्छी तरह से कार्य करते हुए अपने निश्चित उद्देश्यों की उपलब्धि की दिशा में निश्चित रूप से आगे बढ़ सकेगी। 18वीं शताब्दी के मध्य में एक फ्रांसीसी विचारक 'दि गार्ने' ने 'नौकरशाही' शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि फ्रांस में एक बीमारी ने जन्म लिया है, जो हम सब के लिए बड़ी मुसीबत बन सकती है। इस बीमारी को इन्होंने 'ब्यूरोमोनिया' कहा। मिचेल्स, मोस्का, मैक्सवेबर, कार्लमार्क्स आदि ने आगे चलकर इस शब्द का प्रयोग कई प्रकार से किया।

2.1.2. नौकरशाही का अर्थ (Meaning of Bureaucracy)

नौकरशाही का अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द ब्यूरोक्रेसी है। यह फ्रांसीसी भाषा के ब्यूरो शब्द से लिया गया है। इसका तात्पर्य है–एक विभागीय उपसम्भाग या विभाग। इस शब्द का फ्रांस में प्रयोग लिखने वाली डैस्क के लिए होता था। इस डैस्क पर ढके कपड़ों को ब्यूरल कहा जाता था। इसी आधार पर निर्मित ब्यूरो शब्द सरकारी कार्यों का परिचायक था। सम्भवतः आगे चलकर इसका प्रयोग फ्रेंच सरकार चलाने के लिए किया गया। 19वीं सदी में इसका प्रयोग जहाँ–जहाँ सरकार में निरंकुशता, सकुंचित दृष्टिकोण और सरकारी अधिकारियों की मनमानी दिखायी पड़ी वही इसे नौकरशाही कहा जाने लगा। नौकरशाही की विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं–

जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसार, "नौकरशाही का अर्थ समाज में सरकार के व्यावसायिक रूप से दक्ष प्रशासकों से है।"

हैरोल्ड जोसेफ लॉस्की के अनुसार, "एक सरकारी व्यवस्था में अधिकारियों का शासन ही नौकरशाही है।"

हर्मन फाईनर के अनुसार "प्रशासकों या अधिकारियों द्वारा किया गया शासन ही नौकरशाही है।"

मार्शल ई. डिमॉक के अनुसार, "नौकरशाही एक वृहत रूप में केवल संस्थावाद का नाम है। यह किसी संस्था के खून में मिलाया हुआ कोई बाहरी पदार्थ नहीं है। यह केवल सभी में पाई जाने वाली विशेषताओं का एक बढ़ा हुआ रूप है।"

आररेल्ड के अनुसार, "नौकरशाही का मतलब है अफसरों द्वारा शासन।"

फिफनर के अनुसार, "अधिकारी तंत्र व्यक्तियों और कार्यों का ऐसा व्यवस्थित संगठन है जो सामूहिक प्रयास के द्वारा निश्चित लक्ष्य की सहज प्राप्ति कर सकता है।"

जार्ज बर्नाड के अनुसार, "सत्ता के उपासक उच्च पदाधिकारियों की सामंतशाही का दूसरा नाम ही अधिकारी राज्य है।"

विलोबी के अनुसार, "अपने व्यापक अर्थ में नौकरशाही एक ऐसी प्रणाली है जहाँ कर्मचारियों को विभिन्न वर्गीय सोपानों, जैसे– सेक्शन, डिवीजन, ब्यूरो, डिपार्टमेंट में बाँटा जाता है।"

एच. एपेलवी के अनुसार, "नौकरशाही तकनीकी दृष्टि से कुशल कर्मचारियों का एक व्यावसायिक वर्ग है जिसका संगठन पद सोपान के आधार पर किया जाता है और जो निष्पक्ष होकर राज्य का कार्य करते है।"

ग्लेडन के अनुसार, "नौकरशाही वेतनभोगी कर्मचारियों का ऐसा संगठन है जो प्रशासन में दक्षता लाते हैं।"

मैक्सवेबर के अनुसार, "नौकरशाही प्रशासन का वह तन्त्र है जिसमें मानवता का अभाव है।"

नौकरशाही की उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि कुछ विद्वान मानते हैं कि यह वह व्यवस्था है जहाँ सरकारी कार्यों का संचालन ऐसे व्यक्तियों के हाथों में होता है जो विशेष प्रशिक्षण प्राप्त, कानूनों का अक्षरशः पालन करने वाले, विधानमंडल द्वारा पारित नियमों को श्रेष्ठ समझने वाले तथा जो जनहित से परे रहते है। यह ऐसी व्यवस्था है जहाँ एक अधिकारी जनता के प्रति अपने को उत्तरदायी न समझकर स्वयं को अपने से बड़े अधिकारी के प्रति उत्तरदायी मानता है। जहाँ प्रशासन एक निर्जीव मशीन की भांति पदसोपान पद्धति द्वारा चलता है। कुछ विद्वान इसका व्यापक अर्थ मानते है उनका मानना है कि नौकरशाही अनुभव, ज्ञान तथा उत्तरदायित्व का प्रतीक है।

2.1.3. नौकरशाही के उदय के कारण (Factors Responsible for Rise of Bureaucracy)

नौकरशाही का उदय 18वीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप के देशों में सबसे पहले हुआ और उसके पश्चात विश्व के अन्य देशों में हुआ। किन्तु अपने चरम पर ये 20वीं शताब्दी में पहुँची। जबकि कई राज्यों में तब भी मार्क्सवादी सिद्धान्त की विजय हुई जो कि इसको समाप्त कर देने की इच्छा रखती है। नौकरशाही के उदय में लॉस्की अनेक तत्वों के योगदान का परिणाम मानते है। जैसे यह कुलीनतंत्र की उपज के रूप में विकसित हुआ। लास्की यूरोप में कुलीन तन्त्र की उपज, राज्यों का विशाल आकार, लोकतन्त्र का आगमन, कार्य एवं सेवाएं आदि को नौकरशाही के उदय का कारण मानते थे। वहीं अर्थव्यवस्था की स्थापना, वेबर युद्ध, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का जन्म, पश्चिमी समाज में

तर्क शक्ति के लिए अधिक व्यापक प्रवृत्ति, यूरोप की जनसंख्या में बढ़ोत्तरी, जटिल प्रशासनिक समस्याओं का उत्पन्न होना, संचार के आधुनिक स्वरूप आदि को नौकरशाही के उत्पन्न होने का मुख्य कारण मानते हैं। इसके अपने इतिहास में कुलीनतंत्र में सक्रिय सरकार के लिए रुझान का अभाव देखा गया जिसमें विभिन्न ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई कि सत्ता स्थायी अधिकारियों के हाथों में चली गई। और नौकरशाही के उदय का दूसरा परिणाम यह भी रहा कि सम्राट की ऐसी इच्छा थी। जबकि वे अपने व्यक्तिगत अधीनस्थ कर्मचारियों को रखना चाहता था। जो कि उपयोग में कुलीन वर्ग में शक्ति के लिए बढ़ती हुई लालसा के विरुद्ध किया जा सके। तीसरा कारण लोकतंत्र के उदय ने इसके विकास को दो तरीके में सहयोग दिया–

1) उन्नीसवीं शताब्दी लोकतांत्रिक सरकार के पश्चिमी संसार में उदय हो जाने से ऐसी व्यवस्था को बनाए रखने के संयोग समाप्त हो गए जिसमें अधिकारी पैतृक तथा स्थायी जाति बन सकते थे।

2) लोकतंत्र के साथ ही साथ अन्य परिस्थितियों का भी उदय हुआ जिसके कारण वह अनिवार्य हुआ कि विशिष्ट सेवा का कार्य करने के लिए विशेषज्ञों का समूह सुनिश्चित होना चाहिए। चौथे आधुनिक राज्य का विशाल आकार और इसके उपलब्ध की जाने वाली सेवा का विस्तार इस बात को अनिवार्यता प्रदान करती है कि विशेषज्ञों का प्रशासन अवश्यम्भावी हो।

2.1.4. नौकरशाही के प्रकार (Types of Bureaucracy)

सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक तत्त्वों से नौकरशाही के स्वरूप पर प्रभाव पड़ता है। मोर्सटिन मार्क्स (Morstein Marx) ने प्रमुख रूप से नौकरशाही को चार श्रेणियों में विभक्त किया है– अभिभावक नौकरशाही, जातीय नौकरशाही, प्रश्रय या संरक्षण नौकरशाही और योग्यता पर आधारित नौकरशाही। जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

1) **जाति नौकरशाही (Caste Bureaucracy)**–समाज के वर्ग सम्बन्धों में यह उत्पन्न होती है, जहाँ उच्च वर्ग अथवा जाति से पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। एफ.एम. मार्क्स के मतानुसार जातिगत प्राथमिकताओं से जाति नौकरशाही के उच्च पदों की योग्यता को जोड़ा जाता है। जैसे इंग्लैंड में कुलीन वर्ग के लोगों को लोक सेवाओं के पदों के लिए प्रथमिकता प्रदान की जाती थी। एपलबी भारतीय प्रशासनिक सेवा के विषय में कहते है कि विभिन्न विशेष वर्गों में इस सेवा के पदाधिकारी विभक्त किए जाते हैं एवं उनको विशेष रूप से प्रमुख सेवाएँ प्रदान की जाती है। सामान्यतः प्रशासक अपनी जातियों हेतु अधिक कार्य करने का प्रयास करते हैं। रोमन साम्राज्य के प्रारम्भ में लोक सेवाएँ, 1950 के दशक में फ्रांसीसी लोक सेवाएँ, मेजी (Maiji) संविधान के अन्तर्गत जापानी लोक सेवाएं इत्यादि जाति नौकरशाही के कुछ उदाहरण हैं।

2) **अभिभावक नौकरशाही (Guardian Bureaucracy)**–प्लेटो द्वारा अभिभावकों को समुदाय के न्याय एवं जनहित का संरक्षक माना गया है जिनका चुनाव उनकी शिक्षा के आधार पर होता था। चीन में इस प्रकार की नौकरशाही 960 ईस्वी से पूर्व एवं रूस में 640 से 1740 ईस्वी के मध्य स्थित थी। प्लेटो के सिद्धान्त के अनुसार यह चीन की सरकार की समस्त गतिविधियाँ थी, यद्यपि उनके ऊपर चीनी विचारक कन्फ्यूशियस के न्याय युक्ति सम्बन्धी विचारों का भी प्रभाव था। लोगों के समक्ष एक आदर्श जीवन का उदाहरण पेश करना अधिकारियों का मुख्य कर्त्तव्य था। उनकी विद्वत्ता के आधार पर उनका चुनाव होता था एवं उनको सही आचरण हेतुं शास्त्रीय पद्धति के आधार पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था।

3) **योग्यता पर आधारित नौकरशाही (Merit based Bureaucracy)**–उपरोक्त दिए गए नौकरशाही के प्रकारों में प्राप्त दोषों की प्रतिक्रियाओं से ही योग्यता के आधार पर नौकरशाही का उदय हुआ। योग्यता के आधार पर इसमें नियुक्ति की जाती है एवं इसमें निष्पक्ष मापदंडों का प्रयोग किया जाता है। एक बार प्रवेश करने के उपरान्त पद एवं स्थायित्व निश्चित रहते हैं। वर्तमान में योग्यता पर आधारित नौकरशाही अन्य नौकरशाही से अधिक प्रभावशाली मानी जाती है, क्योंकि यह प्रशासनिक मुद्दों में विवेकशीलता पर जोर देती है।

4) **संरक्षण नौकरशाही (Patronage Bureaucarcy)**–यह पुरस्कार व्यवस्था (Spoil-system) भी कहलाती है। राजनीतिक नियंत्रण के एक साधन के रूप में इसमें संरक्षण को देखा जाता है। इसमें मन्त्रियों अथवा चुने गए प्रतिनिधियों के रक्षितों को लोकसेवाओं हेतु नामजद किया जाता है। उनके समर्थकों में व्यक्तिगत अथवा राजनीतिक इनामों की तरह सार्वजनिक पदों को वितरित किया जाता है। ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी से इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुलीन वर्ग को लोकसेवाओं में प्रवेश करने में सहयोग प्रदान किया। इसका जनक अमेरिका को माना जाता है। अनेक दोषों के होने के कारण इसकी आलोचना होने लगी।

जिनमें निम्न दोष सम्मिलित हैं।

i) अनुशासनहीनता,
ii) योग्यता का अभाव
iii) अधिकारियों का लालचीपन,
iv) दोषपूर्ण पद्धतियाँ,
v) सेवा भावना का अभाव
vi) पक्षपात आदि

2.1.5. मैक्स वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त (Max Weber's Theory of Bureaucracy)

नौकरशाही के विषय में मार्क्स, लेनिन, ट्राटस्की, वर्नहम, रिजी, मैक्स स्बैकटमैन, मिलोवन पिलास, जैसिक कुरुन, मैक्स वेबर व अन्य ने अपने–अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन सभी सिद्धान्तों में मैक्स वेबर का सिद्धान्त अधिक तर्कपूर्ण एवं व्यवस्थित है। इसलिए नौकरशाही का व्यवस्थित अध्ययन मैक्स वेबर से ही प्रारम्भ माना जाता है। प्रारम्भ में मैक्स वेबर के नौकरशाही के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना हुई, परन्तु कालान्तर में वह इतना लचीला बन गया कि उसे आदर्श सिद्धान्त माना गया। वेबर ने अपना यह सिद्धान्त अन्य विद्वानों के सिद्धान्तों की कठोरता के कारण विकसित किया। देखते–देखते मैक्स वेबर का यह सिद्धान्त विकासशील देशों में अधिक लोकप्रिय हो गया।

मैक्स वेबर ने इस सिद्धान्त का वर्णन अपनी पुस्तक "Economy and Society" (इकोनॉमी एण्ड सोसायटी) एवं "Parliament and Government in the Newly Organised Germany" (पार्लियामेन्ट एण्ड गवर्नमेन्ट इन द न्यूली ऑर्गेनाइज्ड जर्मनी) में किया है। इन पुस्तकों में मैक्स वेबर ने कहीं भी प्रत्यक्ष रूप में नौकरशाही का अलग सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया है। इन पुस्तकों में उनका नौकरशाही का सिद्धान्त शक्ति, प्रभुत्व एवं सत्ता पर दिए गए विचारों में विद्यमान है। वेबर ने वैधता के आधार पर सत्ता का वर्गीकरण किया तथा इसी आधार पर संगठनों का भी वर्गीकरण किया। निस्संदेह मैक्स वेबर का यह सिद्धान्त सत्ता अथवा प्रभुत्व के सिद्धान्त पर ही आधारित है। वेबर का मत है कि वैधानिक सत्ता ही नौकरशाही है। उनका मानना था कि विधिक सत्ता से पोषित तथा समर्थित नौकरशाही ही संगठन का सबसे अच्छा रूप है। इस तरह वेबर ने नौकरशाही का प्रयोग एक निश्चित प्रकार के प्रशासनिक संगठन को बताने हेतु किया है। वेबर ने नौकरशाही को विधिक सत्ता पर आधारित करते हुए कहा है कि इसमें एक विधि संहिता का निर्माण करके संगठन के

सभी सदस्यों को उस विधि संहिता का पालन करना अनिवार्य कर दिया जाता है। कानून के नियमों के अनुसार ही प्रशासन अपना कार्य करता है तथा सत्ता का प्रयोग करने वाला व्यक्ति अवैयक्तिक आदेशों का ही पालन करता है। विधिक सत्ता में निष्ठा, सत्ता प्राप्त व्यक्ति के प्रति न होकर कानून अथवा अवैयक्तिक विधि के प्रति होती है। नौकरशाही भी इसी प्रकार निष्पक्ष, कार्य विशेषज्ञ एवं अवैयक्तिक होती है।

मालटिन एलबरो का मत है कि नौकरशाही नियुक्त किए गए योग्य प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों का समूह है जिसका विस्तार चर्च, राज्य, राजनीतिक दल, व्यावसायिक उपक्रम, मजदूर संघ, विश्वविद्यालय एवं गैर–राजनीतिक समूहों तक भी है। वर्तमान समय में नौकरशाही शब्द का प्रयोग सरकार, सेना, उद्योग व अन्य बड़े–बड़े संगठनों में कार्यरत अधिकारी वर्ग एवं कर्मचारियों के समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है। वर्ष 1920 में वेबर की पुस्तक "विर्टशॉफ्ट एण्ड गेसलशॉफ्ट" (Writschaft and Gesellschaft) का प्रकाशन हुआ, इस पुस्तक में उन्होंने सत्ता के सिद्धान्त के विषय में विस्तार से बताया है। वेबर के अनुसार सत्ता के तीन रूप होते है–

1) परम्परावादी सत्ता (Traditional Power)।
2) चमत्कारिक सत्ता (Miraculous Power)।
3) कानूनी सत्ता (Legal Authority)।

1) **परम्परावादी सत्ता (Traditional Power)**–साधारणतया परम्परावादी सत्ता का प्रयोग किए जाने वाले व्यक्तियों को मालिक कहा जाता है। इस प्रकार की सत्ता व्यक्ति को 'वंश विरासत' की सामाजिक परम्परा के अन्तर्गत प्राप्त हो पाती है। इस प्रकार की सत्ता में कोई निजी प्रयास शामिल नहीं होता है, लेकिन इस पद का आनंद वह निजी रूप से ही उठाते है। ऐसे प्रभुत्व सम्पन्न मालिकों का निर्णय उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं पर निर्भर करता है। उन्हें इसके लिए किसी तार्किक आधार की आवश्यकता नहीं होती है। रिवाजों की आड़ में उनकी आज्ञाएँ निजी संतुष्टि का एक जरिया होती है। इस प्रकार के आदेश पालन करने वाले व्यक्तियों को 'अनुचर' कहते है। मालिकों के आदेशों का पालन अनुचर पूरे ईमानदारी व आदरभाव के साथ करते है। पुश्तैनी सत्ता के अन्तर्गत जो व्यक्ति आदेशों का पालन करते है वे सामान्यतया निजी सेवक घरेलू कर्मचारी और मालिक के चहेते होते है। इसी वजह से ये लोग अपनी विभिन्न गतिविधियों और व्यवहार के लिए अपनी बुद्धि के बजाय मालिक की इच्छा पर निर्भर होते है। इन्हें मालिक की इच्छा के अनुसार अपने तौर–तरीकों में परिवर्तन करना पड़ता है। ऐसे में अनेक विषय पर उनकी अलग–अलग राय बनती रहती है। फिर भी इनकी गतिविधियों को रिवाजों और परम्परा के आधार पर वैधता प्राप्त होती है।

2) **चमत्कारिक सत्ता (Miraculous Power)**–इसाई धर्म की प्राचीन शब्दावली से चमत्कार शब्द को लिया गया है। चमत्कारी सत्ता के अन्तर्गत किसी नेता, पैगम्बर या कुशल वक्ता द्वारा अपनी शक्तियों का प्रयोग असाधारण गुणों पर अलौकिक दैवीय गुणों के बल पर किया जाता है। इसमें व्यक्ति सत्ता प्राप्त असाधारण क्षमताओं के कारण व्यक्ति की आज्ञा का पालन करता है। वह आज्ञा का पालन उसकी सत्ता के कारण करता है। न कि किसी विषय या पद मर्यादा में बंधकर। चमत्कारी नेता अपने शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए जो व्यवस्था बनाता है उसमें वह अधिकारों पदोन्नति आदि का विभाजन उनके निजी समर्पण को देखकर करता है न कि अनुचरों की योग्यता व क्षमता के आधार पर। इस प्रकार सभी अनुचर सम्पूर्ण रूप से अपने मालिक की इच्छा अनिच्छा के अधीन कार्य करते है।

3) **वैधानिक/कानूनी सत्ता (Legal Authority)**–नौकरशाही व्यवस्था में वेबर वैधानिक सत्ता को सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण के रूप में स्वीकार करते है। वैधानिक सत्ता का स्रोत व्यक्ति की निजी प्रतिष्ठा में निहित नहीं होता बल्कि उन नियमों में विद्यमान होता है जिनके अन्तर्गत वह एक विशिष्ट पद पर आसीन होता है। इस सत्ता का अधिकार क्षेत्र सीमित होता है और इसका स्रोत स्वयं राज्य के कानून होते है। सत्ता के अधिकार क्षेत्र से परे कोई भी शासक अपनी सत्ता का प्रयोग नहीं कर सकता है। सत्ता के इन तीन प्रकारों में वेबर कानूनी सत्ता प्रणाली को उसमें निहित तार्किकता के कारण ज्यादा पसंद करते हैं यहाँ तक कि वेबर ने इस बात पर जोर देते है कि सिर्फ कानूनी सत्ता प्रणाली ही है, जो आधुनिक सरकारों के लिए उपयुक्त है।

इस प्रकार वेबर ने सत्ता के तीन प्रकार को विस्तृत ढंग से समझाया है। वेबर ने बताया कि तीनों प्रकार की सत्ताएँ अलग होते हुए भी एक–दूसरे से जुड़ी हुई है और इनकी वैधता तभी तक रहती है जब तक इससे जुड़े लोग इसे स्वीकृति देते है। परम्पराओं का उल्लंघन तब होता है जब चमत्कारिक सत्ता की कुर्सी हिल जाती है और करिश्मा करने वाला व्यक्ति निरंकुशता की हदें पार कर देता है।

2.1.5.1. मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की विशेषताएँ (Characteristics of Max Weber's Bureaucracy Theory)

मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) **पदसोपान पद्धति (Hierarchy Method)**–नौकरशाही पद सोपान के सिद्धान्त पर गठित होती है, अर्थात् प्रत्येक अधिकारी अपने वरिष्ठ किसी अधिकारी के अधीन होता है। उच्चतर अधिकारियों द्वारा आदेश दिए जाते हैं एवं छोटे अधिकारियों को उन आदेशों का पालन करना पड़ता है। छोटे अधिकारी अपने कार्यों के लिए अपने से वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

2) **योग्यता के आधार पर नियुक्ति (Merit based Appointment)**–योग्यता के आधार पर प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। प्रत्येक प्रशासनिक पदों के लिए शैक्षणिक योग्यता निर्धारित की जाती है। लिखित एवं मौखिक परीक्षा के पश्चात् योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है।

3) **प्रशासन में विशेषज्ञता (Expertise in Administration)**–विशेषज्ञ उसे कहा जाता हैं जो किसी विषय में विस्तृत जानकारी रखता हो। नौकरशाही के अधिकारी अपने–अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। इसी विशेषता के आधार पर उनकी नियुक्ति की जाती है।

4) **कार्यों का उचित विभाजन (Proper Division of Works)**–नौकरशाही में सभी प्रशासनिक कार्यों को उचित प्रकार से विभाजित कर दिया जाता है, तत्पश्चात् प्रत्येक स्तर के कर्मचारी को उसके कार्य एवं उत्तरदायित्त्व से अवगत करा दिया जाता है।

5) **निश्चित वेतन तथा भत्ते (Fixed Pay and Allowances)**–नौकरशाही में सभी कर्मचारियों को निश्चित वेतन एवं भत्ते दिए जाते हैं। जैसे–जैसे उनकी पदोन्नति होती है वैसे–वैसे उनका वेतन भी बढ़ता जाता है। कर्मचारी जब सेवानिवृत्त होते हैं तो उन्हें पेंशन भी दी जाती है।

6) **अनुशासन की भावना (Sense of Discipline)**–प्रशासनिक अधिकारियों में अनुशासन की भावना होती है। यह अधिकारी उसी प्रकार शासन के नियमों को लागू करते हैं जैसे सेना में नियमों को लागू किया जाता है। भावना से कई बार निरंकुशता

7) **पदोन्नति के अवसर (Promotion Opportunities)**–नौकरशाही के अन्तर्गत् कर्मचारियों को पदोन्नति का भरपूर अवसर मिलता है। कोई प्रशासनिक अधिकारी सदैव एक ही पद पर आसीन नहीं रहता, बल्कि उसकी पदोन्नति होती रहती है। कर्मचारियों को यह पदोन्नति उसे योग्यता एवं वरिष्ठता के आधार पर मिलती है।

8) **राजनीतिक तटस्थता (Political Neutrality)**–नौकरशाही के अन्तर्गत् कर्मचारी राजनीति से तटस्थ रहते हैं, तथा वह सक्रिय रूप से राजनीति में सम्मिलित नहीं हो सकते। नौकरशाही के अधिकारी या कर्मचारी संसद अथवा विधानमण्डल का चुनाव नहीं लड़ सकते हैं। वह प्रत्यक्ष रूप से किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं रख सकते हैं।

9) **व्यवसायी वर्ग (Occupational Category)**–प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका कमाने हेतु किसी न किसी व्यवसाय से जुड़ना पड़ता है। इसी तरह प्रशासन चलाना भी कर्मचारियों का व्यवसाय है। नौकरशाही के कर्मचारियों को अपने व्यवसाय के विषय में लगभग सम्पूर्ण ज्ञान होता है। उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करने हेतु प्रशिक्षण भी मिलता है।

10) **अवैयक्तिक सम्बन्ध (Impersonal Relationship)**–नौकरशाही के अन्तर्गत अधिकारी किसी विषय पर निर्णय लेते समय वैयक्तिक बातों को ध्यान में नहीं रखते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो संगठन में निर्णय लेते समय मानवीय सम्बन्धों पर ध्यान न देकर वैधानिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इससे प्रशासन में निष्पक्षता बनी रहती है।

11) **लिखित दस्तावेज (Written Document)**–नौकरशाही के अन्तर्गत कार्यालयों का कार्य लिखित दस्तावेजों के माध्यम से संचालित होता है। दस्तावेजों को सुरक्षित रखने हेतु फाइलों की व्यवस्था की जाती है तथा सभी फाइलों को श्रेणीबद्ध करके पृथक–पृथक सुरक्षित रखा जाता है।

2.1.5.2. मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त के सकारात्मक पक्ष (Positive Sides of Max Weber's Bureaucracy Theory)

मैक्स वेबर ने एक यंत्र के रूप में नौकरशाही को स्वीकार किया है। उनका ऐसा विचार है कि एक यन्त्र के रूप में नौकरशाही को नियंत्रित करना आसान है मार्टिन एल्बरों (Martin Albero) नौकरशाही के नियंत्रण के पक्ष में निम्नलिखित उपाय बताए हैं–

1) **प्रजातंत्र के लिए अनिवार्य (Essential for Democracy)**–मैक्स वेबर के अनुसार, नौकरशाही पर आधारित प्रशासन व्यवस्था की जरूरत तब बढ़ेगी जब प्रजातंत्र का विस्तार होगा वेबर की इस भावना के लिए जूलियन फ्रायड महोदय लिखते है कि, "यह सामान्यतः स्वीकार कर लिया गया है कि प्रजातंत्रीकरण और नौकरशाही साथ–साथ चलते है।"

2) **सामाजिक अंतरों को कम करना (Reducing Social Differences)**–नौकरशाही को एक ऐसे संगठन प्रणाली के रूप में देखा गया है जो आर्थिक और सामाजिक भेदों को दूर करती है और सामाजिक समानता स्थापित करने में सहायक होती है। वस्तुनिष्ठ शैक्षिक प्रमाणपत्रों व औपचारिक परीक्षाओं के आधार पर विभिन्न प्रकार के पदों पर नियुक्तियाँ होती है।

इन नियुक्तियों को परिवार वंश या आर्थिक सम्पन्नता प्रभावित नहीं करती है। इस प्रकार नौकरशाही सामाजिक अंतरों को समाप्त करने का भी कार्य करती है।

3) **विश्वास को बनाए रखना (Keeping the Faith)**–अवैयक्तिक नियमों के आधार पर नौकरशाही को संचालित किया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप लोगों का प्रशासन पर विश्वास बना रहता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत कार्य अधिक सूक्ष्मता, तीव्र गति मितव्ययिता और बिना किसी विवाद के सम्पन्न होता है।

4) **शिक्षा के स्वरूप में बदलाव (Change in Form Education)**–नौकरशाही की जरूरतों ने शिक्षा के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। विभिन्न क्षेत्रों में कर्मचारी की माँग को देखते हुए स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षण ने पाठ्यक्रम व प्रशिक्षण के तरीके बदले जा रहे है। डिप्लोमा सर्टिफिकेट्स एवं डिग्री आदि का महत्त्व आज के समय में बहुत अधिक बढ गया है।

2.1.5.3. मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Bureaucracy Theory of Max Weber)

मैक्स वेबर का योगदान, नौकरशाही के अध्ययन एवं विवेचन में महत्त्वपूर्ण रहा है। उनके द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त की विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है। वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं–

1) **प्रशिक्षित अयोग्यता (Trained Disqualification)**–मर्टन के अनुसार प्रशिक्षित अयोग्यता का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें किसी कर्मचारी अथवा अधिकारी की क्षमताएँ अथवा योग्यताएँ उसकी कमियों के रूप में कार्य करती हैं। जो क्रियाएँ प्रशिक्षण एवं निपुणता पर आधारित थी एवं जिन्हें पहले सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सका, वर्तमान में वह अनुपयुक्त अनुक्रिया के रूप में प्रकट हो सकती हैं।

2) **व्यावसायिक मनः सन्ताप (Occupational Psychosis)**–मर्टन डेवी द्वारा प्रस्तुत "व्यावसायिक मनः सन्ताप" की अवधारणा का प्रयोग करते हुए वर्णित करते हैं कि इसमें नियमों की कठोरता पाई जाती है। इस स्थिति के लिए वारनॉट ने व्यावसायिक विकृति (Occupation Deformation) शब्द का प्रयोग किया है।

3) **संरचनात्मक अत्यानुरूपता (Structural Hyperconformity)**–मर्टन का मत है कि नौकरशाही में कठोरता से नियमों का पालन करने से संगठन की संरचना में अत्यानुरूपता आ जाती है। अतः यह नई परिवर्तित परिस्थितियों से समायोजन नहीं कर पाती। इससे दक्षता घटती है एवं अयोग्यता बढ़ती है।

4) **लचीलेपन का अभाव (Lack of Flexibility)**–अधिकारी में दक्षता को लागू करने में लचीलेपन का अभाव, परिवर्तित परिस्थितियों में कई असामंजस्यों हेतु उत्तरदायी होता है। ऐसा माना जाता है कि कार्य को निपटाने अथवा समस्याओं का समाधान करने में अधिकारी अपने पूर्व प्रशिक्षण को ध्यान में रखता है। इस तरह वर्तमान परिस्थिति में उसका प्रशिक्षण उसकी सबसे बड़ी कमजोरी बन जाती है।

5) **साध्य की अपेक्षा साधन पर अधिक बल (More Emphasis on Means than Evidence)**–इस सिद्धान्त का एक अन्य दुष्प्रभाव यह है कि नौकरशाही के अन्तर्गत् अधिकारी भविष्य में इस सीमा तक नियमों का पालन करने लग जाता है कि किसी समय जो नियम साधन के रूप में थे, धीरे–धीरे वह स्वयं ही लक्ष्य अथवा साध्य बन जाते हैं।

6) **लकीर का फकीर (Sterotypes)**–नौकरशाही में अधिकारी नियमों के अनुसार कार्य करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो वह लकीर का फकीर बन जाता है। बदलती परिस्थितियों में वह सुगमता से समायोजन (अनुकूलन) करने के अयोग्य हो जाता है।

7) **लालफीता शाही (Red Tapism)**–लालफीता शाही का ही पर्याय नौकरशाही बनता जा रहा है इसमें औपचारिकता पर अत्यधिक जोर दिया जाता है जिसके कारण कोई भी निर्णय लेने में एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है जिससे निर्णय लेने में देरी भी होती है। औपचारिकता पर अत्यधिक विश्वास के साथ नियमों तथा विनियमों के पालन में दृढ़ संकल्प के कारण कार्य संचालन में रूकावट पहुँचती है फाइल को एक टेबल से दूसरी टेबल तक पहुँचने में महीनों लग जाते है। जबकि लोग अनेक बार मीलों दूरी करके मिन्नते क्यों न करते रहे। अधिकारी अपना रोब दिखाते रहते है। इसमें कार्यों की अनिवार्यता को महत्त्व नहीं दिया जाता है।

8) **औपचारिकता (Formality)**–नौकरशाही के अन्तर्गत् औपचारिकता के निर्वाह पर अधिक बल दिया जाता है। इससे समय एवं धन व्यर्थ होता है साथ ही कार्य भी प्रभावित होता है।

9) **अकुशलता (Inefficiency)**–वे तत्त्व जो नौकरशाही में सामान्यतः कार्य–कुशलता की वृद्धि में सहायक होते हैं, विशिष्ट मामलों अथवा उदाहरणों में अकुशलता उत्पन्न करते हैं। नौकरशाही के अन्तर्गत् अधिकारी इस कमी से अनभिज्ञ होते हैं तथा वह नियमों का जो अर्थ लगाते हैं उसे ही मानते हैं। यह नियम धीरे–धीरे लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक बन जाते हैं।

10) **नीरसता (Dullness)**–नौकरशाही में औपचारिकता एवं नियमबद्धता इतनी बढ़ जाती है कि वह जीवन को नीरस बना देती है। इससे कर्मचारी यंत्र के समान कार्य करता है इसके अन्तर्गत् कार्य नियमानुसार होता है, परिणामस्वरूप कार्य की गति धीमी पड़ जाती है।

11) **विरोधाभास से परिपूर्ण (Full of Contradictions)**–मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त में कुछ विरोधाभास भी हैं। उदाहरण के लिए–एक विशेषज्ञ जैसे–डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक व अन्य नौकरशाही के अन्तर्गत् किसी अधिकारी से स्वयं को छोटा नहीं मानेगा और न ही उसके आदेश का कठिनता से पालन करेगा।

12) **शोध पर आधारित नहीं (Not based on Research)**–मैक्स वेबर की नौकरशाही खोजपूर्ण नहीं है। उनके विचार उपकल्पना (Hypthesis) पर आधारित हैं। वेबर ने नौकरशाही के जिस "आदर्श–प्रारूप" की बात कही यदि किसी संगठन द्वारा उसकी सभी विशेषताओं को स्वीकार कर लिया जाए तब भी जरूरी नहीं कि वह नौकरशाही संगठन की कार्यकुशलता को बढ़ा दे।

13) **विभागवाद (Departmentalism)**–नौकरशाही के अन्तर्गत् विभिन्न कार्यों के संचालन के लिए भिन्न–भिन्न विभाग बने होते हैं। ये विभाग स्वयं को अन्य विभागों से स्वतंत्र एवं पृथक और अपने अधिकार क्षेत्र को अपना साम्राज्य मानने लगते हैं। जिससे सम्पूर्ण संगठन विभिन्न टुकड़ों में विभाजित हो जाता है।

14) **रूढ़िवादी (Conservative)**–नौकरशाही के अन्तर्गत् परम्परागत तरीके से कार्य को पूर्ण किया जाता है। अधिकारियों की एक निश्चित भाषा शैली होती है। अधिकारी प्रतिदिन एक ही प्रकार के कार्य करते हैं जिससे उनमें अपरिवर्तनशीलता उत्पन्न हो जाती है।

बर्ट्रेण्ड रसेल का कहना है कि नौकरशाही में प्रत्येक जगह निषेधात्मक मनोविज्ञान, जिसका झुकाव निरन्तर निषेधों की ओर होता है, को महत्त्व दिया जाता है। क्योंकि अधिकारी अथवा कर्मचारी इस प्रकार की मनोवृत्ति का विकास कर लेते हैं।

2.1.6. नौकरशाही का महत्त्व (Importance of Bureaucracy)

वर्तमान समय में नौकरीशाही प्रशासन का अटूट तथा अनिवार्य हिस्सा बन गया है। चाहे किसी भी प्रकार का शासन क्यों न हो समस्त सरकारों को इसकी जरूरत है। नौकरशाही के योगदान को हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझेगें।

1) **नौकरशाही आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में (Bureaucracy of Reference to Modernisation)**–वर्तमान विकासशील राज्य में नौकरशाही के द्वारा आधुनिकीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने में विशेष मदद मिलती है। आधुनिकीकरण केवल नवीन तकनीकी तथा परिवर्तन ही नहीं अपितु आधुनिक विकास में भी होता है। आधुनिकीकरण के साथ जब तक परिवर्तन को भरपूर महत्त्व नहीं दिया जायेगा। तब तक विकास की कल्पना सार्थक नहीं है। नौकरशाही विकास से जुड़ी नवीन आधुनिक योजनाओं को क्रियान्वित करता है। इस नवीन तकनीकी के आधार पर अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे वे अपराधियों के ऑकड़े तथा अभिलेख रखने के लिए पुलिस विभाग में कम्प्यूटर का प्रयोग कर कार्यों को समानुकूल सम्पन्न कर सके।

2) **नौकरशाही के संवैधानिक विकास के संदर्भ में (Bureaucracy in Reference to Constitutional Development)**–संवैधानिक शासन के विकास तथा कार्यों के संचालन में नौकरशाही का बहुत बड़ा योगदान है। लोकतंत्र में जनता का शासन होता है अतः ऐसी संभावनाएँ बनी रहती है कि जनप्रतिनिधि किसी भी विषय के गुण–दोष को जाने समझे बिना पक्षपातपूर्ण निर्णय ले लें। ऐसी अवस्था में नौकरशाही ही एक ऐसी संस्था है जो गुण–दोषों का विवेचन करके निष्पक्ष निर्णय लेती है एवं संवैधानिक सरकार की कार्यपालिका को निर्णय देती है। नौकरशाही संवैधानिक संशोधन हेतु अनेक प्रकार के ऑकड़े एवं सूचनाएँ प्रदान करती है एवं संशोधन किए गए संविधान के अनुरूप सरकार के निर्देशों पर शासन व्यवस्था का संचालन करती है। इसीलिए नौकरशाही की भूमिका संवैधानिक विकास में सकारात्मक होती है।

3) **नौकरशाही आर्थिक विकास के संदर्भ में (Bureaucracy in Reference to Economic Development)**–नौकरशाही आर्थिक विकास हेतु केवल आवश्यक तथा अनुकल परिस्थितियों का ही निर्माण नहीं करती अपितु उन्हें सुदृढ़ और सशक्त भी बनाती है। यह आर्थिक उत्पादन के सामान्य तथा विशेष उद्देश्यों के निर्धारण में मदद प्रदान करती है तथा उसके अनुरूप आर्थिक साधनों का उपयोग कर आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

4) **नौकरशाही आगत कार्यों के संदर्भ में (Bureaucracy in Reference to Input Functions)–प्रेस्थस के मत से**– नौकरशाही एक नमूने पर कार्यों तथा व्यक्तियों का व्यवस्थित संगठन है। जो सामूहिक प्रयासों के उद्देश्यों को अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से प्राप्त कर सकती है। नौकरशाही के विभिन्न अभिकरण हित–स्पष्टीकरण, हित–समूहीकरण के साथ–साथ राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक संचार में भी महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है। इनके पास ऐसे साधन तथा मार्ग उपलब्ध होते है, जो लोकहित के कार्य को सरकार के पास अनिवार्य तथा महत्त्वपूर्ण बताकर प्रस्तुत करने में सहयोगी होते हैं।

5) **नौकरशाही के निर्गत कार्यों के संदर्भ में (Bureaucracy in Reference to Output Functions)**–वर्तमान समय में राज्यों के प्रशासन में नियमों का कार्यान्वयन एक ऐसी कार्य व्यवस्था है जिस पर नौकरशाही का पूर्ण अधिकार होता है। वर्तमान में सरकारों द्वारा समय–समय पर नवीन विधियों तथा कानूनों का निर्माण किया जाता

है। राज्य के कल्याण हेतु प्रशासन द्वारा नये निर्णय लिए जाते है। वर्तमान समय की नौकरशाही सरकार के तीनों निर्गत कार्य नियम, बनाना, प्रस्तुत करना तथा नियम अधिनिर्णयन का सम्पादन करती है।

6) **नौकरशाही आधुनिक राज्य के अनिवार्य साधन के रूप में (Bureaucracy as Essential Means of the Modern State)–मैक्स बेवर के अनुसार**–"किसी भी समय समाज के लिए नौकरशाही आवश्यक है। चाहे शासन किसी भी प्रकार का क्यों न हो, देश की वाह्य और आंतरिक स्थिति कुछ भी क्यों न हो, नौकरशाही की अनिवार्यता से इंकार नहीं किया जा सकता है। विशेषतया आधुनिक राज्यों में तो नौकरशाही समाज के मेरूदण्ड के रूप में स्थापित हो चुकी है। इस प्रकार नौकरशाही के बिना प्रशासन जीवन शून्य बन जायेगा।"

2.1.7. नौकरशाही के दोषों को दूर करने के सुझाव (Suggestions of Remove the Defects of Bureaucracy)

नौकरशाही एक ऐसी व्यवस्था है जिसे न तो समाप्त किया जा सकता तथा न इसके बिना प्रशासन का कार्य क्रियान्वित किया जा सकता है। नौकरशाही में बुराई तो है लेकिन इसकी आवश्यकता भी है। ऐसी स्थिति में इसमें व्याप्त दोषों को दूर किया जाना चाहिए। दोषों को दूर करने हेतु निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए।

i) नौकरशाही पर नियंत्रण
ii) सत्ता का विकेन्द्रीकरण
iii) जनता के प्रति उत्तरदायित्व
iv) कुशल कर्मचारियों एवं अधिकारियों की भर्ती
v) जनता एवं प्रशासनिक अधिकारियों के बीच सौहार्दपूर्ण व्यवहार
vi) आर्थिक एवं सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व समाज के विभिन्न वर्गों के लिए आवश्यक

जनता समाज एवं देश की रीढ़ है। यदि हम जनता के हितों को नजरदांज करते है तो उनका मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक ह्रास होगा। यह देश के विकास में बाधक बन जाएगा। इसीलिए इसमें सुधार हेतु नौकरशाह, नौकरशाही तथा राजनीतिक कार्यपालक के साथ–साथ असहाय जनता के हितों को ध्यान में रखकर और सामंजस्य स्थापित करके ही देश को सर्वोच्चम शिखर पर स्थापित किया जा सकता है। भ्रष्टाचार को समाप्त करके ही देश का विकास किया जा सकता है।

2.2. एम. पी. फोलेट के विचार (IDEA OF M. P. FOLLETT)

2.2.1. परिचय (Introduction)

एम. पी. फोलेट पहली महिला प्रशासनिक विचारक थीं। समयावधि की दृष्टि से वह शास्त्रीय युग की थीं, किन्तु अपने सिद्धान्त की विषयवस्तु की दृष्टि से वह अपने समय से बहुत आगे थी। उन्होंने उन विचारों पर चर्चा की है जिन पर बाद में मानवतावादी काल और समकालीन काल के दौरान चर्चा हुई। वह संगठन के शास्त्रीय सिद्धान्तों को प्रकृति में यांत्रिक होने के कारण खारिज किया करती थी। उसे मानवतावादी काल या व्यवहार काल का अग्रदूत माना जा सकता है। अपने समय के सिद्धान्तकारों के विपरीत वह एक

शिक्षाविद थीं न कि अभ्यासकर्ता। वह राजनीति विज्ञान की भी व्याख्याता थीं। उनका सिद्धान्त उनके अकादमिक शोध का उप–उत्पादक या जो माध्यमिक और प्राथमिक दोनों स्रोतों पर आधारित था उनके कई योगदान पथ–प्रदर्शक के रूप में कार्य करते है। उन्हें शास्त्रीय सिद्धान्तकारों और भविष्य के सिद्धान्तकारों के बीच की एक कड़ी के रूप में देखा जाता रहा है।

अमेरिका के बोस्टन शहर में सन् 1868 ई. में इनका जन्म हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बोस्टन की थायर अकादमी (Thayer Academy) में हुई। इसके पश्चात फोलेट रेडक्लिफ कॉलेज कैम्ब्रिज में पढ़ी। जिसे महिलाओं के लिए हार्वर्ड एनेक्स भी कहा जाता था। फोलेट की रुचि इतिहास, राजनीति शास्त्र, कानून और दर्शनशास्त्र पढने में अधिक थी। 1912 में फोलेट बोस्टन के पदस्थापना ब्यूरो समिति की सदस्या बन गई। इस प्रकार वे उद्योग से सम्पर्क में आई। फोलेट ने इसके प्रबन्धन पर लिखकर अपने विचार प्रस्तुत किए। फोलेट की अन्तर्दृष्टि इतनी तेज थी कि उन्होनें जो विचार काफी समय पहले ही प्रकट कर दिए थे वे 1930 के बाद हार्थोन प्रयोगों से पुष्ट हुए। इसी कारण वे प्रबन्ध की भविष्यवक्ता कहलाती है। फोलेट ने विभिन्न पुस्तकों की रचना की।

उनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार है–

1) प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष [The Speaker of the house of Representatives (1896)]।
2) नया राज्य [The new States (1918)]।
3) द क्रिएटिव एक्सपीरियंस [The Creative Experiences (1924)]।
4) डायनेमिक एडमिनिस्ट्रेशन– दि कलेक्टेड पेपर्स ऑफ मेरी पार्कर फोलेट (Dynamic Administration: The collected papers of Mary parker follet)।

फोलेट ने इतनी सारी पुस्तकें लिखी है कि यह सम्भव नहीं है कि उनके सभी विचारों को जाना जा सके। फोलेट द्वारा प्रकाशित उनकी प्रथम रचना "दी स्पीकर ऑफ द हाउस ऑफ रिप्रजेन्टेटिव्स" है। जो 1896 में प्रकाशित हुई। यह इतनी उत्कृष्ट रचना थी कि अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इसे सभी को पढ़ने के लिए अनिवार्य बताया। तथा उनकी पुस्तक "द न्यू स्टेट्स" प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के माध्यम से उन्हें बहुत अधिक ख्याति और सम्मान प्राप्त हुआ। साथ ही साथ बहुलतावाद की वकालत करने वालों के रूप में इन्हें पहचाना गया। इसी प्रकार विभिन्न पुस्तकें लिखकर फोलेट ने अपने विचारों को प्रस्तुत किया।

2.2.2. मैरी फोलेट के सिद्धान्त (Mary Follett's Principles)

मैरी फोलेट द्वारा समन्वय के चार मुख्य सिद्धान्त निम्नानुसार हैं–

1) **प्रारंभिक चरण का सिद्धान्त**–यह सिद्धान्त प्रबंधन की प्रक्रिया की प्रारम्भ में समन्वय कार्य को विकसित करने की आवश्यकता पर बल देता है। प्रबंधन प्रक्रिया में समन्वय गतिविधियों को नियोजन के चरण से प्रारम्भ करना चाहिए। यदि समन्वय प्रारंभिक चरण से प्रारम्भ होता है, तो यह सर्वोत्तम योजनाओं को विकसित करने और उन्हें सफलतापूर्वक लागू करने में सहायता करता है। जब प्रबंधन प्रक्रिया के प्राथमिक चरण (नियोजन) से समन्वय कार्य को शामिल किया जाता है, तो प्रबंधन के सभी कार्यों के प्रदर्शन में सुधार किया जा सकता है और वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रभावी समन्वय प्रबंधन को अपने पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों को एक कुशल तरीके से प्राप्त करने में सहायता करता है।

2) **सत्ता का सिद्धान्त**–यह सिद्धान्त कहता है कि समन्वय कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया होती है। समन्वय को संगठन के जन्म से उत्तेजित किया जाना चाहिए और संगठन के विद्यमान होने तक संगठनात्मक कार्यों के साथ लगातार शामिल होना चाहिए। प्रबंधन प्रक्रिया के सभी चरणों अर्थात् नियोजन, आयोजन, निर्देशन और नियंत्रण में समन्वय लगातार किया जाना चाहिए।

3) **प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धान्त**–यह सिद्धान्त बताता है कि प्रत्येक प्रबंधक को अपने अधीनस्थों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। यह प्रबंधक और उसके अधीनस्थों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध सुनिश्चित करता है। यह श्रमिकों और प्रबंधकों के मध्य समन्वय स्तर में सुधार करता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता और दक्षता में अधिक वृद्धि होती है। प्रत्यक्ष सम्पर्क गलत संचार व भ्रम को दूर करता है और प्रबंधकों और अधीनस्थों के मध्य टकराव की सम्भावना को कम करता है।

4) **पारस्परिक सम्बन्धों का सिद्धान्त**–प्रबंधन द्वारा लिए गए निर्णय और उन निर्णयों के आधार पर कर्मचारियों द्वारा किए गए कार्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है। इस प्रकार, एक निर्णय के जवाब में एक कर्मचारी या विभाग द्वारा की गई कार्यवाही अन्य कर्मचारियों और विभागों को भी प्रभावित करती है। निर्णयों को लागू करने से पहले विभिन्न विभागों और व्यक्तियों पर सभी निर्णयों के प्रभावों का विश्लेषण करना चाहिए। इसे 'पारस्परिक सम्बन्धों का सिद्धान्त' कहा जाता है। इस सिद्धान्त का पूरी लगन से अभ्यास किया जाना चाहिए ताकि पूरे संगठन में समन्वय स्थापित किया जा सके।

2.2.3. मैरी फोलेट के प्रशासनिक विचार (Administrative Ideas of Mary Follett)

यहाँ हम फोलेट के प्रशासनिक विचारों को निम्नलिखित प्रकार से समझेंगे–

1) **रचनात्मक संघर्ष (Constructive Conflict)**–संघर्षो के रचनात्मक पहलुओं पर विचारों के रूप में मैरी पार्कर फोलेट का योगदान सर्वाधिक रहा है। यहाँ पर संघर्षों से अभिप्राय संगठन में उत्पन्न संघर्षो से है। संघर्ष एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति या इकाई किसी उद्देश्य के लिए दूसरे को रोकने का प्रयास करती है जिनके परिणामस्वरूप दूसरा व्यक्ति अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में या अपने हितों के संवर्द्धन में सफल नहीं हो पाता है। लक्ष्यों की विविधिता, साधनों की सीमितता, व्यक्तियों में भेद आदि के कारण संगठनों में संघर्षों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सामान्यतया संघर्षों को नकारात्मक रूप में देखा जाता हैं परन्तु फोलेट ने संघर्ष के रचनात्मक पहलुओं की ओर प्रबन्ध का ध्यान आकर्षित किया।

मैरी पार्कर फोलेट रचनात्मक संघर्ष का विचार रखती है और संघर्षो को संगठन की क्रिया में एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है। उनका ऐसा मत है कि संघर्ष अच्छा व बुरा दोनो ही नहीं है। बल्कि यह एक सामान्य घटना है जिसको बिना किसी नैतिकता पूर्ण निर्णय और भावना के स्वीकार कर लेना चाहिए। "डायनेमिक एडमिनिस्ट्रेशन" में फोलेट ने कहा है कि संघर्ष केवल मतभेदों की उपस्थिति को दर्शाता है यह कोई युद्ध की स्थिति नहीं होती। ये मतभेद राय से सम्बन्धित या हितों से सम्बन्धित हो सकते हैं राय और हितों से सम्बन्धित मतभेद संगठन में कर्मचारी नियोक्ता और निदेशकों के मध्य उपस्थित हो सकती है। क्योंकि व्यक्तिगत मतभेद कभी समाप्त नहीं किये जा सकते है। ठीक इसी प्रकार संगठनों से संघर्षों को भी समाप्त नहीं किया जा सकता। अगर ऐसी परिस्थिति हो कि संघर्ष अपरिहार्य हो और टाला न जा सके तो इसकी आलोचना करने और इसे बुरा बताने

के बजाय इसका सकारात्मक उपयोग करने का प्रयास करना चाहिए। यह फोलेट के रचनात्मक संघर्ष का विचार था। फोलेट कहती है, "हर चमक घर्षण से पैदा होती है। जब हम वायलिन पर घर्षण पैदा करते हैं तभी संगीत प्राप्त होता है और जब हमने घर्षण से अग्नि का आविष्कार किया तो हमने असभ्य अवस्था को छोड़ दिया।" फोलेट ने संघर्षो को सुलझाने एवं समाप्त करने के लिए तीन विधियों **प्रभुत्व, समझौता** तथा **एकीकरण** को बताया। जिनका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है–

i) **प्रभुत्व (Domination)**–फोलेट ने प्रभुत्व को संघर्ष के समाधान हेतु प्रथम तरीके के रूप में बताया है। प्रभुत्व से तात्पर्य किसी एक पक्ष का दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त कर लेने से है। संघर्ष समाधान का सबसे सरल विधि प्रभुत्व को ही समझा जाता है। किन्तु यह तरीका कुछ समय के लिए ही कारगर है क्योंकि इस तरीके में किसी एक पक्ष का दूसरे पक्ष पर जीत के माध्यम से प्रभुत्व स्थापित होता है तो यह सामान्य बात है कि जीत हासिल करने के लिए एक पक्ष दूसरे पक्ष पर दबाव बल प्रयोग तथा दूसरे के हितों का अतिक्रमण करेगा। अतः यह समाधान का कोई स्थाई तरीका नहीं हो सकता है क्योंकि हारने वाला व्यक्ति सदैव बदला लेने के उद्देश्य से कार्य करता है। संघर्ष को प्रभुत्व थोड़े समय के लिए रोक तो सकता है किन्तु समाप्त नहीं कर सकता।

ii) **समझौता (Compromise)**–समझौता संघर्ष समाधान का ऐसा तरीका है जिसमें प्रत्येक पक्ष अपने कुछ माँगों को छोड़ देता है तथा इस तरह शान्ति की स्थापना के उद्देश्य से वह अपनी कुछ माँगों को छोड़कर संघर्ष से समझौता कर लेता है। प्रभुत्व की तुलना में संघर्ष के समाधान में समझौता अधिक प्रभावी पाया जाता है। क्योंकि समझौते के दौरान किसी पक्ष को दबाया नहीं जाता बल्कि वह अपनी स्वेच्छा से कुछ माँगों का परित्याग कर देता है। किन्तु दोनों ही पक्ष को अपनी इच्छाओं के विरुद्ध कुछ त्यागना पड़ता है। अतः समझौते को कोई पसन्द नहीं करता मजबूरी में किए जाते है। और समझौता तभी पूर्ण रूप से सफल हो पाता है जब दोनों पक्ष ईमानदारी से समझौते को निभाये एवं सम्मान करें, जो कि बहुत कठिन होता है।

iii) **एकीकरण (Integration)**–संघर्ष समाधान के तीसरे तरीके के रूप में फोलेट एकीकरण का संकेत देती है। फोलेट संघर्ष समाधान के रूप में सबसे सरल, प्रभावी एवं सन्तोषजनक एकीकरण को ही मानती है। एकीकरण के अन्तर्गत दोनों पक्षों की इच्छाओं को एकत्रित कर दिया जाता है और किसी भी पक्ष को अपनी इच्छाओं को त्यागना नहीं पड़ता। फोलेट समझौते से ज्यादा प्रभावी एकीकरण को मानती है क्योंकि समझौते में कुछ भी नया रचित नहीं किया जाता बल्कि यह वर्तमान स्थिति से ही सम्बन्ध रखता है जबकि एक एकीकरण कुछ नया बनाता है, आविष्कार करने को भी प्रेरित करता है तथा नए मूल्यों को उत्पन्न किया जा सकता है। एकीकरण स्थाई समाधान प्रदान करने का प्रयास करता है। यदि हम समझौते के माध्यम से संघर्ष के समाधान का प्रयास करते है तो संघर्ष दूसरा रूप लेकर पुनः हमारे सामने आ सकता है। क्योंकि व्यक्ति को अपनी कुछ इच्छाओं का परित्याग करना पड़ता है। फोलेट ने एकीकरण के विभिन्न लाभों को तो देखा है साथ ही साथ वह इसकी प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों को भी नजरअंदाज नहीं किया। हर तरह के संघर्ष का समाधान एकीकरण से सम्भव नहीं हो सकता। फोलेट ने उदाहरण के माध्यम से बताया कि जब दो व्यक्ति एक ही महिला से विवाह करना चाहे तो वहाँ एकीकरण के लिए कोई स्थान नहीं होता। कुछ परिस्थितियों में एकीकरण असम्भव होता है।

फिर भी इसके लाभों के कारण वह प्रभुत्व और समझौते से अधिक प्रभावी और स्थाई तरीका है। फोलेट एकीकरण प्राप्त करने के निम्नलिखित चरणों को बतायी हैं–

a) एकीकरण में प्रथम चरण के रूप में फोलेट बताती है कि सर्वप्रथम हमें अपने मतभेदों को स्पष्ट करना चाहिए। जब तक हमें ये न पता हो कि मतभेद क्या है तब तक हम एकीकरण की आशा नहीं कर सकते। इसलिए सबसे पहले हमें संघर्ष में निहित वास्तविक मुद्दों का स्पष्ट पहचान करना अनिवार्य है।

b) चरण के दूसरे स्तर पर हमें संघर्ष की समस्या के समग्र को कुछ भागों में विभाजित करना पड़ता है। इसके लिए सबसे अनिवार्य है कि हम संघर्ष में व्याप्त मांगों को पहचाने और उनको संघटक भागों में वितरित करें। इस चरण में जिन मांगों की पूर्ति आवश्यक होती है उसे अन्य मांगों से अलग कर दिया जाता है। इससे हम समस्या से सम्बन्धित मुख्य मांगों तक ही अपने आपको केन्द्रित कर पाते है जो कि संघर्ष समाधान के लिए आवश्यक होती है।

c) संघर्ष समाधान के उद्देश्य से संघर्ष का पूर्वानुमान इसका तीसरा चरण है। इसमें संघर्ष को भिन्न भिन्न तरीकों से जवाब दिया जाता है। फोलेट केवल प्रत्युत्तरों के पूर्वानुमान को ही पर्याप्त नहीं मानती अपितु उनके निर्माण की भी वकालत करती है। प्रत्युत्तर रेखीय या चक्रीय हो सकते है। चक्रीय प्रत्युत्तर संघर्ष पर अधिक अच्छे से प्रकाश डालता है। फोलेट का ऐसा मत है कि चक्रीय व्यवहार (Circular Behaviour) रचनात्मक संघर्ष की कुँजी है।

इस प्रकार फोलेट के विविध आयामों का उल्लेख करते हुए रचनात्मक संघर्ष का विचार प्रस्तुत करती है और संघर्षो के रचनात्मक उपयोग की वकालत करती है।

2) **संगठन में आदेश (Order in Organisation)**–आदेश देना संगठन का अति महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। फोलेट इस संगठन में आदेश देने के विभिन्न पहलुओं का परीक्षण करती है तथा "निर्वैयक्तिक आदेश" का विचार प्रस्तुत करती है। वे इस बारे में "स्थिति के नियम" का भी प्रतिपादन करती है। फोलेट आदेश देने के चार महत्त्वपूर्ण चरण बताती है जो निम्नलिखित हैं–

प्रथम चरण–एक सचेत अभिवृत्ति जो उन सिद्धान्तों को व्यवहार में ला सके जिनके जरिए किसी मामले पर कार्यवाही करना सम्भव है।

दूसरा चरण–एक जिम्मेदाराना अभिवृत्ति जिससे यह तय हो कि किन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

तीसरा चरण–एक प्रयोगात्मक अभिवृत्ति जिससे प्रयोग किए जाएँ और परिणाम देखे जाएँ।

चतुर्थ चरण–परिणामों को एकत्रित करना।

प्रायः लोग आदेश देने के अर्थ को बिना जाने ही आदेश देते है। सबसे पहले तो आदेश देने वाले को उन सिद्धान्तों की जानकारी होनी आवश्यक है जिनके आधार पर आदेश दिए जाते है। आदेश तभी देना चाहिए जब इन सिद्धान्तों को पहचान लिया जाए उसके बाद ही व्यक्ति को उनके अनुसार ही आदेश देना चाहिए। यह भी आवश्यक नहीं है कि दिए गए आदेश का पालन किया जाएगा। आदेश का पालन कई कठिनाइयों से घिरी है। कई बार आदतवश मजबूर व्यक्ति आदेशों का पालन नहीं करते क्योंकि वे अपनी आदतों के विपरीत आदेश पालन नहीं करना चाहते।

आदेश देने से पहले नियोक्ता को आदेशों का पालना सुनिश्चित करने के लिए कर्मचारियों की 'आदतों' के निर्माण के साधनों और तरीकों पर विचार करना चाहिए। इसके लिए फोलेट ने निम्नलिखित सुझाव दिए है–

i) अधिकारियों को चाहिए कि वे नई विधियों की वांछनीयता देख लें।
ii) अधिकारी नई विधियों को अपना पाएँ इसके लिए ऑफिस के नियमों में परिवर्तन होना चाहिए।
iii) कुछ व्यक्तियों को पहले से नई विधियाँ अपनाने के लिए विश्वास में ले लेना चाहिए ताकि एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके।
iv) अभिव्यक्ति व्यवहार को तीव्र बनाना चाहिए। यह आदेशों की स्वीकृति का रास्ता तैयार करता है।

फोलेट के अनुसार आदेशों का प्रत्युत्तर उन स्थानों और परिस्थितियों पर निर्भर रहता है जिनमें आदेश दिए जाते है। फोलेट कहती हैं, "किसी आदेश के प्रति अनुकूल प्रत्युत्तरों की शक्ति उस दूरी से व्युत्क्रमानुपाती (Inverse ration) होती है जो आदेशों द्वारा तय की जाती है।" अर्थात यदि आदेश लम्बी दूरी तय करके किसी व्यक्ति तक पहुँचता है तो उसके अनुकूल प्रत्युत्तर की शक्ति कम हो जाती है यानि कि उसके पालन की सम्भावना कम हो जाती है। इसी प्रकार आदेश देने का तरीका भी आदेशों का पालन करने को प्रभावित करता है।

3) **नेतृत्व (Leadership)**–नेता वह है जो स्थिति को समग्रता से समझ सके और एक स्थिति से दूसरी स्थिति में सफलतापूर्वक जा सके। फोलेट का कहना है कि संगठन के भीतर नेतृत्व एक महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि संगठन एक सामान्य लक्ष्य की दिशा में काम करने वाले व्यक्तियों के समूह के अलावा और कुछ नहीं है। नेता का कार्य लक्ष्य प्राप्ति के लिए समूह को सफलतापूर्वक प्रभावित करना है। नेतृत्व के तीन अलग–अलग प्रकार है–

i) **पद के आधार पर नेतृत्व (Leadership by Position)**–एक व्यक्ति संगठनात्मक पदानुक्रम के अन्दर एक श्रेष्ठ स्थान पर कब्जा करने के आधार पर एक नेता के रूप में कार्य करता है। इस दृष्टिकोण को प्रशासन के शास्त्रीय सिद्धान्तकारों द्वारा भी बढ़ावा दिया गया है। वरिष्ठ निर्णय लेते है और अधीनस्थ उसका अनुसरण करते है। जिस व्यक्ति के पास कार्य करने का कौशल या क्षमता है वह एक नेता के रूप में कार्य करने में सबसे सक्षम है और यह आश्वयक नहीं कि वरिष्ठ के पास हमेशा अपेक्षित कौशल हो। इस प्रकार उन्होंने पद के आधार पर नेतृत्व की अवधारणा को खारिज कर दिया है।

ii) **व्यक्तित्व द्वारा नेतृत्व (Leadership by Personality)**–यह नेतृत्व की एक शैली है। जहाँ कार्य से सम्बन्धित उपयुक्त कौशल या क्षमता वाला व्यक्ति नेता के रूप में कार्य करता है। फोलेट सैद्धान्तिक रूप से इस प्रकार के नेतृत्व से सहमत है। लेकिन फोलेट इस तरह के नेतृत्व में कुछ परिचालन कठिनाइयों पर भी प्रकाश डालती है। वह व्यक्तित्व के आधार पर नेतृत्व को अस्वीकार करती है लेकिन कार्य के आधार पर नेतृत्व को बढावा देती है।

iii) **कार्य द्वारा नेतृत्व (Leadership by Function)**–कार्य द्वारा नेतृत्व पद द्वारा नेतृत्व और व्यक्तित्व द्वारा नेतृत्व का एक संयोजन है। फोलेट का मानना है कि यह एक तरह का नेतृत्व है जो सर्कुलर रिस्पॉन्स के सिद्धान्त पर आधारित है। यह सहयोगी या सहभागी दृष्टिकोण पर आधारित है। पद के आधार पर नेतृत्व का लाभ यह है कि यह अनुशासन सुनिश्चित करता है और व्यक्तित्व के आधार

पर नेतृत्व का भी लाभ यह है कि व्यक्ति के पास हमेशा अपेक्षित कौशल रहेगा। नेतृत्व न केवल पद के गुण के कारण मौजूद होता है, बल्कि व्यक्ति के पास मौजूद क्षमता और कौशल के कारण भी होता है। संगठन के भीतर ज्ञान साझा करने का दृष्टिकोण अपनाकर नेता की क्षमता और ज्ञान की कमी को पूरा किया जा सकता है।

4) **शक्ति और अधिकार (Power and Authority)**–फोलेट का कहना है कि शक्ति कार्य पूरा करने की क्षमता है। उनके अनुसार, प्राधिकरण एक निहित शक्ति है अर्थात् कानूनी रूप से सौंपी गई शक्ति है। यह केवल शक्ति विकसित करने और प्रयोग करने का अधिकार है। वृद्धिकरण को सार्थक बनाने के लिए उसे कार्यात्मक, बहुलवादी और संचयी होना चाहिए। शक्ति प्रदान करना या शक्तियों का प्रयोग करना दो अलग चीजें है। बहुलवाद से उनका अभिप्राय यह है कि प्राधिकार का प्रयोग मिल–जुलकर किया जाना चाहिए। न कि अलग–अलग होकर।

संचयी का अर्थ है कि दूसरों की क्षमता का उपयोग करके अधिकार का सार्थक प्रयोग किया जाना चाहिए। यह भी कहती है कि प्राधिकरण वस्तुनिष्ठ है और जिम्मेदारी व्यक्तिपरक है। संगठन के भीतर जिम्मेदारी सौंपी जाती है अधिकार नहीं। क्योंकि अधिकार कार्य में निहित होता है। और कार्य के साथ रहता है। प्राधिकरण का प्रत्योजन एक मिथ्या नाम है। एक निहित शक्ति होने के कारण प्राधिकरण उद्देश्यपूर्ण रहता है और बदलता नहीं है। जिम्मेदारी संगठन के भीतर व्यक्ति का अपेक्षित कर्तव्य होने के कारण नौकरी में धारणा या विचार प्रक्रिया के समावेश के कारण भिन्न होती है। संगठन के भीतर जिम्मेदारियाँ सौंपी जाती है तो सम्बन्धित प्राधिकारी स्वचालित रूप से सौंपे गए व्यक्ति के पास चला जाता है। उत्तरदायित्व कार्यात्मक, बहुलवादी और संचयी भी होना चाहिए।

5) **समन्वय (Coordination)**–समन्वय संगठनात्मक गतिविधियों का सामंजस्य है। समन्वय स्थापित करने के लिए फोलेट ने चार रणनीतियाँ प्रदान की है।

i) **प्रत्यक्ष सम्पर्क के माध्यम से समन्वय (Co-ordination through Direct Contact)**–संगठन के भीतर, समन्वय की समस्या में शामिल सम्बन्धित पदों के मध्य यथासम्भव प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

ii) **प्रारम्भिक चरण में समन्वय (Co-ordination at an Early Stage)**–नीतियाँ, कानून या नियम और विनियम बनाते समय, सम्बन्धित संस्थाओं या पदाधिकारियों को शामिल किया जाना चाहिए। इससे नीतियाँ और कानून अधिक यथार्थवादी बनेंगे और इससे कानूनों को कई व्यवस्थाओं का सामना नहीं करना पड़ेगा।

iii) **एक सतत प्रक्रिया के रूप में समन्वय (Co-ordination as a Continuous Process)**–संगठन के भीतर समन्वय की समस्याओं को देखने और तदुनसार उपाय सुझाने के लिए एक विशेष इकाई लगातार स्थापित की जानी चाहिए उदाहरण– योजना कार्यान्वयन मंत्रालय।

iv) **सभी सम्बन्धित व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध के माध्यम से समन्वय (Co-ordination through the Reciprocal Relationship of all Concerned)**–समन्वय की समस्या को हल करने की प्रक्रिया में उन सभी को शामिल किया जाना चाहिए जो समन्वय की समस्या से चिंतित है।

6) **नियन्त्रण (Control)**–मेरी पार्कर फोलेट ने लोक–प्रशासन में उत्कृष्ट योगदान दिया। फोलेट उन विचारकों में से थी जो लोक–प्रशासन और निजी–प्रशासन में

कोई भेद न करते हुए इन्हें एक समान बताती है। नियंत्रण संगठन का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। सभी सिद्धान्तकारों ने इसे संगठन के एक प्रमुख सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु यहाँ पर फोलेट का विचार अन्य विचारकों से भिन्न है। अन्य शास्त्रीय विचारकों के विपरीत फोलेट "तथ्य नियंत्रण" के बजाय "मानव नियंत्रण" पर अधिक जोर देती है और "अधि–आरोपित नियंत्रण" के स्थान पर "सह–सहबन्धात्मक नियंत्रण" की वकालत करती है। क्योंकि तथ्य स्थिति के अनुसार बदलते रहते है इसलिए नियंत्रण को तथ्यों के ऊपर निर्भर होना चाहिए न कि अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण होना चाहिए।

2.2.4. फोलेट के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evalution of Follet's Ideas)

फोलेट का प्रबन्धन का योगदान निःसन्देह ही अति विशिष्ट है। उनके विचारों में मौलिकता और नवीनता पायी जाती थी। उनके विचार प्रशासन के लिए लाभदायक है परन्तु आलोचनाओं से बचे नहीं है। फोलेट के विचारों को अति–आदर्शवादी मान कर उसकी आलोचना की जाती है। साथ ही उनके विचार प्रबन्धकीय अनुभव और वैज्ञानिक अध्ययनों के परिणाम न होना भी प्रमुख आलोचना है। कुछ विचारक फोलेट को शास्त्रीय विचारक के रूप में नहीं मानते है। जबकि अन्य उनकी इस बात पर आलोचना करते है कि उनके विचारों में कुछ भी शास्त्रीय" नहीं है। फोलेट की यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि उन्होने संगठनों के प्रबन्ध में सामाजिक पहलुओं को नजरअंदाज किया है। **डी. ग्विशियानीह** लिखते है कि "उन्होने समझ की कमी गतलफहमियों तथा व्यक्तिगत गुणों में भिन्नता के कारण उत्पन्न मनोवैज्ञानिक संघर्षो पर ही ध्यान दिया है और सभी सामाजिक और वर्गीय सम्बन्धों को एक तरफ फेंक दिया।"

एकीकरण पर फोलेट के विचारों को भी भ्रामक कहकर ग्विशियानीह उनकी आलोचना करते है। इन आलोचनाओं के बावजूद प्रशासनिक विचारधारा के रूप में उनका योगदान श्रेष्ठ और पूर्वानुमान करने वाला माना जा सकता है। हेनरी मेटकॉफ और लिंडल उरविक लिखते है कि–"उनकी अवधारणाएँ अपने समय में काफी आगे थीं। वे आज की विचारधारा से भी आगे है। उनके सुझाव उस व्यक्ति के लिए सोने की खदान के समान है जिनकी रुचि किसी उद्यम को चलाने में मानवीय सहयोग की स्थापना और उनके संधारण की समस्याओं में होती है।"

2.3. मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त– एल्टन मेयो (HUMAN RELATIONS THEORY- ELTON MAYO)

2.3.1. परिचय (Introduction)

संगठन के शास्त्रीय सिद्धान्त की कमियों के खिलाफ 1930 में मानव सम्बन्ध सिद्धान्त का उद्‌भव हुआ। फेयोल, टेलर, मैक्स वेबर, गुलिक, आदि शास्त्रीय विचारकों ने संगठन के औपचारिक पक्ष पर विचार किया और संगठन में मानव तत्व की अवहेलना की। अतः उन्होंने संगठन के केवल यान्त्रिक पक्ष पर ही बल दिया और संगठन में मानव के सामाजिक–मनोवैज्ञानिक पक्षों नहीं दिया गया। शास्त्रीय सिद्धान्त की इस कमी को दूर करने के लिए मानव सम्बन्ध सिद्धान्त का जन्म हुआ। मानव–सम्बन्ध सिद्धान्त को अनौपचारिक सिद्धान्त, नव शास्त्रीय सिद्धान्त, सामाजिक–आर्थिक सिद्धान्त के नाम से भी

जाना जाता है। एल्टन मेयो ने इसे चिकित्सकीय (डॉक्टरी) विधि दृष्टिकोण का नाम दिया है। संगठन में कार्यरत लोगों के बीच व्याप्त अनौपचारिक सम्बन्धों की व्याख्या करने वाले यह सिद्धान्त संगठन के कानूनी तत्वों से नहीं बल्कि नैतिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों से सम्बन्ध रखता है। सह सिद्धान्त व्यक्तियों तथा उनकी अभिप्रेरणाओं पर बल देता है। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के ऑस्ट्रेलियाई मनोवैज्ञानिक एल्टन मेयो ने मानव सम्बन्ध सिद्धान्त विकसित किया। उन्होंने प्रयोगों की एक श्रृंखला आयोजित की, जिसे अब हॉथोर्न अध्ययन या हॉथोर्न प्रयोग के रूप में जाना जाता है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि लोगों की अनूठी प्राथमिकताएँ होती हैं और उन्हें मशीनों की तरह नहीं माना जा सकता। मानव सम्बन्ध शब्द से तात्पर्य अधिकतम श्रमिकों एवं नियोक्ता के सम्बन्धों से है जो विविध मानदण्डों द्वारा नियमित नहीं होते हैं। ये उनके सम्बन्धों के नैतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं से सम्बन्धित होते हैं।

2.3.2. मानवीय सम्बन्ध का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definition of Human Relation)

मानवीय सम्बन्ध से अभिप्राय किसी संगठन में नियोक्ताओं एवं कार्मिकों के मध्य अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने एवं उनके हितों को सामान्य हितों के साथ एकीकृत करने से है। नियोक्ताओं एवं कार्मिकों के सम्बन्ध नियम एवं कानून द्वारा नियंत्रित नहीं होते बल्कि उनका सम्बन्ध नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक तत्त्वों से सम्बन्धित है। मानवीय सम्बन्धों को कई विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है।

ये परिभाषाएँ निम्नवत् हैं–

कीथ डेविस के अनुसार, "मानवीय सम्बन्ध से आशय कार्य पर व्यक्तियों के एकीकरण से है जिससे वे आर्थिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक संतुष्टि प्राप्त करते हुए सहयोगपूर्वक उत्पादन कार्य करने के लिए अभिप्रेरित होते हैं।"

जोसेफ एल. मैसी के अनुसार, "मानवीय सम्बन्ध एक दी हुई स्थिति में व्यक्तियों के अभिप्रेरण की एक क्रिया है जो उद्देश्यों में सन्तुलन स्थापित करके अधिकाधिक मानवीय सन्तुष्टि प्रदान करेगी तथा संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग देगी।"

नॉर्मन मायर के अनुसार, "मानवीय सम्बन्ध व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से व्यवहार करना है।"

मैकफारलैण्ड के अनुसार, "मानव सम्बन्ध कार्यरत व्यक्तियों की क्रियाओं, अभिवृद्धियों, भावनाओं तथा अन्तर्सम्बन्धों की समझ एवं जानकारी द्वारा मानवीय साधनों के सदुपयोग की पद्धति एवं अध्ययन है।"

जॉन एफ. मी के अनुसार, "उद्योग तथा व्यवसाय में मानवीय सम्बन्ध वह साधन है जिसकी सहायता से कम्पनी व कर्मचारी दोनों ही उच्च मनोबल द्वारा अत्यधिक उत्पादन प्राप्ति के लिए परस्पर सहयोग करते हैं, जो कि समस्त व्यवसायों एवं उद्योगों का अन्तिम आर्थिक उद्देश्य होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि मानवीय सम्बन्ध कार्यरत व्यक्तियों का अध्ययन है जिसका उद्देश्य किसी कार्य स्थिति में मानवीय आचरण को समझना है।

2.3.3. एल्टन मेयो (Elton Mayo)

जॉर्ज एल्टन मेयो उन प्रमुख प्रशासनिक चिन्तकों में से एक हैं जिनके शोध कार्यों ने लगभग 3 दशकों तक अपना प्रभाव बनाए रखा और औद्योगिक समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। एल्टन मेयो ने प्रबंधन के मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त को विकसित किया। मेयो अपनी पुस्तक 'द ह्यूमन प्रॉब्लम्स ऑफ एन इंडस्ट्रियलाइज्ड सिविलाइजेशन (1933) और हॉथोर्न स्टडीज (जो कि 'मानवीय सम्बन्ध विचारधारा' की आधारशिला के रूप में थे) के लिए जाने जाते थे। यही नहीं मेयो ने उन अनेक शोधकर्ताओं को भी प्रेरणा दी जिनके कार्यों का प्रभाव प्रबन्ध में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

जॉर्ज एल्टन मेयो का जन्म 26 दिसम्बर 1880 में एडीलेड (ऑस्ट्रेलिया) में हुआ था। एल्टन ने एडीलेड विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद, मेडिकल स्कूल में दाखिला लेने की कोशिश की, लेकिन विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में असफल रहे। नतीजतन उन्हें इंग्लैंड भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने लेखन की ओर रुख किया। उन्होंने पाल मॉल गजट के लिए काम किया और लंदन में वर्किंग मेन्स कॉलेज में पढ़ाया। 1905 में मेयो वापस ऑस्ट्रेलिया आ गए और फिर उन्होंने मनोविज्ञान में पढ़ाई की। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मेयो ने घायल सैनिकों की चिकित्सा करके काफी प्रसिद्धि पाई। इसके बाद वे 1919 में क्वींसलैंड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बन गए, जहाँ उन्होंने दर्शनशास्त्र, नैतिकता, तत्वमीमांसा, अर्थशास्त्र, शिक्षाशास्त्र और मनोविज्ञान पढ़ाया। उन्होंने युद्ध के आघात से पीड़ित रोगियों का भी इलाज किया और प्रबंधन परामर्श में लगे रहे। 1922 में मेयो अमेरिका चले गए और पेनीसिल्वानिया विश्वविद्यालय के 'वारटन स्कूल ऑफ फाइनेन्स एण्ड कॉमर्स' के संकाय सदस्य बन गए। 1926 में मेयो हावर्ड विश्वविद्यालय में औद्योगिक अनुसंधान के प्रोफेसर बने। यहाँ के बाद ही मेयो तथा उनके साथियों ने 1928 में अपने प्रसिद्ध हॉथोर्न अध्ययन की शुरुआत की, और अगले पाँच वर्षों तक उनका संचालन किया। मेयो ने 1933 में अपनी पहली किताब लिखी, जिसका शीर्षक था 'द ह्यूमन प्रॉब्लम्स ऑफ एन इंडस्ट्रियल सिविलाइजेशन'। मेयो के जीवन की संध्या इंग्लैण्ड में बीती और 7 सितंबर, 1949 को इंग्लैंड के पोल्सडेन लेसी में 69 वर्ष की आयु में मेयो की मृत्यु हो गई। मेयो ने अनेक पुस्तकें लिखीं और कुछ लेख प्रकाशित करवाए। मेयो की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें व लेख इस प्रकार हैं–

1) द ह्यूमन प्रॉब्लम्स ऑफ एन इंडस्ट्रियल सिविलाइजेशन (The Human Problems of an Industrial Civilization (1933)
2) द सोशल प्रॉब्लम्स ऑफ एन इंडस्ट्रियल सिविलाइजेशन– लंदन, 1945 (The Social Problems of an Industrial Civilization (1945)
3) द पॉलिटिकल प्रॉब्लम्स ऑफ एन इंडस्ट्रियल सिविलाइजेशन (1947) The Political Problems of an Industrial Civilization (1947)
4) मेयो के निबन्ध (Mayo's Essays) "व्हाट इज मोनोटॉमी?" (What is Monotony?), "चेंजिंग मेथड्स इन इनडस्ट्री" (Changing Methods in Industry) ,"सुपरविजन एण्ड व्हाट इट मीन्स" (Supervision and What it Means)

2.3.4. एल्टन मेयो के प्रयोग (Elton Mayo's Experiments)

मेयो ने अनेक प्रयोग किए जिनमें सबसे प्रसिद्ध हॉथोर्न प्रयोग (Hawthorne Experiments) थे। मेयो के प्रयोगों तथा उनके निष्कर्षों को जानने से पूर्व उस समय की सामाजिक, आर्थिक और प्रौद्योगिक परिस्थितियों को जान लेना आवश्यक है क्योंकि उन्हीं परिस्थितियों के कारण ये प्रयोग किए गए। टेलर ने श्रमिकों को निष्क्रिय प्राणी माना

जिनको आर्थिक प्रोत्साहन देकर अभिप्रेरित किया जा सकता है। इसके प्रतिक्रियास्वरूप मानवीय सम्बन्ध विचारधारा का विकास हुआ। मेयो ने दावा किया कि औद्योगिकीकरण ने उत्पादन की समस्या को हल किया और आर्थिक विकास की शुरुआत की, लेकिन इसने श्रमिक की सामाजिक स्थिति में सुधार नहीं किया। श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच एक गंभीर तनाव था, जिसे मेयो का मानना था कि समाजवाद द्वारा हल नहीं किया जा सकता। उन्होंने समस्या से निपटने के लिए मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का उपयोग करने का प्रस्ताव रखा। इन्हीं प्रयोगों के बाद औद्योगिक संगठनों में श्रमिक को मशीन का पुर्जा न मानकर एक जीवन्त प्राणी माना जाने लगा जिसे अनौपचारिक साधनों से भी अभिप्रेरित किया जा सकता है। उनके हॉथोर्न प्रयोग इसी उद्देश्य के लिए किए गए थे। एल्टन मेयो के हॉथोर्न प्रयोगों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

हॉथोर्न प्रयोग (Hawthorne Experiments, 1924-1932)–मानव सम्बन्ध विचारधारा को समझने हेतु हॉथोर्न प्रयोगों को जानना अतिमहत्त्वपूर्ण है। इस प्रयोग के बाद से मानव सम्बन्ध के विषय में कई नई अवधारणाएँ प्रस्थापित हुई। हॉथार्न प्रयोग प्रशासनिक विचारधारा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

जोसेफ एल. मेसी के अनुसार, "हॉथोर्न अध्ययन मानव सम्बन्ध आन्दोलन की आधारशिला है।" सन् 1924 ई. से 1932 ई. में यह प्रयोग शिकागो शहर (अमेरिका में) स्थित "वेस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी" के हॉथोर्न संयंत्र में किया गया। इस प्रयोग का उद्देश्य यह जानना था कि यदि संगठन के कर्मचारी वर्ग को अच्छी कार्य दशाएँ उपलब्ध कराई जाएँ तो उनके व्यवहार एवं अभिवृत्तियों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? इसके अतिरिक्त यह भी पता लगाना था कि श्रमिकों की कार्य–दक्षता एवं उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं? इस प्रयोग में सहयोग देने वाले प्रमुख थे–एल्टन मेयो, एफ. जे. रोथलिजबर्जर, डब्ल्यू. जे. डिक्सन, टी. एन. व्हाइटहैड। जब यह प्रयोग प्रारम्भ हुआ उस समय वेस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी में लगभग 25,000 कर्मचारी कार्यरत थे। यह एक विश्व प्रसिद्ध कम्पनी थी। इस कम्पनी की कर्मचारी अथवा सेवीवर्गीय नीति श्रमिकों के पक्ष में थी।

इस नीति के अनुसार कर्मचारियों को उचित कार्यकाल, औषधालय, जलपानगृह, वेतन, मनोरंजन के साधन व अन्य सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। परन्तु फिर भी कर्मचारियों में मतभेद एवं असन्तोष था। कम्पनी में तनाव एवं असुरक्षा का वातावरण व्याप्त था। कम्पनी के कर्मचारी मानसिक तनाव से ग्रसित थे। अतः इस कम्पनी ने 1924 ई. में विभिन्न प्रकार के अध्ययनों के लिए "नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्सेज" से सहयोग माँगा। इस तरह एल्टन मेयों की अध्यक्षता में प्रयोग प्रारम्भ हुए। इन प्रयोगों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–
1) जाँच कक्ष अध्ययन, 2) साक्षात्कार अध्ययन तथा 3) अवलोकन अध्ययन आदि।

1) **जाँच कक्ष अध्ययन (Test Room Studies)**–जाँच कक्ष अध्ययन इस प्रयोग शृंखला का प्रथम भाग है। इसका प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की कार्यदक्षता पर पड़ने वाले कार्यदशाओं एवं भौतिक कारकों के प्रभावों का अध्ययन करना था। इसके अन्तर्गत् विभिन्न प्रकार के प्रयोग किए गए जिनका विवरण निम्नवत् है–
   i) **प्रकाश प्रयोग (Illumination Experiments)**–हॉथोर्न प्रयोगों की प्रथम शृंखला में प्रकाश प्रयोग किया गया। इस प्रयोग के द्वारा यह जानना था कि प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन का कर्मचारी की दक्षता एवं उत्पादकता पर कुछ प्रभाव पड़ता है या नहीं। इसके लिए 6–6 महिला कर्मचारियों के दो दल बनाए

गए। एक दल को ऐसे कमरे में कार्य करने के लिए रखा गया जहाँ कि प्रकाश की व्यवस्था एक समान थी। दूसरे दल को ऐसे कमरे में कार्य करने के लिए रखा गया जहाँ की प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन होता रहा अर्थात् कभी प्रकाश में वृद्धि की गई तो कभी प्रकाश में कमी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि दोनों दलों के उत्पादकता में वृद्धि हुई अर्थात् कर्मचारियो की उत्पादकता में वृद्धि का कारण केवल प्रकाश ही नहीं बल्कि अन्य दूसरे कारण भी हैं जो उनकी उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। अतः उन कारणों को जानने के लिए मेयो एवं उनके सहयोगियों ने कई अन्य प्रयोग किए।

ii) **रिले एसेम्बली टेस्ट रूम (Relay Assembly Test Room Experiments)**– इस प्रयोग का उद्देश्य प्रकाश प्रयोग से उत्पन्न संदेहों को दूर करना एवं इसका मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का उत्पादन की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसकी जाँच करना था। यह प्रयोग मार्च 1927 ई. से जून 1929 ई. तक चला। इस प्रयोग के कई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकले। इस प्रयोग के लिए 6 लड़कियों का एक समूह बनाया गया तथा उन्हें एक कमरे में टेलिफोन के छोटे–छोटे उपकरणों को जोड़ने के लिए कहा गया। यह सभी लड़कियाँ औसत स्तर की थीं। कार्य करते समय ये आपस में बात कर सकती थीं । एक पर्यवेक्षक इनके कार्यों को देखता था। इस प्रयोग के समय कार्यदशाओं में कई परिवर्तन किए गए। जैसे–आराम की सुविधा, कार्य के घण्टों में कमी, चाय–कॉफी की व्यवस्था, कार्य के अनुसार वेतन इत्यादि। उपरोक्त परिवर्तनों को लागू करने से समूह की उत्पादकता में वृद्धि हुई। इस प्रयोग से निष्कर्ष निकला कि कार्य एवं व्यक्तियों की उत्पादन क्षमता पर भौतिक तत्त्व एवं परिस्थितियों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है।

iii) **द्वितीय रिले असेम्बली समूह (Second Relay Assembly Group)**–यह प्रयोग नवम्बर 1928 ई. में प्रारम्भ हुआ और लगभग नौ सप्ताह तक चला। इस प्रयोग का उद्देश्य प्रेरणाओं के प्रभाव की जॉच करना था। पाँच अनुभवी रिले कर्मचारियों का चयन इस प्रयोग के लिए किया गया। इनके कार्य दशाओं में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। इन कर्मचारियों को प्रेरणा के रूप में बोनस दिया गया। इस प्रयोग का यह निष्कर्ष निकला कि बोनस देने से कुल उत्पादन से कर्मचारियों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

iv) **माइका स्प्लिटिंग ग्रुप (Mica Splitting Group)**–इस प्रयोग के लिए 5 लड़कियों को एक जाँच कक्ष में रखा गया। दो वर्ष में कार्य की स्थिति में 5 बार परिवर्तन किया गया। उन लड़कियों से अधिक कार्य करवाया गया परन्तु उन्हें अधिक वेतन नहीं दिया गया। इस प्रयोग में जिन लड़कियों को रखा गया था वह एक दूसरे से किसी भी प्रकार से मानसिक एवं सामाजिक रूप से परिचित नहीं थी। प्रयोग के बाद यह निष्कर्ष निकला कि लड़कियाँ कार्य करते–करते एक सामाजिक समूह में परिवर्तित हो गई हैं। इस प्रयोग के पश्चात् यह निष्कर्ष निकला कि "एक बड़ी सीमा तक कार्य सन्तुष्टि समूह के औपचारिक सामाजिक प्रारूप पर निर्भर करती है। जहाँ एक ओर सहयोग एवं उत्पादन अपने को महत्त्वपूर्ण मानने की भावना के कारण बढ़ता है वहीं दूसरी ओर भौतिक कार्य दशाओं का प्रभाव अत्यन्त सीमित होता है।"

2) **साक्षात्कार अध्ययन (Interview Studies)**–हॉथोर्न प्रयोग का एक प्रमुख भाग साक्षात्कार भी था। सितम्बर 1928 ई. से 1932 ई. के मध्य मेयों एवं उनके सहयोगियों ने मानव व्यवहार एवं भावनाओं पर गहन अध्ययन प्रारम्भ किया। इस

अध्ययन को "साक्षात्कार अध्ययन" भी कहा जाता है। इस अध्ययन के अन्तर्गत् 2100 व्यक्तियों अथवा कर्मचारियों का साक्षात्कार लेने की योजना बनाई गई। साक्षात्कार का उद्देश्य उद्योग में लगे कर्मचारियों के दृष्टिकोण तथा भावनाओं के विषय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त किया जा सके। इस अध्ययन में साक्षात्कार के द्वारा कर्मचारियों से प्रबन्धन की नीतियों एवं कार्यक्रमों, कार्य की स्थिति, प्रबन्धकों के व्यवहार व अन्य विचार जानने का प्रयास किया गया। इस अध्ययन के निम्नलिखित परिणाम निकले–

i) किसी भी कर्मचारी को स्वायत्ता से अपने विचार प्रकट करने का अवसर प्रदान करने से उनके मनोबल में वृद्धि होती है।
ii) कारखाने के भीतर एवं बाहरी वातावरण का कर्मचारियों की माँगों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।
iii) कर्मचारियों द्वारा की गई शिकायतें सदैव वास्तविक दशा का चित्रण नहीं करती बल्कि वह केवल उनके मस्तिष्क में व्याप्त असन्तोष का लक्षण होती हैं।
iv) जब तक श्रमिकों की भावनाओं तथा संवेगों के विषय में नहीं जाना जाएगा तब तक उनकी वास्तविक समस्याओं से अवगत नहीं हुआ जा सकता है। जब कर्मचारियों को अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होता है तो वह अनुभव करते हैं कि संगठन ने उनको व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से महत्त्वपूर्ण माना है।

3) **अवलोकन अध्ययन (Observation Studies)**–हॉथोर्न प्रयोगों का अन्तिम चरण अवलोकन अध्ययन को माना जाता है। सन् 1931–32 ई. में इसका प्रयोग सामूहिक व्यवहार के अध्ययन हेतु किया गया। इस प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य कार्यस्थल एवं कार्य के समय कर्मचारियों के सामाजिक अनौपचारिक सम्बन्धों के प्रभावों को देखना था। इस अध्ययन में अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया।

इस प्रयोग के लिए कर्मचारियों का एक समूह बनाया गया जिसमें 2 इंस्पैक्टर, 3 सोल्डरमैन एवं 9 वायरमैन थे। ये सभी कर्मचारी रिले एसेम्बली बैंक में टेलीफोन एक्सचेंज विभाग में कार्यरत थे। इसे बैंक वायरिंग प्रयोग के नाम से भी जाना जाता है। इन सदस्यों को एक अलग कक्ष में कार्य करने हेतु भेज दिया गया तथा उन्हें कार्य का वेतन समूह के प्रत्येक सदस्यों को कुल उत्पादन के आधार पर उसका अंश मिलता था। कर्मचारियों के समक्ष उत्पादन का औपचारिक लक्ष्य निश्चित कर दिया गया था। इस शोध से यह ज्ञात होता है कि कर्मचारियों द्वारा उत्पादन के मानक निश्चित कर लिए गये थे। यह लक्ष्य प्रबन्धन द्वारा निर्धारित लक्ष्य से कम था।

इस कर्मचारियों के समूह ने एक आचार संहिता का निर्माण किया था जो निम्नवत् है–

i) समूह का जो व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य से कम कार्य करेगा वह कमजोर अथवा धोखेबाज कहलाएगा।
ii) समूह द्वारा निर्धारित उत्पादन के लक्ष्य से जो व्यक्ति आगे बढ़ेगा वह शेखीखोर अथवा रेट बस्टर कहलाएगा।
iii) निरीक्षण अथवा प्रबन्धन के प्रतिनिधि से समूह के किसी भी सदस्य की चुगली नहीं करना चाहिए। इससे सदस्य को हानि पहुँच सकती है। ऐसा करने वाला चुगलखोर कहलाएगा।
iv) समूह के किसी भी सदस्य को अपने साथियों से दूरी नहीं बनानी चाहिए तथा न ही आपस में कार्यालयी व्यवहार करना चाहिए।

2.3.5. एल्टन मेयो के प्रयोगों के निष्कर्ष (Conclusion of Elton Mayo's Experiments)

एल्टन मेयो एवं उनके सहयोगियों द्वारा किए गए प्रयोगों द्वारा निम्नलिखित निष्कर्ष निकले–

1) एल्टन मेयो की सबसे महत्त्वपूर्ण देन कारखानों में मानव तत्त्व की स्थापना करना है।
2) एल्टन मेयो ने रैबल परिकल्पना का खण्डन किया। यह परिकल्पना यह मानती है कि समाज असंगठित लोगों का समूह है।
3) भौतिक कारकों का कर्मचारियों की उत्पादकता पर बहुत की कम प्रभाव पड़ता है।
4) भौतिक व वातावरण सम्बन्धी घटक कर्मचारियों की कार्य के प्रति रुचि एवं कुशलता पर भी कोई विशेष प्रभाव नहीं डालते हैं।
5) मानव केवल आर्थिक व्यक्ति नहीं है बल्कि वह एक सामाजिक प्राणी है।
6) इस प्रयोग से ज्ञात होता है कि संगठन के अन्तर्गत अनौपचारिक समूह की उत्पत्ति स्वयं ही होती है।
7) चूँकि मनुष्य एक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्राणी है अतः उसकी कुछ सामाजिक व मानसिक आवश्यकताएँ होती हैं।
8) जब श्रमिकों के मनोबल स्तर में वृद्धि होती है तो उत्पादकता में भी वृद्धि होती है।
9) जब कर्मचारी शिकायत करते हैं तो उसमें उनका मानसिक असन्तोष छुपा होता है।
10) प्रबन्धकों के मानवीय व्यवहार से कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त कर्मचारी को भी सामाजिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

2.3.6. एल्टन मेयो के मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त (Elton Mayo's Human Relations Theory)

मानवीय सम्बन्धों के निर्माण हेतु कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इसका श्रेय द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिका के "मानव शक्ति आयोग" को दिया जाता है। इस आयोग द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को विश्व के अधिकांश राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया क्योंकि समय परिवर्तन के साथ यह सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण होता गया कि आर्थिक, न्यायोचित, तकनीकी तथा तर्कसंगत कार्यवाही के साथ–साथ किसी संगठन के भविष्य हेतु व्यक्तियों एवं समूहों का स्वेच्छा से पूर्ण सहयोग प्राप्त करना अति आवश्यक है। इस सिद्धान्त के जन्मदाता जार्ज एल्टन मेयो को माना जाता है। अतः निम्न सिद्धान्तों पर मानवीय सम्बन्धों को आधारित होना चाहिए–

1) व्यक्ति को उचित सम्मान देना चाहिए।
2) व्यक्तियों के साथ मानवता का व्यवहार करना चाहिए।
3) प्रत्येक व्यक्ति को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वह किसके साथ है।
4) संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्गित योग्यता का सर्वोत्तम उपयोग किया जाना चाहिए।
5) व्यक्तियों को उन परिवर्तनों से पहले ही अवगत करा देना चाहिए जो भविष्य में किए जाने वाले हैं।

उपरोक्त सिद्धान्तों के अलावा कई अन्य विद्वानों ने मानवीय सम्बन्धों के विषय में जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वह इस प्रकार हैं–

1) **व्यक्ति का महत्त्व (Importance of Person)**–संगठनात्मक आचरण को समझने हेतु व्यक्ति की भावनाओं, व्यक्ति के आचरण, परम्परा एवं रीति–रिवाज, उनकी व्यक्तिगत आशाओं एवं आकांक्षाओं को समझना एवं उन्हें महत्त्व देना आवश्यक है।

2) **सामान्य हित (General Interest)**–यह सिद्धान्त श्रमिक वर्ग के प्रबन्ध को सही दिशा प्रदान करता है, क्योंकि इसमें मान्यता है कि प्रबन्धकों, कर्मचारियों तथा संगठन का सामान्य व सामूहिक हित है। यदि प्रबन्धक एवं सभी कर्मचारी इस दिशा में सामूहिक रूप से कार्य करने हेतु तत्पर रहें एवं संस्था का कुशलतापूर्वक संचालन हो, तो न केवल संगठन का लक्ष्य प्राप्त होगा बल्कि कर्मचारी वर्ग को भी उचित प्रतिफल प्राप्त होगा।

3) **कार्य की मान्यता (Recognition of Work)**–एक अच्छे मानवीय सम्बन्ध के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक श्रमिक को अपने कार्यों को आवश्यक महत्त्व देना चाहिए।

4) **पारस्परिक मान्यता (Reciprocal Recognition)**–यह मानवीय सम्बन्धों के निर्माण हेतु महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि संगठन के प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों को पारस्परिक मान्यता देनी चाहिए।

5) **कर्मचारी सहभागिता (Employee Participation)**–यह सिद्धान्त कर्मचारी सहभागिता पर बल देता है। अर्थात् कर्मचारियों को संस्था के प्रबन्ध में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान करना चाहिए। इसका एक लाभ यह है कि कर्मचारी, लिए गए निर्णयों को अपने ही निर्णय मानकर उन्हें पूर्ण करने हेतु प्रयत्नशील रहेंगे।

6) **निर्विरोध सम्प्रेषण (Uncontested Communication)**–एक अच्छे मानवीय सम्बन्धों के निर्माण हेतु संदेशों के स्वतंत्र आदान–प्रदान की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे प्रबन्धक, कर्मचारी वर्ग को अपने विचारों, इच्छाओं एवं आदेशों से अवगत करा सकें तथा कर्मचारियों की प्रतिक्रिया प्राप्त कर सके।

7) **सामूहिक प्रयासों को प्रोत्साहन (Encouragement of Collective Efforts)**–इस सिद्धान्त की मान्यता है कि सामूहिक प्रयत्नों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि सामूहिक प्रयास अच्छे परिणाम दे सकते हैं।

8) **प्रजातान्त्रिक वातावरण का विकास (Development of Democratic Environment)**–इस सिद्धान्त की मान्यता है कि संगठन में प्रजातान्त्रिक वातावरण का होना अति आवश्यक है। मानवीय सम्बन्धों का विकास प्रभुत्व एवं अधिनायकवाद से सम्भव नहीं हो सकता। अभिप्रेरण प्रक्रिया द्वारा कार्य करने हेतु सभी कर्मचारियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

9) **अनुकूल परिस्थितियों का विकास (Development of Adaptation Conditions)**–यह सिद्धान्त इस पर जोर देता है कि कर्मचारी वर्ग की प्रवृत्ति अथवा मनोवृत्ति के अनुकूल ही कार्य के परिवेश का विकास करना चाहिए।

2.3.7. एल्टन मेयो के मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त के मुख्य तत्त्व (Elton Mayo's Main Elements of Human Relations Theory)

एल्टन मेयो ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वह मानवीय सम्बन्धों के मुख्य तत्त्वों के रूप में विकसित हुए। यह मुख्य तत्त्व निम्नवत् हैं–

1) **मानवीय तत्त्व पर बल (Emphasis on Human Element)**–किसी भी संगठन के सदस्य मात्र आर्थिक शक्ति नहीं होते बल्कि वह भावनाओं, इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं अन्य से परिपूर्ण मानव होते हैं। अतः संगठन के सदस्यों को महत्त्व देना चाहिए।

2) **अनौपचारिक समूहों का महत्त्व (Importance of Informal Groups)**–किसी भी संगठन में कार्यरत कर्मचारी वर्ग में मेलजोल के कारण छोटे–छोटे अनौपचारिक समूह बन जाते हैं। यह समूह कर्मचारियों की क्रियाओं, दृष्टिकोणों व व्यवहारों पर

सामाजिक नियन्त्रण रखते हैं। धीरे–धीरे अनौपचारिक समूहों में कार्य मानदण्ड, नियम कार्य प्रारूप, सिद्धान्त एवं मान्यताएँ बन जाती हैं। इससे कार्य स्थल प्रभावित होता है।

3) **कार्यक्षमता पर मानवीय एवं सामाजिक तत्त्वों का प्रभाव (Effect of Human and Social Element on Working Capacity)**–किसी भी संगठन में कार्यरत श्रमिक वर्गों पर केवल भौतिक वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि मानवीय व्यवहार सम्बन्धी तत्त्व जैसे–अभिवृत्ति, मनोबल, सामाजिक संतुष्टि, आपसी सम्बन्ध व अन्य का भी प्रभाव पड़ता है।

4) **सामाजिक व्यक्ति की अवधारणा (Concept of Social Man)**–इस अवधारणा के अनुसार मूलरूप से व्यक्ति अपनी सामाजिक आवश्यकताओं से प्रेरित होता है व वह समूह सम्बन्धों के माध्यम से अपने व्यक्तित्व व पहचान के मध्य बोध को विकसित करता है।

5) **मान्यता, आत्मविकास व मनोबल पर बल (Emphasis on Recognition, Self-Actualisation and Morale)**–मान्यता, आत्मविकास एवं मनोबल से तीनों ही किसी संगठन के कर्मचारियों की उच्च मनोवैज्ञानिक जरूरतें होती हैं। उचित अवसर प्रदान कर ही इनकी संतुष्टि की जानी चाहिए।

6) **मानव सहयोग (Human Collaboration)**–किसी भी संगठन में श्रेष्ठ कार्य पद्धति को बढ़ाने के लिए तकनीकी कौशल के बजाए मानव सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

7) **शिकायतें संकेत मात्र हैं (Complaints are Just Signals)**–किसी भी संगठन में कर्मचारियों की शिकायतें, तथ्यों के विवरण के अतिरिक्त उनके असंतोष का द्योतक हैं।

8) **उदार पर्यवेक्षण प्रणाली (Liberal Supervisory Style)**–स्वतंत्र, उदार एवं सहानुभूति पूर्ण पर्यवेक्षण प्रणाली सदस्यों को आर्थिक कार्य करने हेतु प्रेरित करती है। जब संगठन के सदस्यों को स्वतंत्रतापूर्वक विचार विमर्श करने, कार्यविधि तथा आवश्यक पहलुओं का निर्धारण करने एवं कार्य व वातावरण पर नियन्त्रण रखने की स्वतंत्रता होती है तो वह अधिक उत्साह से कार्य करती है।

9) **कार्य एक सामूहिक क्रिया (Work is a Group Activity)**–किसी संगठन में कार्य एक सामूहिक क्रिया है न कि वैयक्तिक क्रिया। संगठन के सदस्य सामूहिक रूप से कार्य करते हुए वैयक्तिक एवं संगठनात्मक लक्ष्यों को बड़ी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

10) **भाग लेने योग्य प्रबन्ध व्यवस्था (Participative Management)**–कोई भी संगठन सामाजिक सम्बन्धों से निर्मित एक सामाजिक इकाई होती है। अतः संगठन में निर्णय लेने वालों में प्रबन्धक (प्रशासक) के अतिरिक्त कर्मचारी भी होते हैं।

2.3.8. एल्टन मेयो के प्रयोगों की आलोचना (Criticism of Elton Mayo's Experiments)

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि 20वीं शताब्दी के तीसरे एवं चौथे दशक में एल्टन मेयो के विचारों ने औद्योगिक मनोविज्ञान एवं औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की। परन्तु विद्वानों ने इस सिद्धान्त की आलोचना भी की है जो निम्नवत् है–

1) **मिलर एवं फोर्म** का मानना है कि मेयो का प्रयोग केवल अनुभववाद एवं अवलोकन पर आधारित है तथा यह वैज्ञानिक तरीके पर आधारित नहीं है क्योंकि कार्य, श्रमिक एवं वातावरण का चयन व्यवस्थित तरीके से नहीं किया गया है।

2) **मेयो** ने प्रबन्धकों का पक्ष तो लिया है किन्तु कहीं भी श्रम संघों का वर्णन नहीं किया है। श्रमिकों को एक साधन की भाँति ही देखा गया है तथा इन प्रयोगों का मुख्य उद्देश्य श्रमिकों से अधिक से अधिक काम लेना था। मेयो का मानना था कि संतुष्ट कर्मचारी अधिक उत्पादन करते हैं जिसे बेल (Bell) ने गाय समाजशास्त्र (Cow sociology) का नाम दिया।

3) **पीटर ड्रकर के अनुसार**–मानव सम्बन्ध विचार में आर्थिक आयामों को पूर्णतः अनदेखा किया गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि एल्टन मेयो संगठनात्मक उद्देश्यों के बजाय व्यक्तिगत अनौपचारिक उद्देश्यों के प्रति अधिक संवेदनशील नजर आते हैं।

4) **कैरी के अनुसार**–इस प्रयोग के आधार निष्कर्ष के लिए पर्याप्त नहीं हैं। चूँकि इस प्रयोग में पाँच अथवा छः लड़कियों को लेकर 'महान प्रकाश व्यवस्था' सम्बन्धी प्रयोग किया गया था। यह प्रयोग किसी भी आधार पर वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

5) **लॉरेन बैरिट्ज** का मानना है कि मेयो ने श्रमिक संघों के विरोध में एवं प्रबंधकों के पक्ष में अपना विचार दिया है।

6) **इटज्योनी** का मानना है कि मानव सम्बन्ध से सम्बन्धित विचारक अपना अधिकांश ध्यान कर्मचारियों के मध्य अनौपचारिक सम्बन्धों पर देते हैं।

7) **बेंडिक्स एवं फिशर** का मत है कि मेयो अपने वैज्ञानिक कार्यों को नीतिपरक पूर्व कल्पनाओं की स्पष्ट परिभाषा देने में असफल रहे हैं।

8) **डेनियल शेल** ने मेयो एवं उसके सहयोगियों की आलोचना करते हुए कहा है कि हॉर्वर्ड दल द्वारा जो पद्धतियाँ अपनाई गई वह त्रुटिपूर्ण थीं।

9) **हेरोल्ड मोपर्ड** एवं **लारेन बारिज** का कहना है कि मेयो ने स्वतन्त्र समाज में श्रम संघों की भूमिका को अनदेखा किया है। कुछ लोगों का मानना है कि मेयो श्रमिक संघों का विरोधी एवं प्रबन्धकों का पक्षधर था।

10) **डेविड ईस्टन** का मानना है कि मेयो के प्रयोगों में विस्तृत सामाजिक संदर्भ का अभाव है, क्योंकि उन्होंने संगठन की समग्र सामाजिक स्थिति पर ध्यान नही दिया है। जिससे इस प्रयोगों के निष्कर्षों की उपयोगिता व विश्वसनीयता कम हो गई है।

11) सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि, मेयो के निष्कर्ष सत्य हैं, किन्तु यह स्वाभाविक है कि इनमें कोई नवीनता नहीं है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह समूह में रहना पसन्द करता है। यह पूर्व स्थापित तथ्य है इसमें किसी नवीन तथ्य की बात नहीं की गई है।

12) कुछ आलोचकों का मत है कि प्रबन्ध एक सामाजिक विज्ञान है। अतः विज्ञान की भाँति इसका प्रयोग प्रयोगशाला विधि से नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार एल्टन मेयो ने मानव सम्बन्ध विचारधारा को विकसित करते हुए टेलर एवं वेबर की दक्षता तथा मितव्ययिता सम्बन्धी अवधारणा को एक नई चुनौती प्रदान की। मेयो के योगदान की महत्ता को महसूस करते हुए रॉथलीज बर्जर ने मेयो को 'विचारों के क्षेत्र में एक साहसी व्यक्ति' माना तथा कहा कि मेयो प्रसन्नचित्त प्रेरणादायी विचारक था।

2.4. व्यवहारवादी सिद्धान्त (BEHAVIOURAL THEORY)

2.4.1. परिचय (Introduction)

व्यवहारवादी सिद्धान्त अध्ययन प्रणाली के रूप में सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत एक नवीन पद्धति है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रारम्भ हुई। यह सिद्धान्त मानव सम्बन्ध सिद्धान्त का एक अधिक व्यवस्थित, परिष्कृत और उन्नत रूप है। यह एक अन्तरविषयी सिद्धान्त है, जो वैज्ञानिक पद्धति और मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करता है। यह समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के सिद्धान्तों से प्रभावित है। लोक प्रशासन तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों में व्यवहारवादी सिद्धान्त से पहले मात्र संस्थागत अध्ययन होता था जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित संस्था के ढाँचे, कार्यों एवं शक्तियों की व्याख्या की जाती थी। परन्तु उन अध्ययनों से यह ज्ञात नहीं हो पाता था कि व्यक्ति या कार्यकर्ता वास्तव में कैसा व्यवहार करते हैं। अतः व्यवहारवादी सिद्धान्त की शुरूआत परम्परागत अध्ययन प्रणालियों तथा सिद्धान्तों के विरुद्ध विद्रोह स्वरूप में हुई थी।

व्यवहारवाद की शुरूआत 1930 के मानव–सम्बन्ध आन्दोलन से मानी जाती है। मानव–सम्बन्ध और व्यवहारवादी सिद्धान्त दोनों का सम्बन्ध संगठन में जुड़े व्यक्तियों से है, अतः ये दोनों एक समान प्रतीत होते हैं। किन्तु मानव सम्बन्ध दृष्टिकोण जहाँ संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों का अध्ययन करता है, वहीं व्यवहारवादी सिद्धान्त संगठन के क्रियाकलापों में व्यक्ति के आन्तरिक मूल्यों एवं युक्तियुक्तता पर ध्यान देता है। ऐसे ही मानव सम्बन्ध सिद्धान्त निजी जरूरतों और सहयोग पर बल देता है, जबकि व्यवहारवादी सिद्धान्त व्यक्ति के आंतरिक पहलुओं को समझने पर बल देता है। व्यवहारवादी सिद्धान्त को नवीन मानव सम्बन्ध सिद्धान्त या सामाजिक–मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भी कहते हैं। व्यवहारवादी सिद्धान्त को विकसित करने में डेविड ईस्टन, ब्लाऊ मर्टन, फैरेल हेडी, वाइडनर, फ्रेडरिग्ज, सायर्स, रॉबर्ट डहाल आदि का विशेष योगदान रहा है। डेविड ईस्टन को व्यवहारवाद का जनक माना जाता है। व्यवहारवादी सिद्धान्त मूल्यों, तर्कों और तथ्यों पर आधारित धारणाओं का समर्थन करता है। मानवीय सम्बन्धों में व्यवहारवादी विचारधारा की शुरूआत एक आन्दोलन के रूप में हुई थी। यह सिद्धान्त संगठन में किसी व्यक्ति के मूल्यों पर केन्द्रित होकर उसके अन्तर्मुखी मानव व्यवहार से सम्पर्क साधता है।

वस्तुतः इस सिद्धान्त के अध्ययन का केन्द्रबिंदु मानव व्यवहार है। इस सिद्धान्त का प्रयोग चेस्टर बर्नार्ड और साइमन द्वारा लोक प्रशासन में किया गया है। लोक प्रशासन में यह सिद्धान्त कार्य किये जाने से पहले की भूमिका अदा करने वाली, निर्णय निर्माण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। निर्णय–निर्माण की आवश्यकता तब होती है जब वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, उपलब्ध अनेक विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प को चुनना होता है। इसके अन्तर्गत उन समस्त विकल्पों और कार्य–कलापों के सभी पहलुओं की समीक्षा शामिल है। जो उस निर्णय–निर्माण प्रक्रिया के भाग होते हैं। निर्णय करने वाला अपने वातावरण आन्तरिक और बाह्य ढाचों, अपनी समर्थता के क्षेत्रों, अपने विचारों और मूल्यों, स्थिति और सूचना आदि से प्रभावित होता है। व्यवहारवाद के अनुसार, किसी भी संगठन की कार्य प्रणाली इस बात पर निर्भर रहती है कि उसमें निर्णय किस प्रकार लिये जाते हैं और इससे कर्मचारियों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है। अतः संगठन के कार्यों एवं संरचनाओं का अध्ययन करने के लिए उस विधि का विश्लेषण किया जाए, जिससे संगठन के भीतर कर्मचारियों के निर्णय और व्यवहार प्रभावित होता है। वस्तुतः व्यवहारवादी दृष्टिकोण संगठन में मानव व्यवहार के

अध्ययन पर बल देता है, और निर्णय–निर्माण को संगठन की केन्द्रीय प्रक्रिया मानता है, तथा संगठन के कर्मचारियों के व्यवहार का अध्ययन अर्थात निर्णय–निर्माण प्रक्रिया के विश्लेषण की मांग करता है। निर्णय–निर्माण प्रक्रिया का विश्लेषण उद्देश्यपूर्णता की धारणा के आधार पर करना होता है।

2.4.2. व्यवहारवादी सिद्धान्त की विशेषताएँ (Features of Behavioural Theory)

व्यवहारवादी सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

1) यह सिद्धान्त आदेशात्मक की तुलना में अधिक वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक है।
2) इस सिद्धान्त में संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार और सम्बन्धों को महत्त्व दिया गया है।
3) यह सिद्धान्त संगठन में सक्रिय व्यवहार; जैसे– शक्ति, सत्ता, निर्णय–लेना, नेतृत्व एवं उत्प्रेरणा को महत्त्व देता है।
4) इस सिद्धान्त की अध्ययन प्रणाली प्रयोगात्मक है, जिसका अर्थ है कि यह सिद्धात वैज्ञानिक पद्धति की समर्थक है।
5) यह सिद्धान्त मात्रात्मक, गणितीय एवं औपचारिक विचार सिद्धान्त निर्माण के प्रति सतर्क है।
6) यह संगठन में कार्य करने वाले कर्मियों के अनौपचारिक सम्बन्धों और संचार को महत्त्व देता है।
7) इस सिद्धान्त का दृष्टिकोण विश्वव्यापी है, इसलिए प्रशासन के अध्ययन के लिए यह वैज्ञानिक पद्धति का समर्थन करता है।
8) व्यवहारवादी सिद्धान्त प्रभुता के स्थान पर औचित्यता को महत्त्व देता है।
9) यह सिद्धान्त स्वरूप में अन्तरविषयी है, और अध्ययन के लिए अन्य सामाजिक विषयों का समर्थन करता है।

2.4.3. व्यवहारवादी सिद्धान्त का लोक प्रशासन पर प्रभाव (Impact of Behavioural Theory on Public Administration)

लोक प्रशासन के अध्ययन और इसको वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने में व्यवहारवादियों का विशिष्ट योगदान रहा है। इस विषय में निम्नलिखित तथ्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

1) लोक प्रशासन के अध्येताओं समेत समस्त समाज विज्ञानियों को व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने व्याख्यात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययनों का आधार प्रदान किया है। जो कि विषय को अन्त में वैज्ञानिक सिद्धान्तों की ओर ले गया।
2) व्यवहारवादी उपागम की प्रकृति अन्तरविषयी है, अतः समाजिक व्यवहार से सम्बन्धित सभी विषयों जैसे– समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, लोक प्रशासन, राजनीतिशास्त्र और दर्शनशास्त्र इत्यादि में घनिष्ठता उत्पन्न हो गई एवं सम्पूर्ण सामाजिक विज्ञान एकीकृत एवं सुदृढ़ हो गया ।
3) इस उपागम में कोरे आदर्शों के स्थान पर वास्तविकता को जानने और समझने को महत्त्व दिया जाता है, अतः विषय की प्रकृति "क्या होना चाहिए" से परिवर्तित होकर 'क्या है' से सम्बन्धित हो गई।
4) लोक प्रशासन को मूल्य–निरपेक्ष विषय बनाने में व्यवहारवादी उपागम का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

5) इस उपागम के प्रयोग ने नवीन दृष्टि, व्यापक सोच, नई तकनीक, सूक्ष्म अध्ययन, विश्लेषण–क्षमता, नवीन मापदण्ड, उपादेयता और वैज्ञानिक अनुभववाद के महत्त्व को बढ़ा दिया, जिससे इस ओर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा।
6) व्यवहारवादी उपागम ने लोक प्रशासन को एक वैचारिक विषय के दायरे से बाहर निकालकर व्यावहारिक अध्ययन का विषय बना दिया।
7) व्यवहारवादी उपागम ने 'वास्तविकता के सन्दर्भ में' अध्ययन का विषय बनने वाली अवधारणाओं को स्थापित करने में विशेष योगदान दिया है।
8) निःसन्देह इस उपागम ने समाजिक विज्ञानों को परम्परा के सीमित दायरे से निकालकर वैज्ञानिक आधार तलाशने पर विवश किया, जिससे सामाजिक विषयों में नवीन पद्धतियों का समावेश सम्भव हो गया।

2.5. चेस्टर बर्नार्ड (CHESTER BARNARD)

2.5.1. परिचय (Introduction)

चेस्टर बर्नार्ड प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान् व लेखक थे। इनका जन्म 1886 में अमेरिका में ही हुआ था। माउण्ट हरमन अकादमी से आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद बरनार्ड ने 1906 में हावर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। पारिवारिक स्थिति ठीक न होने के कारण उन्होंने पढ़ाई के साथ–साथ काम करना भी जारी रखा। बर्नार्ड ने वहाँ से अर्थशास्त्र की पढ़ाई की और 3 वर्षों में ही सभी पाठ्यक्रम सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी कर लीं। किन्तु उन्हें विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त नहीं हो सकी, अतः 1909 में उन्होंने विश्वविद्यालय छोड़ दिया। इसके पश्चात बर्नार्ड अमेरिकी टेलीग्राम और टेलीफोन सिस्टम के सांख्यिकी विभाग में क्लर्क के रूप में कार्य करने लगे। 1927 में वे न्यूजी बैल संस्था के अध्यक्ष बन गए और सेवानिवृत्ति तक इसी संगठन में काम करते रहे। 4 वर्षों के लिए बर्नार्ड 'रॉकोफेलर फाउण्डेशन' के भी अध्यक्ष रहे। उन्होंने अमेरिका के एक सरकारी संगठन "न्यूजर्सी रिलीफ एडमिनिस्ट्रेशन" के राज्य स्तरीय डायरेक्टर के पद पर भी अपनी सेवाएँ दी। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय बर्नार्ड ने यूनाइटेड सर्विस ऑर्गेनाइजेशन में भी काम किया। अलग–अलग स्थानों और पदों पर कार्य करते हुए, बर्नार्ड को बड़े–बड़े निगमों तथा विभिन्न सरकारी व सेवा संगठनों की आन्तरिक कार्य–प्रणाली के अवलोकन और परीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार उन्होंने इन संस्थाओं की संगठनात्मक गतिविधियों के साथ–साथ संगठन में कार्य करने वाले कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों का भी अवलोकन किया। यही कारण है बर्नार्ड ने संगठनों के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है।

1938 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'द फंक्शन्स ऑफ द एक्जेक्यूटिव' (The Functions of the Executive) को संगठनात्मक विचारधारा की शास्त्रीय कृति माना जाता है। लोक–प्रशासन में अनुशासन के विकास चरणों में भी यह पुस्तक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त बर्नार्ड ने विभिन्न पत्रिकाओं में अनेक लेख भी लिखे। बाद में उनके ये लेख 'ऑर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेन्ट' (Organization and Management) शीर्षक से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुयी। बर्नार्ड अपने अन्तिम समय तक भी प्रबन्ध के विश्लेषण और उसे समझने में लगे रहे। बर्नार्ड को इस कार्य के लिए एल्टन मेयो, ओलिवर शेल्डन, फोलेट आदि विचारकों से प्रेरणा मिली थी। विभिन्न संस्थाओं में सक्रिय प्रबन्धक की भूमिका निभाने के कारण बर्नार्ड को अनेक विश्वविद्यालयों में व्याख्यान देने का अवसर भी प्राप्त हुआ। इसने उनकी संगठनात्मक समझ को और अधिक गहरा किया। बर्नार्ड ने अपने विचारों द्वारा प्रबन्ध के सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों पर अपनी

अमिट छाप छोड़ी और साइमन जैसे विचारक को प्रेरित किया। इसीलिए साइमन सदैव बर्नार्ड के आभारी रहेंगे। इस सम्बन्ध में फ्रैंक शेरवुड का प्रसिद्ध कथन है कि, "यह सर्वश्रेष्ठ प्रकार की स्कॉलरशिप है जिसमें एक व्यक्ति की बुद्धि और अनुभव प्रत्यक्षतः किसी दूसरे को स्थानान्तरित किए गए।" यही कारण है कि साइमन और बर्नार्ड का नाम साथ–साथ लिया जाता है। साइमन ने बर्नार्ड से अनेक विचार उधार लिए हैं।

2.5.2. चेस्टर बर्नार्ड का योगदान (Contribution of Chaster Bernard)

बर्नार्ड के प्रमुख विचारों का संक्षिप्त विश्लेषण अग्रवर्णित है–

1) औपचारिक और अनौपचारिक संगठन
2) योगदान–सन्तुष्टि सन्तुलन
3) सत्ता की अवधारणा
4) संचार की समझ
5) निर्णयन

2.5.2.1. औपचारिक और अनौपचारिक संगठन (Formal and Informal Organizations)

बर्नार्ड ने संगठन को सहकारी और जीवन्त व्यवस्था के रूप में वर्णित किया है। उनके अनुसार कोई व्यक्ति अकेले किसी उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः किसी लक्ष्य की प्राप्ति में व्यक्ति की आवश्यकता में सहयोग की उत्पत्ति होती है। स्वयं को बनाये रखने के लिए उद्देश्यों को प्राप्त करने और व्यक्ति के प्रेरकों को सन्तुष्ट करने में सहकारी संगठन को प्रभावी होना होता है। इसीलिए संगठन और व्यक्ति दोनों एक–दूसरे के लिए महत्त्वपूर्ण और आवश्यक हैं। व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं सामान्य वातावरण के अनुसार संगठन को ढालना पड़ता है।

सहयोग दो अन्तःनिर्भर और अन्तःसम्बन्धित प्रक्रियाओं के वर्गों पर आधारित होता है–

1) वे प्रक्रियाएँ जो पूर्णरूपेण सहयोग की व्यवस्था से सम्बन्धित होती हैं और वातावरण से इसका सम्बन्ध स्थापित करती हैं।
2) वे प्रक्रियाएँ जो व्यक्तियों में सन्तुष्टि की रचना या वितरण से सम्बन्धित होती हैं।

बर्नार्ड के अनुसार यह सहकारी या सहयोगी व्यवस्था ही है, जिससे औपचारिक संगठन का जन्म होता है। उनके अनुसार संगठन के तीन प्रमुख तत्त्व हैं–

i) साझा उद्देश्य
ii) संगठन में संचार
iii) सहयोग की इच्छा

बर्नार्ड के अनुसार औपचारिक संगठन "दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सचेतन व समाकलित क्रियाओं की व्यवस्था है।" वहीं अनौपचारिक संगठन प्राकृतिक व्यवस्थाएँ हैं, जिनमें से औपचारिक संगठनों का विकास हुआ है। आपसी सहयोग से ये तीन सकारात्मक कार्य करते हैं–

1) ये बेहतर विकल्प पेश करके औपचारिक मार्गों के स्थान पर संचार मार्गों को बढ़ावा देते हैं।
2) संगठन के सदस्यों के मध्य ऐसे सम्बन्ध स्थापित करके ये संगठन में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सहचारिता बनाए रखते हैं, जो बिना इनके सम्भव नहीं थे।
3) अनौपचारिक सम्बन्ध एवं क्रियाएँ संगठन सदस्यों को ये अवसर प्रदान करती हैं, कि वे निजी महत्त्व एवं प्रभावकारिता की भावनाओं का विकास कर सकें।

2.5.2.2. योगदान–सन्तुष्टि सन्तुलन (Contribution-Satisfaction Equilibrium)

उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है, कि कोई भी व्यक्ति किसी विशेष संगठन के कार्यों में सहयोग या योगदान क्यों करे? इस सम्बंध में बर्नार्ड का मानना है, कि यह योगदान सन्तुष्टि और सन्तुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। क्योंकि व्यक्ति सहयोग के बदले में सन्तुष्टि चाहता है। इसीलिए यदि सहयोग अधिक होगा और सन्तुष्टि कम होगी तो व्यक्ति संगठन का त्याग कर देगा और यदि सहयोग की अपेक्षा सन्तुष्टि अधिक होगी तो व्यक्ति संगठन में अधिक रुचि लेकर कार्य करेगा। यहाँ पर बर्नार्ड **'आर्थिक मनुष्य'** की अवधारणा को खारिज करते हैं। उनका मानना है कि, "संगठन में मानवीय व्यवहार के दर्शन तब तक नहीं हो सकते, जब तक आर्थिक हितों और अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त को पीछे नहीं धकेल दिया जाता।" बर्नार्ड के अनुसार, संगठन में आर्थिक संतुष्टि के साथ–साथ अन्य प्रोत्साहन भी जरूरी है, जैसे–

1) सम्मान एवं विशिष्टता।
2) कार्य की भौतिक परिस्थितियाँ।
3) आर्थिक एवं भौतिक वस्तुओं का लाभ।
4) आदर्श लाभ, जैसे–कौशल का गर्व, संगठन से निष्ठा, परिवार और अन्य लोगों के लिए सेवा व राष्ट्रभक्ति आदि।

श्रम–विभाजन एक औपचारिक व्यवस्था में संगठन का अभिन्न अंग है। जिसका बर्नार्ड ने विशिष्टीकरण के रूप में उल्लेख किया है। संगठन में विशिष्टीकरण के आधार निम्नवत् हैं–

1) वह स्थान, जहाँ कार्य किया जाता है।
2) वह समय, जब कार्य होता है।
3) वे व्यक्ति, जिनके साथ कार्य किया जाता है।

बर्नार्ड के अनुसार, "कोई भी संगठन भौतिक व अन्य प्रोत्साहनों के योगदान के बगैर अस्तित्व में नहीं रह सकता।" उन्होंने औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों के अन्तर्सम्बन्धों का भी उल्लेख किया है। बर्नार्ड का मानना है कि, औपचारिक संगठनों में अनेक अनौपचारिक संगठन भी कार्य करते हैं, तथा औपचारिक संगठनों की संरचना विधिवत की जाती है, जबकि अनौपचारिक संगठनों का निर्माण स्वतः होता है। संगठन को केवल नियमों या संरचना से नहीं समझ सकतें है, बल्कि उसके अनौपचारिक वातावरण को जानना अत्यन्त आवश्यक है। बर्नार्ड के अनुसार सामाजिक प्रक्रियाओं के कारण अनौपचारिक से औपचारिक और अन्तर–वैयक्तिक सम्बन्धों के कारण औपचारिक से अनौपचारिक संगठन का जन्म होता है।

2.5.2.3. सत्ता की अवधारणा (Concept of Authority)

बर्नार्ड का मत है कि, "सत्ता प्रत्येक संगठन का मूल आधार है।" अतः कोई भी संगठन अपने कार्यों या क्रियाकलापों को सत्ता के अभाव में सम्पादित नहीं कर सकता। अर्थात किसी संगठन के संचार या आदेश को उचित और वैध केवल तभी माना जाता है जब वह संचार सत्ता पर आधारित होता है। बर्नार्ड की सत्ता की अवधारणा अधीनस्थों की स्वीकृति पर आधारित, निम्न से उच्च की ओर जाने वाली सत्ता है। बर्नार्ड ने प्रबन्धकीय सत्ता का वास्तविक स्रोत उच्च पद को नहीं माना है। बल्कि अधीनस्थों और उनके द्वारा प्राप्त स्वीकृति को सत्ता का वास्तविक केन्द्रबिंदु माना है। उनके अनुसार एक अधीनस्थ कर्मचारी अपने लिए सत्ता की स्थापना स्वयं ही करता है। कोई भी व्यक्ति निम्न परिस्थितियों में ही अपने अधिकारी का आदेश स्वीकार करता है–

1) जब वह प्राप्त आदेश को पूर्णरूपेण समझ पाता है। अतः एक अधीनस्थ कर्मचारी के लिए आदेश की भाषा और उसका विवेचन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

2) जब उसे लगता है, कि दिया गया आदेश संगठन के उद्देश्य के विपरीत नहीं है।
3) जब उसे लगता है, कि प्राप्त आदेश उसके निजी हितों के अनुकूल है और कुल मिलाकर उसके लिए अहितकारी नहीं है।
4) जब वह समझता है, कि उस आदेश का पालन करने में वह शारीरिक और मानसिक रूप से सक्षम है।

इस प्रकार बर्नार्ड का मानना है, कि उच्च और वरिष्ठ सत्ता वास्तविक नहीं, बल्कि एक कल्पना मात्र है। उनके अनुसार निम्न से उच्च की ओर जाने वाली सत्ता ही वास्तविक है। क्योंकि इस प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति संगठनात्मक निर्णय के उत्तरदायित्व को उच्च पद को सौंपता है। बर्नार्ड ने आदेशों की स्वीकृति के विषय में उदासीनता के क्षेत्र की अवधारणा को परिभाषित किया है। उनके अनुसार सभी प्रकार के आदेशों को स्वीकृति योग्यता की दृष्टि से निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

1) **पहले** वे आदेश होते हैं, जो स्वीकार करने योग्य नहीं होते हैं, अर्थात् अधीनस्थ उनका पालन नहीं कर सकते।
2) **दूसरे** प्रकार के आदेश वे होते हैं, जो तटस्थता की पंक्ति पर होते हैं अर्थात् अत्यंत मुश्किल से स्वीकार अथवा अस्वीकार किए जाते हैं।
3) **तीसरे** नम्बर पर वे आदेश आते हैं, जिन्हें निर्विवाद रूप से अधीनस्थों द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है।

बर्नार्ड के अनुसार तीसरी श्रेणी के आदेश को ही 'उदासीनता के क्षेत्र' में सम्मिलित किया गया है।

2.5.2.4. संचार की समझ (Understanding of Communication)

बर्नार्ड संचार को संगठन का प्राथमिक सिद्धान्त मानते हैं, और प्रशासन की अधिकांश गतिविधियों को इसी में शामिल करते हैं। उनके अनुसार संगठन में उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित सात बिंदुओं का ध्यान रखना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है–

1) संचार स्पष्ट और निश्चित हो।
2) प्रत्येक संचार अधिकृत होना चाहिए।
3) संचार व्यवस्था प्रत्यक्ष और संक्षिप्त होनी चाहिए।
4) संचार केन्द्र में कार्यरत लोग सक्षम एवं योग्य होने चाहिए।
5) संगठन के प्रत्येक व्यक्ति के पास औपचारिक संचार व्यवस्था होनी चाहिए।
6) पूर्ण औपचारिक संचार प्रणाली का उपयोग करना चाहिए।
7) संगठन के कार्य के समय संचार में किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

2.5.2.5. निर्णय निर्माण (Decision-Making)

निर्णय लेने (निर्णयन) के सम्बंध में भी बर्नार्ड ने पर्याप्त योगदान दिया है। वे इसे एक सामाजिक प्रक्रिया मानते हैं। बर्नार्ड के अनुसार निर्णय निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं–

1) **व्यक्तिगत**–व्यक्तिगत निर्णय वह होते हैं, जो व्यक्ति द्वारा स्वयं लिए जाते हैं, और उन्हें प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता है।
2) **संगठनात्मक**–संगठनात्मक निर्णय औपचारिक होते हैं, और इनका प्रत्यायोजन किया जा सकता है।

बर्नार्ड ने निर्णय के सम्बंध में अवसरों का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया है, उनके अनुसार प्रबन्धकीय निर्णय अवसरवाद पर आधारित होना चाहिए। प्रशासनिक विचारधारा के विकास में बरनार्ड का विशेष योगदान रहा है। उनके विचारों की गम्भीरता और मौलिकता के कारण उनकी गणना श्रेष्ठ प्रशासनिक विचारकों में की जाती है। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'दि फन्क्शन्स ऑफ दि एक्जीक्यूटिव' का प्रशासनिक साहित्य में उच्च स्थान है।

2.5.3. आलोचनाएँ (Criticism)

अन्य विचारकों की भाँति बर्नार्ड के विचारों की भी काफी आलोचानाएँ हुई हैं। बर्नार्ड की पुस्तक की 'प्रस्तावना' लिखने वाले के. एन्ड्रयूज ने भी बर्नार्ड की पुस्तक की अनेक कमियाँ जैसे– प्रस्तुतीकरण की अमूर्तता, उदाहरणों की कमी और उनकी नीरसता तथा कठिन शैली आदि बताते हैं। बर्नार्ड की 'सहकारी व्यवस्था के रूप में संगठन' की विचारधारा की आलोचना यह कहकर की जाती है कि संगठन में प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थिति में 'सहकारी व्यवस्था' नहीं रह सकती। नेतृत्व के लिए बौद्धिक गुणों को कम करके आंकना भी बर्नार्ड की कमजोरी को दर्शाता है। 'उदासीनता का क्षेत्र' जितनी सरलता से बर्नार्ड ने निर्धारित करने का प्रयास किया है। वह असंभव है। नाइल्स के मत में बर्नार्ड के विचार केवल पश्चिमी परिदृश्य में ही उचित रूप से लागू हो सकते हैं। अन्त में कहा जा सकता है कि इन आलोचनाओं के बावजूद बर्नार्ड का योगदान लोक प्रशासन का सदैव मार्गदर्शन करता रहेगा। उनके मौलिक विचारों ने संगठन को एक नवीन दिशा प्रदान की है।

2.6. हर्बर्ट साइमन (HERBERT SIMON)

2.6.1. परिचय (Introduction)

हर्बर्ट ए. साइमन का जन्म विसकोन्सीन (Wisconsin) में 1916 ई. को हुआ था। साइमन एक प्रसिद्ध अमेरिकन राजनीतिज्ञ एवं समाजशास्त्रीय विद्वान हैं। शिकागो विश्वविद्यालय से उन्होंने राजनीतिशास्त्र में पी.एच.डी. किया। उन्होंने म्युनीसिपल गर्वमेंट से अपने जीवन की शुरूआत की। इसके अतिरिक्त वह समाज विज्ञान रिसर्च कोंसिल (Social Science Research Council) तथा न्यूक्लियर साइन्स और इन्जीनियरिंग कॉरपोरेशन (Nuclear Science and Engineering Corporation) के निदेशक भी रहे। इसके पश्चात वे मनोविज्ञान तथा कम्प्यूटर विज्ञान के प्रोफेसर के रूप में पीट्सबर्ग के कॉरनेगी–मेलोन विश्वविद्यालय में कार्यरत रहें। साइमन ने अलग–अलग प्रशासनिक विषयों पर कई पुस्तकों की रचना की हैं जिन्हें अनेक भाषाओं में अनुवादित भी किया गया है। उनकी कुछ मौलिक रचनाएं निम्नलिखित है–

1) Administrative Behaviour (1947),
2) Fundamental Research in Administrative (1953),
3) Organisations (1958)
4) The New Science of Management Decision (1969) and
5) Human Problem solving (1972)

1978 ई. में नोबेल पुरस्कार द्वारा साइमन को पुरस्कृत किया गया। साइमन ने अपनी पुस्तक **'प्रशासनिक व्यवहार' (Administrative Behaviour)** में कर्नल डर्विल (शास्त्रीय विचारधारा के प्रतिपादक) के विचारों का विस्तारपूर्वक खंडन किया है। इस पुस्तक का उपशीर्षक है– "प्रशासकीय संगठनों मे निर्णयन प्रक्रियाओं का अध्ययन" (A study of

decision-making processes in Administrative organisation)। उन्होंने **चेस्टर बनार्ड** से प्रेरणा लेते हुए, प्रशासनिक संगठनों का व्यवहारिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया। साइमन ने स्वयं के व्यवहारवादी अध्ययनों के आधार पर व्यक्त किया है कि निर्णयन या निर्णय–निर्माण (Decision-making) **प्रशासनिक संगठनों का हृदय** है। संगठनों का मूल संयंत्र निर्णयन है और इसका अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक कार्य को करने से पहले उसका 'चयन' किया जाता है। अतः प्रशासन एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में हर्बर्ट ए. साइमन महत्त्वपूर्ण रहे हैं। वह लोकप्रशासन एवं प्रबन्ध के विकास को नवशास्त्रीय युग से आगे बढ़ाता है। लोक प्रशासन को 'विज्ञान' बनाने का श्रेय **साइमन** को दिया जा सकता है। साइमन इसके (लोक प्रशासन) क्षेत्र में अनुभववाद एवं व्यवहारवाद का प्रमुख प्रवक्ता अथवा प्रयोक्ता माने जाते हैं। यह एक ऐसे आन्दोलन के प्रवर्तक हैं, जिसे **'ज्यूडिश शक्लर'** द्वारा 'निर्णयवाद' या 'विनिश्चयवाद' कहा गया है।

2.6.2. निर्णय की विशेषताएँ (Characteristics of Decision)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निर्णय के प्रमुख लक्षण अथवा विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

1) निर्णय विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का चुनाव करने की प्रक्रिया है।
2) सामान्यतः तर्कपूर्ण एवं विचार–विमर्श के बाद ही कोई निर्णय लिया जाता है।
3) यह मूलतः एक मानवीय प्रक्रिया है।
4) संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निर्णय किए जाते हैं।
5) यह एक बौद्धिक कार्य है।
6) यह प्रशासक की एक सार्वभौमिक पहचान है।
7) निर्णय वास्तविक तथ्यात्मक स्थितियों के समरूप होते हैं।
8) निर्णय नकारात्मक भी हो सकता है। निर्णय न करना भी एक निर्णय है।
9) निर्णय विवादों के समाधान की एक प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है।
10) निर्णय नियोजन का अंग है, अर्थात् नियोजन की समस्त प्रक्रिया निर्णयन पर आधारित है।

2.6.3. साइमन का निर्णय निर्माण सिद्धान्त (Simon's Decision-Making Theory)

साइमन के अनुसार निर्णय लेने का कार्य सामान्य नीति निर्धारण के कार्य तक ही सीमित नहीं होता हैं अपितु वह संगठन के प्रत्येक स्तर तथा प्रत्येक भाग तक व्याप्त होता हैं। जिस प्रकार हृदय मानव शरीर को जीवित रखता हैं तथा मानव शरीर के प्रत्येक भाग तथा गतिविधि से उसका सम्पर्क रहता है उसी प्रकार निर्णयन भी संगठन को जीवित रखता है तथा संगठन के प्रत्येक भाग एवं गतिविधि का वह आधार होता है। अतः साइमन ने निर्णय को प्रशासनिक क्रियाकलापों का केन्द्र भाग (Core of Adiministerative Activities) कहा हैं। साइमन का निर्णय लेने का सिद्धान्त एक वर्णनात्मक सिद्धान्त है जो दुनिया का वास्तविक चित्रण करता है जिसमें निर्णय महत्त्वपूर्ण होते हैं। यहाँ, निर्णय आउटपुट या कीमतों का निर्धारण करेगा। सिद्धान्त में साइमन कहते हैं कि निर्णय विकल्पों की विभिन्न संभावनाओं में से एक सर्वोत्तम विकल्प चुनने की प्रक्रिया है। चुना गया विकल्प कार्रवाई या गैर–कार्रवाई भी हो सकता है। सिद्धान्त मुख्य रूप से किसी निर्णय के महत्त्व और उसे लागू करने के तरीके पर जोर देता है। साइमन की राय के आधार पर, स्थिति पर उपलब्ध जानकारी के आधार पर निर्णय लेने का हमेशा एक बेहतर तरीका हो सकता है। अर्थशास्त्र के शास्त्रीय पहलुओं में मनोवैज्ञानिक कोण

पर विचार नहीं किया गया था, जबकि इस सिद्धान्त में साइमन ने संगठन की समस्याओं को सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा है। उनके लिए निर्णय लेना एक प्रकिया है। जिससे एक निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। किसी जटिल समस्या को हल करने के लिए किसी कर्मचारी की सीमा, तनाव और प्रेरणा जैसे कारकों पर बहुत अधिक निर्भर करती है। सरल शब्दों में, जोखिम या अनिश्चितता की संभावना होने पर किसी व्यक्ति के प्रदर्शन करने की क्षमता या निर्णय अलग (परिवर्तित) होता है। दूसरे शब्दों में, साइमन के अनुसार, निर्णय लेने का व्यवहार 'प्रशासनिक व्यवहार' का एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। सिद्धान्त एक संतोषजनक रणनीति से सम्बन्धित है जो इष्टतम परिणाम के बजाय एक संतोषजनक और पर्याप्त परिणाम पर विचार करता है। यह रणनीति उच्च जटिलताओं को अनदेखा करते हुए न्यूनतम जोखिम और अधिकतम लाभ वाले परिणाम देती है।

2.6.4. साइमन का निर्णय निर्माण प्रक्रिया मॉडल (Simon's Decision-Making Process Model)

हर्बर्ट ए. साइमन 'प्रशासन' की तुलना निर्णय लेने से करते है। वह इस बात पर जोर देते हैं कि निर्णय कैसे लिए जाते हैं और उन्हें अधिक प्रभावी ढंग से कैसे लिया जा सकता है। हर्बर्ट ए. साइमन; निर्णय–निर्माण प्रतिमान के एक प्रसिद्ध प्रतिपादक के अतिरिक्त एक विश्लेषक भी थे। उनके सिद्धान्तों में तार्किकता एवं संवेदनात्मक आयाम समाहित है। हर्बर्ट ए. साइमन के अनुसार, निर्णय–निर्माण प्रशासनिक व्यवहार के विभिन्न स्वरूपों का ही एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। इस निर्णय चक्र में निर्णयकर्ता की अभिचेतना तथा दूरदृष्टि है एवं इसमें मूल्यों व तथ्यों का सम्मिश्रण होता है। अर्थात् निर्णयकर्ता की भूमिका, निर्णय–निर्माण प्रतिमान में महत्त्वपूर्ण होती है।

हर्बर्ट ए. साइमन ने अपने सिद्धान्त निर्णय–निर्माण प्रतिमान के अन्तर्गत निर्णय लेने के लिए तीन महत्त्वपूर्ण चरणों को आवश्यक माना है, जो निम्नवत् हैं–

1) **अन्वेषणात्मक कार्य (Intelligence Activity)**–अन्वेषणात्मक कार्य को हर्बर्ट ए. साइमन के द्वारा निर्णय–निर्माण प्रतिमान में प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। साइमन का मत है कि निर्णय लेने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य समस्या के स्वरूप का अध्ययन करना है, अर्थात् निर्णय प्रक्रिया का प्रथम चरण समस्या को पहचानने, समझने एवं स्वीकार करने जैसे अन्वेषणात्मक कार्य से सम्बन्धित है। अन्वेषणात्मक कार्य के अन्तर्गत तीन उप–चरण महत्त्वपूर्ण हैं–

   i) **सम्बन्ध समस्या को समझना (Understanding Relationship Problems)**–इस उप–चरण में उत्पन्न हुयी समस्या के क्षेत्र, स्तर और प्रकृति की पहचान की जाती है और उसे समझा जाता है। सर्वप्रथम यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि वह समस्या है भी अथवा नहीं। समस्या के क्षेत्र, स्तर और उसकी प्रकृति को निष्पक्षता या निरपेक्षता के साथ पहचानना आवश्यक होता है। प्रशासन सम्बन्ध में यह कार्य सरल नहीं होता है। संगठन में कई समस्याएं परस्पर सम्बन्धित एवं उलझी हुई होती हैं। यदि उन्हें संपूर्णता के परिप्रेक्ष्य में न देखा जाए, तो उनकी समझ में त्रुटि हो सकती है।

   ii) **सम्बन्ध समस्या के इतिहास को जानना (Knowing the History of Relationship Problems)**–इस उपचरण में पुनः उस समस्या के पूर्व इतिहास को समझा या जाना जाता है। चूँकि अनेक समस्याएँ स्वयं के पूर्व निर्णयों और निष्कर्षों से उत्पन्न होती हैं। उन समस्याओं का इतिहास उनसे जुड़ी स्थितियों के पूर्वानुभव स्थिति के निरंतर विकास और परिवर्तित स्थिति को समझने में सहयोग करता है।

iii) **समस्या से उत्पन्न स्थिति का सर्वेक्षण करना (To Survey the Situation Arising from Problem)**–इस चरण में उस समस्या से उत्पन्न स्थिति का अवलोकन तथा सर्वेक्षण किया जाता है। यह सर्वेक्षण निर्णयकर्ता को स्थिति के स्वरूप को समझने में सहायक होता है। स्थिति को वैचारिक रूप से समझने से संगठन के उद्देश्यों, मूल्यों और नीतियों की जानकारी हो जाती है। इससे स्थिति की समझ स्पष्ट हो जाती है और उसका वास्तविक रूप सामने आ जाता है।

स्वरूप निर्धारण (Designing Activity)–हर्बर्ट ए. साइमन ने निर्णय–निर्माण प्रतिमान के अन्तर्गत प्रथम एवं द्वितीय चरण में स्वरूप निर्धारण को आवश्यक माना गया है। इस चरण को तथ्यों की खोज की संज्ञा भी दी जाती है। इस चरण में समस्या का तथ्य क्या है, तथ्य की कसौटी कैसी होनी चाहिए, तथ्यों की जानकारी के स्रोत क्या हैं तथा वे कहाँ तक विश्वसनीय हैं, इस बात का अध्ययन किया जाता है। द्वितीय चरण के भी दो उप–चरण हैं–

i) तथ्यों को संगतिपूर्ण ढंग से समस्या के वातावरण से चुना जाता है।
ii) तथ्यों का मूल्यांकन किया जाता है।

3) **चयन क्रिया (Choice Activity)**–हर्बर्ट ए. साइमन ने निर्णय–निर्माण के अन्तिम एवं तृतीय चरण के रूप में, चयन क्रिया को रखा है। निर्णय–निर्माण के लिए जब विकल्पों को निर्धारित किया जाता है, तब निर्णयकर्त्ता उस एक विकल्प का चयन करता है, जो सर्वाधिक लाभ देने वाला एवं सबसे कम हानि देने वाला होता है। साइमन का मत है कि निर्णय–निर्माण के तृतीय चरण का आधार, प्रथम एवं द्वितीय चरण है। अतः विकल्पों का सही चयन ही निर्णय को प्रभावकारी बनाता है।

एक सर्वोत्तम विकल्प का चयन करने हेतु निम्नलिखित कार्यों की अपेक्षा की जाती हैं–

i) सामान्यतः इस प्रकार का विकल्प चयन किया जाना चाहिए जो अधिकतम लाभ प्रदान कर सके और दोष कम हो सके।
ii) विकल्प अधिक समय तक प्रभावी होने वाला होना चाहिए।
iii) संस्था में उपलब्ध साधनों को भी विकल्प का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए। ताकि संस्था में उपलब्ध साधनों का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।
iv) न्यूनतम प्रयासों पर अधिकतम लाभों की उपलब्धि कराने वाला विकल्प होना चाहिए।

हर्बर्ट ए. साइमन ने निर्णय–निर्माण सिद्धान्त के लिए एक व्यापक एवं संतुलित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनके द्वारा सीमित बौद्धिकता के सिद्धान्त का खण्डन किया गया है और निर्णय–निर्माण प्रक्रिया को तीन चरणों में सम्पन्न करने का वैज्ञानिक सुझाव दिया है।

2.6.5. निर्णय निर्माण में तार्किकता या विवेकशीलता (Rationality or Prudence in Decision-Making)

साइमन ने निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में तार्किक या विवेकशीलता पर अत्यधिक बल दिया है। साइमन तार्किकता को साधन–साध्य की मदद से समझाते है। साइमन के अनुसार एक निर्णय उस स्थिति में तार्किक/विवेकपूर्ण कहा जाता है जब कि वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधनों का चयन किया जाता है। "साधन" शब्द का अर्थ कारणात्मक उद्देश्य अथवा उस स्थति या अवस्था को इंगित करता है जो उद्देश्यों की

श्रृंखला में बाद में आती है। इच्छित उद्देश्य तक पहुँचने के लिए उपयुक्त साधन अपनाने से निर्णय तार्किक होता है। इसके बावजूद भी तार्किकता के इस साधारण परीक्षण में अनेक कठिनाइयाँ आती है। क्योंकि साधनों को साध्य से अलग करना कठिन होता है। वर्तमान में जो साध्य दिखते है वह किसी भविष्यगत साध्य का साधन हो सकते है, इसे ही साध्य साधन–श्रृंखला या क्रमिकता कहा गया है। साइमन का मानना था कि सभी संगठनात्मक निर्णय तर्कसंगतता पर आधारित होते हैं। उनके अनुसार कोई भी निर्णय तभी उचित माना जाएगा जब उसके उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उचित साधनों का उपयोग किया जाएगा। उनके विचार में किसी भी प्रशासनिक निर्णय की तर्कसंगतता एक सम्बन्धित या परूक मामला है।

साइमन कहते है कि साधन–साध्य की क्रमिकता कभी–कभी ही एकीकृत और पूरी तरह से जुड़ी हुई श्रृंखला होती है। प्रायः संगठन की गतिविधियाँ और उद्देश्यों के बीच सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होते है या उद्देश्य पूरी तरह से तय किए हुए नहीं होते या उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए चुने गये साधनों में अन्तर्विरोध और आन्तरिक द्वन्द्व होता है। इसलिए साधन–साध्य विश्लेषण करते समय तीन बातों पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए, जो इस प्रकार है–

1) विशेष व्यवहार के विकल्पों के चयन से जो साध्य प्राप्त किये जाते है वे प्रायः अपूर्ण और असत्य उल्लिखित होते है।
2) वास्तविक परिस्थितियों में साधनों को साध्य से पूरी तरह से अलग नहीं किया जा सकता है।
3) साधन–साध्य तकनीक के कारण निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में समय तत्व की भूमिका धुँधली हो जाती है।

2.6.6. निर्णय निर्माण में "तथ्यात्मक" एवं "मूल्यात्मक" तत्व (Factual and Evaluative Elements in Decision-Making)

निर्णय लेने में तार्किकता की सराहना करते हुए साइमन कहते हैं कि, प्रत्येक निर्णय में दो प्रकार के तत्व निहित होते है, जिनको "तथ्यात्मक" और "मूल्यात्मक" तत्व कहा जाता है। यह निर्णय के आधार होते है। कोई भी निर्णय किसी विशेष समस्या के लिए किया जाता है और उसकी प्रकृति निश्चित नहीं होती तथा वह बदलती रहती है। प्रशासक द्वारा लिए जाने वाले निर्णय कुछ आधारभूत तथ्यों एवं सूचनाओं पर आधारित होते हैं। तथ्य एवं मूल्य प्रशासनिक तथा नीतिगत निर्णयों में अन्तर को स्पष्ट करते है।

प्रशासनिक निर्णय कार्यक्रम सम्बन्धी निर्णयों को कहा जाता है। ये निर्णय दिन प्रतिदिन के कार्य संचालन से सम्बन्धित होते है जो तथ्यों पर आधारित होते है। तथ्यों का परीक्षण किया जा सकता है कि वे सही है या गलत, नीतिगत निर्णय प्रशासकीय नीति को प्रतिबिम्बित करने वाले होते है। अतः ये निर्णय मूल्यों से अधिक प्रभावित होते है। प्रत्येक संगठन के अपने मूल्य होते है, जिन्हें प्रशासन बनाए रखता है।

उन्होंने तथ्यों और मूल्यों को स्पष्ट करते हुए कहा है कि तथ्य और मूल्य प्रशासनिक नीति और निर्णयों के बीच अंतर को स्पष्ट करते हैं। तथ्य किसी वास्तविक स्थिति के बारे में किया गया कथन होता है, जो "क्या है" को स्पष्ट करता है। जबकि मूल्य किसी के प्रति प्राथमिकता क्रम को व्यक्त करते है तथा "अच्छा" अथवा "बुरा" आदि प्रतीक बातों से सम्बन्धित होते है। साइमन निर्णय को इन तथ्यात्मक और मूल्यात्मक तत्वों का ही योग मानते है।

2.6.7. निर्णय निर्माण के प्रकार (Types of Decision-Making)

साइमन के निर्णय–निर्माण सिद्धान्त के आधार पर संगठनात्मक निर्णय दो प्रकार के होते हैं निश्चित निर्धारित निर्णय (Programmed Decisions) तथा अनिश्चित और अनिर्धारित निर्णय (Unprogrammed Decision) की संज्ञा देता है प्रत्येक निर्णय की विस्तारपूर्वक व्याख्या नीचे की गई है–

1) **निश्चित निर्णय (Programmed Decision)**–साइमन के अनुसार निश्चित निर्णय वे निर्णय होते है जो दिन प्रतिदिन के कार्यो से सम्बन्धित होते है ये अपनी प्रकृति में नैत्यिक (Routine) तथा बार–बार लिये जाने वाले निर्णय होते हैं। हर सरकारी नियम या उपनियम एक कार्यक्रम है और उसके क्रियान्वयन से एक निश्चित निर्णय प्राप्त होता है। प्रत्येक मामले में निर्णय के लिए अलग अलग विचार की आवश्यकता नहीं होती हैं तथा उन समस्त मामलों में निर्णय एक ही प्रक्रिया के आधार पर ले लिया जाता हैं जैसे– अवकाश की स्वीकृति, विद्यालयों में प्रवेश देने सम्बन्धी मामले, ड्राईविंग लाईसेंस जारी करना इत्यादि।

इस तरह के निर्णयों के लिए सामान्यतः संगठनों द्वारा प्रपत्र या फार्म का निरूपण कर लिये जाते हैं तथा उनकी कतिपय बातों को पूर्ण करने पर निर्णय उसी अनुरूप पक्ष अथवा विपक्ष में दे दिया जाता हैं। प्रशासन संगठनों में, कार्यक्रम का निर्णय कर्मचारियों को भुगतान करने, आवेदन स्वीकार करने और रिपोर्ट भेजने आदि के लिए किया जाता है। साइमन का मानना था कि कार्यक्रम का निर्णय लेने में पारम्परिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

2) **अनिश्चित निर्णय (Unprogrammed Decisions)**–अनिश्चित निर्णय से यह तात्पर्य है कि निर्देश देने के लिए किसी भी प्रकार का नियम या उपनियम या रिवाज नहीं होता है। ये निर्णय योजनाबद्ध नहीं होते और किसी निश्चित पैटर्न का पालन नहीं करते। ऐसी स्थिति में निर्णय अपने प्रयत्नों से ही लेना पड़ता है अर्थात् ऐसे प्रत्येक मामले पर अलग से विचार किया जाना आवश्यक होता है।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि गैर–निर्णयात्मक निर्णयों के लिए अधिक रचनात्मकता, धैर्य और विश्लेषणात्मक शक्ति की आवश्यकता होती है। इस श्रेणी में संगठन के नए कार्यों एवं परियोजनाओं को शामिल किया जाता है। जैसे किसी व्यापार को बंद करना, व्यापार को किसी नए स्थान पर स्थानान्तरित करना आदि।

साइमन के अनुसार किसी संगठन में निर्णय लेने का काम निचले स्तर पर होता है न लेने वाले निर्णय उच्च स्तर पर होते है। सत्य तो यह है कि मानव जीवन में कोई निर्णय पूरी तरह अनिश्चित नहीं होता, जीवन में पर्याप्त ज्ञान और अनुभव स्वतः ही संचित होता जाता है। अनिश्चित परिस्थितियों का सामना करने के लिए मनुष्य के मस्तिष्क में एक रूपरेखा (जो चाहे जैसी भी हो) पहले से ही विद्यमान होती है। इसी प्रकार कोई पूर्ण निश्चित निर्णय सम्भव नहीं है।

2.6.8. निर्णय निर्माण प्रक्रिया की आलोचनाएँ (Criticism of Decision-Making Process)

साइमन का निर्णय निर्माण सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है परन्तु वह आलोचना से परे नहीं है। आलोचकों द्वारा की गई कुछ आलोचनाएँ निम्नवत् हैं–

1) हर्बर्ट साइमन ने अपने निर्णय निर्माण सिद्धान्त में तथ्यों व मूल्यों का समन्वय किया है।
2) साइमन ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं में संवेदना को भी आधार बनाया है।

3) आलोचकों का मानना है कि साइमन ने द्विविभाजन सिद्धान्त को नई परिस्थिति में पुनर्जीवित करने का प्रयास किया है।
4) यह सिद्धान्त बहुत ही सामान्य है एवं इनकी बौद्धिकता की अवधारणा भी आलोचनीय है।
5) आलोचकों का मानना है कि निर्णय निर्माण सिद्धान्त में जिन चरणों का विश्लेषण किया है वह निर्णय लेने से सम्बन्धित है न कि परिणाम से।
6) अर्गिस का मानना है कि हर्बर्ट साइमन तर्क शब्दों का प्रयोग करके रुढ़ि, निर्णयन एवं अंतर्बोध में विश्वास की भूमिका को मान्यता नहीं देते हैं।

उपरोक्त आलोचना के अतिरिक्त हर्बर्ट साइमन के योगदान को प्रशासनिक सिद्धान्त के विकास हेतु महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

2.7. अभ्यास प्रश्न (EXERCISE)

2.7.1. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1) नौकरशाही का अर्थ एवं परिभाषा बताइए।
2) मानवतावादी/व्यवहार काल का अग्रदूत किसे माना जाता है?
3) मानवीय सम्बन्ध से आप क्या समझते है?
4) व्यवहारवादी सिद्धान्त से क्या आशय है?
5) हर्बर्ट साइमन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2.7.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1) नौकरशाही के प्रकार बताइए।
2) मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
3) नौकरशाही के उदय के कारणों को संक्षिप्त में समझाइए।
4) मैरी फोलेट के विचारों की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
5) एल्टन मेयो के प्रयोग को संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
6) चेस्टर बर्नार्ड के योगदान का नामोल्लेख कीजिए।
7) निर्णय निर्माण के प्रकारों को संक्षिप्त में लिखिए।

2.7.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) मैक्स वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
2) नौकरशाही का महत्त्व समझाते हुए इसकी आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
3) नौकरशाही से आप क्या समझते हैं? नौकरशाही के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4) मैरी फोलेट का परिचय देते हुए उनके प्रशासनिक विचारों को उल्लेखित कीजिए।
5) एल्टन मेयो का संक्षिप्त परिचय लिखिए। एल्टन मेयो के प्रयोग पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
6) व्यवहारवादी सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है? व्यवहारवादी सिद्धान्त का लोक प्रशासन पर प्रभावों का वर्णन कीजिए।
7) चेस्टर बर्नार्ड का परिचय लिखिए। चेस्टर बर्नार्ड के योगदानों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए।
8) हर्बर्ट साइमन की दो रचनाएँ बताइए। हर्बर्ट साइमन का निर्णय निर्माण प्रक्रिया मॉडल का उल्लेख कीजिए।

इकाई–3

अभिप्रेरणा सिद्धान्त एवं सहभागी प्रबन्धन
MOTIVATION THEORIES AND PARTICIPATIVE MANAGEMENT

3.1. अभिप्रेरणा (MOTIVATION)

3.1.1. अभिप्रेरणा की अवधारणा (Concept of Motivation)

अभिप्रेरणा एक परिकल्पना (Hypothesis) पर आधारित प्रक्रिया है जो प्राणी के व्यवहार से सम्बन्ध रखती है। अभिप्रेरणा शब्द को प्राणी के सभी प्रकार की अभिप्रेरणात्मक क्रियाओं को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। व्यवहार को सक्रिय रुप से निर्देशित करने के लिए कुछ कारकों की आवश्यकता होती है जिन्हें अभिप्रेरणात्मक कारक कहते हैं। व्यक्ति का व्यवहार कुछ कारकों द्वारा ही पथ प्रदर्शित तथा निर्देशित होता है। यह एक आन्तरिक शक्ति से सम्बन्धित है जो व्यक्ति को उत्तेजित करती है तथा इसे देखा नहीं जा सकता है। इस पर आधारित व्यवहार को देखकर केवल इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अभिप्रेरणा एक मनोवैज्ञानिक घटना है जो व्यक्ति की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है। यह एक लक्ष्य उन्मुख व्यवहार को प्रारम्भ करता है और लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

3.1.2. अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Motivation)

अभिप्रेरणा का अंग्रेजी रूपान्तरण 'Motivation' है तथा इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द **'Motum'** शब्द से हुई है जिसका तात्पर्य क्रमशः **Move, Motor** तथा **Motion,** अर्थात् गति से लगाया जाता है। सामान्य अर्थ में प्रेरणा से तात्पर्य उस अवस्था से होता है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों में अभिप्रेरणा से तात्पर्य उस प्रेरक (Motive) से होता है जो व्यक्ति को विशेष लक्ष्य के प्रति व्यवहार करने को उत्प्रेरित करता है। अभिप्रेरणा से तात्पर्य आन्तरिक शक्ति से है जो व्यक्ति को उत्तेजित करती है तथा इसे देखा नहीं जा सकता है। इस पर आधारित व्यवहार को देखकर केवल इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

डॉल्टन ई. मैक्फारलैंड के अनुसार, "अभिप्रेरणा एक विधि है जिसमें संवेगों, उद्वेगों, इच्छाओं, आकांक्षाओं प्रयासों अथवा आवश्यकताओं के माध्यम से मानवीय आचरण का निर्देशन नियंत्रण तथा स्पष्टीकरण किया जाता है।"

According to Dalton E. McFarland, "Motivation refers to the way in which urges, drives, desires, aspirations, strivings or needs direct, control or explain the behaviour of human beings".

एस. पी. रॉबिन्स के अनुसार, "अभिप्रेरणा संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उच्च स्तर के प्रयास करने की इच्छा है जो कि व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रयास से सम्बन्धित है।"

According to S.P. Robbins, "Motivation is the willingness to exert high levels of effort toward organisational goals, conditioned by the effort and ability to satisfy some individual need".

लिकर्ट के अनुसार, "अभिप्रेरणा प्रबंधन का वह मूल होता है जो यह दर्शाता है कि प्रत्येक मनुष्य उसे आमने–सामने के समूहों में एक मूल की भावना प्रदान करता है जो उसके लिए महत्त्वपूर्ण होता है। एक पर्यवेक्षक को अपने व्यक्तिगत मूल्य की गरिमा एवं मान्यता के साथ व्यक्तियों का समाधान करने का प्रयास करना चाहिए।"

According to Likert, "Motivation is the core of management which shows that every human being gives him a sense of worth in face-to-face groups which are most important to him. A supervisor should strive to treat individuals with dignity and recognition of their personal worth".

3.1.3. अभिप्रेरणा की प्रक्रिया (Process of Motivation)

अभिप्रेरणा की प्रक्रिया में विभिन्न चरण शामिल है जैसा कि निम्न चित्र में दर्शाया गया है–

चित्र 3.1–अभिप्रेरणा की प्रक्रिया (Process of Motivation)

1) **उद्देश्य (Motive)**–अभिप्रेरणा की प्रक्रिया व्यक्ति के किसी कार्य को करने के उद्देश्य के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है। उद्देश्य व्यवहार को प्रोत्साहित करते है तथा उस व्यवहार के पीछे का कारण प्रदान करते हैं। बड़े स्तर पर उद्देश्य व्यक्तिगत होते है तथा यह एक व्यक्ति की विचार प्रक्रिया को व्यक्त करते है। इससे व्यक्ति को निर्देशन प्राप्त होता रहता है।

2) **व्यवहार (Behaviour)**–जब कोई व्यक्ति व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित होता है तो वह सामूहिक रूप से अपने आचरण का गठन करता है। एक व्यक्ति के उद्देश्य उसके लक्ष्यों को प्रदर्शित करते है। कई बार ये उद्देश्य असमानता की स्थिति उत्पन्न करते है क्योंकि व्यक्ति की भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति असन्तुलित हो सकती है। अतः जो व्यवहार व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में निर्देशित करता है, वह इन दोनों के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

3) **लक्ष्य (Goal)**–एक व्यक्ति का लक्ष्य विभिन्न कारकों जैसे रीति–रिवाज एवं नैतिकता, उसकी आनुवंशिक सम्भावनाओं, व्यक्तिगत सीख एवं अनुभव तथा सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से प्रेरित होता है।

4) **तनाव में कमी (Tension Reduction)**–एक संगठन में, कर्मचारी संगठन के सांस्कृतिक वातावरण तथा अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के दायित्व के कारण विकास करने के लिए प्रेरित होते है। ये प्रेरणा कर्मचारियों की नौकरी के साथ–साथ उनके निजी एवं प्रशासनिक जीवन को भी प्रभावित करते है।

3.1.4. अभिप्रेरणा के प्रकार (Types of Motivation)

अभिप्रेरणा के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं–

1) **सकारात्मक अभिप्रेरणा *बनाम* नकारात्मक अभिप्रेरणा (Positive Motivation *versus* Negative Motivation)**

i) **सकारात्मक अभिप्रेरणा (Positive Motivation)**–इस प्रकार की अभिप्रेरणा संगठन में सकारात्मक एवं प्रसन्नचित्त वातावरण विकसित करती है। सकारात्मक अभिप्रेरणा कर्मचारियों की क्षमताओं को पहचानने में सहायता करती है तथा उन क्षमताओं को पूर्ण करने में सहायक होती है। जब एक संगठन इसे प्राप्त करने के लिए पुरस्कार एवं मान्यता प्रदान करता है तब कर्मचारी सकारात्मक रूप से प्रेरित होकर अनुभव करते है। पुरस्कार मौद्रिक एवं गैर–मौद्रिक हो सकता है।

ii) **नकारात्मक अभिप्रेरणा (Negative Motivation)**–लोगों में भय विकसित करके भी आवश्यक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। लोग किसी विशेष कार्य को करने या न करने के परिणामों से डरते हैं तथा सही मार्ग का अनुसरण करते है। नकारात्मक अभिप्रेरणा की विभिन्न त्रुटियाँ भी है। भय से क्रोध उत्पन्न होता है तथा व्यक्ति कार्य में अपनी रुचि खो देता है। हालांकि इसके परिणामस्वरूप, कार्यक्षमता प्रभावित होती है इसलिए इस विधि को कम से कम उपयोग करना चाहिए।

2) **तर्कसंगत अभिप्रेरणा *बनाम* भावनात्मक प्रेरणा (Rational Motivation *versus* Emotional Motivation)**

i) **तर्कसंगत अभिप्रेरणा (Rational Motivation)**–तर्कसंगत व्यक्ति वह होता है जो सर्वोत्तम उपलब्ध विकल्पों का चयन करने से पहले सभी उपलब्ध विकल्पों के लाभ और दोषों का विश्लेषण करता है।

ii) **भावनात्मक अभिप्रेरणा (Emotional Motivation)**–भावनात्मक उद्देश्य वे लक्ष्य होते हैं जिन्हें केवल व्यक्ति की भावनाओं पर विचार करके चयनित किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्तिगत मानदंड, जैसे– डर, गर्व, स्थिति, प्यार, सम्मान इत्यादि, लक्ष्य के चयन को प्रभावित करते हैं।

3) **प्राथमिक अभिप्रेरणा *बनाम* द्वितीयक अभिप्रेरणा (Primary Motivation *versus* Secondary Motivation)**

i) **प्राथमिक अभिप्रेरणा (Primary Motivation)**–इसे जैविक अभिप्रेरणा भी कहा जाता है, प्राथमिक अभिप्रेरणा का उचित शारीरिक अस्तित्व होता है। जैविक रूप से, मनुष्यों के अस्तित्व के लिए यह अभिप्रेरणा आवश्यक है। उत्तेजना में वृद्धि या कमी, कम भूख, असुविधा और प्यास और उत्तेजित इंद्रियाँ (स्पर्श, स्वाद, गंध, आदि) प्राथमिक प्रेरक आवश्यकताओं का आधार हैं।

ii) **द्वितीयक अभिप्रेरणा (Secondary Motivation)**–इसे मनोवैज्ञानिक सामाजिक अभिप्रेरणा भी कहा जाता है, समय के साथ द्वितीयक अभिप्रेरणा को सीखा जाता है। इन उद्देश्यों में कोई भौतिक आधार नहीं होता है, परन्तु व्यक्तित्व विकास में सहायता करते हैं। एक व्यक्ति के जीवन चक्र के दौरान माध्यमिक उद्देश्यों का विकास होता है। उन्हें सामाजिक उद्देश्यों एवं मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों में विभाजित किया जा सकता है।

a) **सामाजिक उद्देश्य (Social Motives)**–ये उद्देश्य व्यक्ति को बाहर निकलने एवं लोगों से मिलने तथा गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रेरित करते हैं जो आनन्द एवं संतोष की भावना उत्पन्न करते हैं।

b) **मनोवैज्ञानिक उद्देश्य (Psychological Motives)**–ये उद्देश्य व्यक्तिगत होते हैं और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होते है। इसमें आत्म–सम्मान, आत्म–प्रदर्शन, आत्म–सुरक्षा, आत्म–विश्वास आदि शामिल होता है।

4) **आन्तरिक अभिप्रेरणा *बनाम* बाह्य अभिप्रेरणा (Intrinsic Motivation *versus* Extrinsic Motivation)**

i) **आन्तरिक अभिप्रेरणा (Intrinsic Motivation)**–इस प्रकार की अभिप्रेरणा आन्तरिक रूप से उत्पन्न होती है तथा इसमें वित्तीय पुरस्कार अथवा पदक्रम जैसी किसी भी बाहरी कारक की आवश्यकता नहीं होती है। एक कर्मचारी अपने कार्य पर इसलिए टिके रह सकता है क्योंकि उसे इससे सन्तुष्टि, आत्म–विनियमन एवं विशेषज्ञता प्राप्त करने की इच्छा होती है तथा वह यह अनुभव कर सकता है कि कार्य मनोरंजक है, या कार्य करना गर्व की बात है या प्रतिदिन का कार्य रोचक है। ऐसे कर्मचारी कार्य करने के लिए आन्तरिक रूप से प्रेरित होते है। अतः ऐसा व्यवहार जो किसी बाहरी पुरस्कार के परिणामस्वरूप नहीं होता है, उसे आन्तरिक अभिप्रेरणा कहा जाता है।

ii) **बाह्य अभिप्रेरणा (Extrinsic Motivation)**–बाहरी कारकों से उत्पन्न प्रेरणा को बाह्य अभिप्रेरणा कहा जाता है। पुरस्कार एवं मान्यता जैसे कारक सबसे साधारण बाहरी कारक है। ये कारक कार्य की तुलना में अधिक संतोष प्रदान करते है। ये कारक व्यक्ति को वांछित परिणाम की ओर प्रेरित करते है। अग्रणी या प्रबन्धक अपने व्यवहार के माध्यम से इस प्रकार की अभिप्रेरणा देने में सक्षम होते है। अच्छा नेतृत्व अभिप्रेरणा के पीछे का एकमात्र कारण नहीं है।

प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों को भयभीत या धमकाया जा सकता है तथा वे गम्भीर परिणाम से बचने के लिए अपने निष्पादन में सुधार कर सकते है। इस प्रकार की प्रेरणा को नकरात्मक सुदृढ़ीकरण कहा जाता है। लोग बाह्य मान्यता, मौद्रिक पुरस्कार एवं लाभ से भी प्रेरित हो सकते है। वे व्यक्ति जो बाहरी कारकों से प्रेरित होते हैं वे अपनी मूल आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए कार्य को निष्पादित करने के दायित्व को अनुभव करते है। बाह्य प्रेरणा उस समय उत्पन्न होती है जब किसी व्यक्ति को पुरस्कार दिया जाता है जो कि सामान्य पारिश्रमिक का भाग नहीं होता है।

3.1.5. अभिप्रेरणा तकनीक (Motivation Techniques)

अभिप्रेरणा की तकनीक निम्नलिखित हैं–

1) **वित्तीय प्रोत्साहन (Financial Incentives)**–वित्तीय प्रोत्साहन अभिप्रेरणा की पहली तकनीक है क्योंकि धन उपलब्धि का एक उपाय है। परिणामस्वरूप, यह मनोवैज्ञानिक सुरक्षा तथा स्थिति की मांगों को पूरा करता है, जैसे धन लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करता है। कर्मचारियों को उनकी मजदूरी तथा वेतन से बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

2) **कार्य में विस्तार (Job Enlargement)**–इस तकनीक के अन्तर्गत निदर्शन कार्यों को सम्बन्ध करके किसी कार्य को पूरा करने के लिए आवंटित कार्यों की संख्या में वृद्धि की जाती है। परिणामस्वरूप, कार्य विस्तार में अधीनस्थों को प्रेरित करने की प्रबल संभावना होती है। इसे क्षैतिज रूप से अग्रणी कार्य के रूप में भी जाना जाता है।

3) **कार्य में वृद्धि (Job Enrichment)**–इसे ऊर्ध्वाधर नेतृत्व के रूप में भी जाना जाता है। उत्तरदायित्व तथा उन्नति के अवसरों का विस्तार करके, यह तकनीक कार्य को

और अधिक मांग एवं पूर्ति करने वाला बनाती है। इस प्रकार की प्रेरक रणनीति में कम पर्यवेक्षण तथा अधिक आत्म–मूल्यांकन के साथ योजना तथा नियन्त्रित कर्तव्यों को कार्य में जोड़ा जाता है।

4) **कार्य परिवर्तन (Job Rotation)**–यह एक व्यक्ति को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की प्रक्रिया है। इस प्रकार के कार्य परिवर्तन का अर्थ यह नहीं है कि कर्मचारी अपने कार्य को खो देंगे; बल्कि, कर्मियों को एक पद से दूसरे पद पर स्थानान्तरित किया जाता है। यह विभिन्न व्यवसायों में योग्यता के विकास में सहायता करता है, जो कर्मियों के विकास में सहायक होता है।

5) **सहभागिता (Participation)**–नियोजन तथा निर्णय लेने में कर्मचारियों की भागीदारी को सहभागिता कहा जाता है। यह कर्मचारियों को ऐसा अनुभव कराता है कि वे प्रशासन के लिए एक संपत्ति हैं, जो समस्या–समाधान के विचारों के विकास में सहायता करता है।

6) **प्राधिकरण का प्रत्यायोजन (Delegation of Authority)**–अधीनस्थों को अधिकार का प्रत्यायोजन, जो किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए कर्मचारियों को शक्तिशाली मनोबल प्रदान करके संगठन में कार्य करने के लिए प्रतिबद्धता की भावना के विकास में सहायता करता है, प्राधिकरण के प्रत्यायोजन के रूप में परिभाषित किया गया है।

7) **कार्य जीवन की गुणवत्ता (Quality of Work Life)**–यह कर्मचारियों तथा संगठन के समग्र कार्य वातावरण के मध्य परस्पर क्रिया है। यह बढ़े हुए परिणाम कार्य की प्रसन्नता तथा कर्मचारियों की भागीदारी के साथ कर्मचारियों की आवश्यकताओं एवं कल्याण को संबंद्ध करती है। यह प्रत्याभूति प्रदान करता है जिससे उच्च स्तर का लाभ प्राप्त किया जाता है।

8) **उद्देश्यों द्वारा प्रबंधन (Management by Objectives)**–इसका उपयोग एक अभिप्रेरक तथा प्रदर्शन आत्म–नियंत्रण के लिए एक उपकरण के रूप में किया जाता है। पर्यवेक्षकों तथा अधीनस्थों द्वारा इस रणनीति का उपयोग करके व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

   प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है, जिससे संगठन के उद्देश्य तथा दृष्टि को पूरा करने के लिए आवश्यक कौशल समूह को निर्धारित करना सरल हो जाता है। यह संगठन की प्रभावशीलता में भी सहायता करता है।

9) **व्यवहार संशोधन (Behaviour Modification)**–व्यवहार संशोधन अंतिम अभिप्रेरक तकनीक है। यह कर्मचारियों में व्यवहार को परिवर्तित करने के लिए वांछित प्रकार से कार्य करने के लिए सकारात्मक अभिप्रेरणा उत्पन्न करता है।

3.1.6. अभिप्रेरणा का महत्त्व (Significance of Motivation)

अभिप्रेरणा निम्नलिखित प्रकार से महत्त्वपूर्ण है–

1) **व्यक्ति के कार्य को गति प्रदान करता है (Sets the Action of Individuals in Motion)**–प्रत्येक संगठन के पास भौतिक, मानवीय एवं वित्तीय संसाधन होते हैं जिसका उपयोग लोगों की क्षमता एवं उत्साह पर आधारित होता है। अभिप्रेरणा मानव संसाधन को अपने लक्ष्य के प्रति कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। यह कर्मचारियों को कार्य करने के लिए इच्छुक बनाता है तथा प्रबन्धकों को अपने संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने में सहायता करता है।

2) **निष्पादन क्षमता में सुधार (Improves the Performance Efficiency)**—अभिप्रेरणा से कर्मचारियों के निष्पादन में सुधार होता है क्योंकि निष्पादन कर्मचारी की क्षमता एवं बेहतर निष्पादन करने की उसकी उत्सुकता दोनों पर निर्भर करता है। कार्य करने की क्षमता तथा कार्य करने की उत्सुकता के मध्य अन्तर होता है तथा अभिप्रेरणा एक वाह्यकारी कारक के रूप में कार्य करती है। यह उत्पादन में वृद्धि करता है, संचालन की लागत को कम करता है तथा कर्मचारियों की दक्षता को नई ऊँचाइयों पर ले जाता है।

3) **संगठनात्मक लक्ष्यों की पूर्ति सुनिश्चित करता है (Ensures Accomplishment of Organisational Goals)**—संगठनात्मक लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्रबन्धन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है तथा सौंपे गए कार्यों को पूरा किया जा सकता है। यदि वे कर्मचारियों को प्रेरित करने में असफल रहते हैं तो नियोजन, आयोजन तथा नियुक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में असफल रहते हैं। प्रबन्धन अपने कर्मचारियों का विश्वास हासिल कर सकते हैं तथा निष्पक्ष पुरस्कार पद्धति का उपयोग करके कर्मचारियों की आवश्यकताओं को पूरा करके कुशलतापूर्वक संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं।

4) **सुखद एवं सहायक सम्बन्ध का निर्माण करता है (Creates Pleasant and Supportive Relationship)**—मौद्रिक पुरस्कार, कर्मचारियों को अपने संवर्धन सम्भावनाओं के लिए सर्वोत्तम विधि से आगे बढ़ने तथा उत्कृष्ट प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित करते हैं, यह कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनके माध्यम से संगठन अपने कर्मचारियों को बेहतर निष्पादन के लिए प्रेरित करते हैं। यह नियोक्ता एवं कर्मचारियों के मध्य सुखद एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देते हैं। यह कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाते हैं। यदि कर्मचारियों को उचित प्रकार से प्रेरित किया जाता है तो वे परिवर्तन के प्रति कम विरोधी होते है तथा संगठनात्मक विकास का समर्थन करते हैं।

5) **कर्मचारियों के प्रतिधारण में सहायता करते हैं (Helps in Employee Retention)**—अभिप्रेरणा कर्मचारियों को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि यह उनके आत्म–विश्वास में वृद्धि करते हैं तथा संगठन के प्रति उनकी निष्ठा एवं प्रतिबद्धता को बढ़ाते हैं। यह संगठन को अनुपस्थिति की दर को कम करके स्थिर बनाता है। कर्मचारियों की प्रतिभा एवं ज्ञान का उपयोग संगठन एवं कर्मचारियों के पारस्परिक लाभ के लिए सर्वोत्तम सम्भव विधि से किया जा सकता है। यह संगठन में सुधार करता है तथा पात्र एवं अनुभवी लोगों को आकर्षित करने में सहायता करता है।

6) **संगठनात्मक परिवर्तन की स्वीकृति में सहायक है (Helps in Acceptance of Organisational Changes)**—चूँकि प्रशासन समाज का एक भाग होता है इसलिए समाज में होने वाले परिवर्तन को अपने कार्य में हुए परिवर्तनों को शामिल करने के लिए उत्तरदायी बनाता है। कर्मचारी समय के साथ हुए परिवर्तनों का विरोध करते हैं। ऐसे परिदृश्य में, अभिप्रेरित कर्मचारी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे परिवर्तन को आसानी से स्वीकार करते हैं तथा यह संगठन को सफलतापूर्वक आगे बढ़ने में सहायता करते हैं।

3.1.7. अभिप्रेरणा के सिद्धान्त (Theories of Motivation)

वर्तमान में, अधिकांश संगठन कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए विभिन्न प्रेरक विधियों और कार्यक्रमों का उपयोग करते हैं। विभिन्न प्रेरक मॉडल और रणनीतियों की उपलब्धता ने संगठनों को विभिन्न विकल्प प्रदान किए हैं जो उनके कार्यकर्ताओं को प्रेरित

करने के लिए उनके द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। अभिप्रेरक सिद्धान्तों का वर्णन निम्नानुसार किया गया है–

1) **अंतर्वस्तु सिद्धान्त (Content Theories)**–एक संगठन में कार्य करने वाले प्रत्येक कर्मचारी की कुछ आवश्यकताएँ एवं उद्देश्य होते हैं जिसे वे प्राप्त करना चाहते हैं। उनके पास उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ सीमा तक सामर्थ्य होता है जो उनकी सन्तुष्टि को पूर्ण कर सकते है। ये कारक एक कर्मचारी को अपने कार्य में कठोर परिश्रम करने के लिए प्रेरित करते है। कुछ प्रसिद्ध **अभिप्रेरणा सिद्धान्त मैस्लो की आवश्यकता– प्राथमिकता सिद्धान्त, हर्जबर्ग की अभिप्रेरक**–अनुरक्षक तत्वों का सिद्धान्त, **एल्डरफेर ई.आर.जी.** सिद्धान्त है। अन्तर्वस्तु सिद्धान्त के अनुसार, "अभिप्रेरणा की एक सर्वोत्तम तकनीक होती है जिसे सामान्यतः सभी कर्मचारियों के लिए उपयोग किया जा सकता है। अन्तर्वस्तु सिद्धान्त मुख्य रूप से कर्मचारियों की आवश्यकता एवं उनके प्रेरक कारकों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस प्रकार यह सिद्धान्त प्रबन्धकों के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि इनके उपयोग से प्रबन्धक श्रमिकों को प्रेरित करते है और इस प्रकार संगठनात्मक कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

2) **प्रक्रिया सिद्धान्त (Process Theories)**–अन्तर्वस्तु सिद्धान्त के विपरीत, **वरूम की प्रत्याशा सिद्धान्त, समानता सिद्धान्त, पोर्टर तथा लॉलर मॉडल** इत्यादि जैसे सिद्धान्त यह निर्धारित करने पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते है कि कर्मचारियों में अभिप्रेरणा प्रक्रिया किस प्रकार से प्रारम्भ होती है। साधारण शब्दों में, ये सिद्धान्त उस सम्पूर्ण प्रक्रिया की व्याख्या करते है जिसका पालन कर्मचारी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते है। इस प्रक्रिया में कर्मचारी की शुरूआत उनकी स्थिरता और कर्मचारी के आन्तरिक तनाव को कम करने तथा वांछित लक्ष्य तक पहुँचने हेतु उनके व्यवहार के निर्देशित करने का तरीका शामिल है। कर्मचारियों की आवश्यकताओं को महत्त्व देने के बजाय प्रक्रिया सिद्धान्त उन लक्ष्यों एवं विधियों पर बल देता है जिनके द्वारा कर्मचारियों को इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। एक व्यक्ति की अभिप्रेरणा प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले आन्तरिक कारकों की पहचान करना इन सिद्धान्तों का मुख्य उद्देश्य है। इन सिद्धान्तों के अनुसार, अभिप्रेरणा पूरी तरह से एक व्यक्ति की सोच, दृष्टिकोण एवं विचारधारा पर आधारित है तथा इस प्रकार, अभिप्रेरणा को एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया माना जाता है।

3) **अन्य सिद्धान्त (Other Theories)**–इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त कई अन्य सिद्धान्त है जैसे मैक्ग्रेगर का X एवं Y सिद्धान्त, लक्ष्य निर्धारण सिद्धान्त इत्यादि।

3.2. अब्राहम एच. मैस्लो (ABRAHAM H. MASLOW)

3.2.1. परिचय (Introduction)

मैस्लो का पूरा नाम अब्राहम हेरोल्ड मैस्लो था। जिनका जन्म 1 अप्रैल 1908 ई. को ब्रुकलिन, न्यूयॉर्क में हुआ था। वे मूलतः एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे एवं दार्शनिक थे जो अपने विचारों के लिए जाने जाते थे। उनके माता–पिता रूस के गैर–रूढ़िवादी यहूदी थे, जो अपने बच्चों के बेहतर भविष्य को प्राप्त करने की आशा के साथ आए थे। मैस्लो कभी भी बहुत मिलनसार बालक नहीं था। उन्होंने अपनी शैक्षणिक सफलता के लिए कठिन परिश्रम किया। इसके लिए उसने किताबों की शरण ली और थोड़े ही समय में उन्होंने कई पुस्तकों का अध्ययन कर लिया।

मैस्लो ने न्यूयॉर्क के सिटी कॉलेज में कानून की पढ़ाई की। एक दुखी एवं एकाकी बचपन तथा शिक्षा जगत में एक सीधी–सादी यात्रा के बाद, मैस्लो को एक मार्गदर्शक, गुरु हैरी हार्लो मिले जिसने उनके काम पर विश्वास किया तथा उन्हें डॉक्टरेट की थीसिस पूरी करने के लिए प्रोत्साहित किया। मनोविज्ञान में रुचि विकसित होने के बाद, उन्होंने विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और मनोविज्ञान में अपनी तीनों डिग्री (स्नातक, परास्नातक एवं डॉक्टरेट) यही (विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय) से अर्जित कीं। उन्होंने 1937 में ब्रुकलिन कॉलेज में पढ़ाना शुरू किया और 1951 तक स्कूल के संकाय के सदस्य के रूप में काम करना जारी रखा।

इस दौरान, आप मैक्स वर्दीमर एवं मानवविज्ञानी रूथ बेनेडिक्ट से काफी प्रभावित थे। उन्होंने मैक्स वर्दीमर तथा कुर्ट कोफ्का के अधीन अपना अध्ययन कार्य किया। 1950 के दशक के दौरान, आप मानवतावादी मनोविज्ञान के रूप में मानी जाने वाली विचारधारा के संस्थापकों एवं प्रेरक शक्तियों में से एक बन गए। आपके सिद्धान्त, जिसमें आवश्यकताओं का पदानुक्रम, आत्म–साक्षात्कार एवं चरम अनुभव शामिल हैं, मानवतावादी आन्दोलन में मौलिक विषय बन गए। उन्होंने अपना अधिक ध्यान 'व्यक्तित्व' के अध्ययन पर लगाया। उनका मानना था कि मनोविज्ञान ने अब तक अपना अधिक ध्यान मानवीय कमजोरियो पर लगाया है तथा मानवीय शक्तियो की अनदेखी की है। उनका मत था कि मानवीय प्रकृति स्वभावतः अच्छी होती है। जैसे–जैसे व्यक्ति परिपक्व होता जाता है उसकी रचनात्मक क्षमताएँ स्पष्ट होती जाती है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि मानवीय व्यवहार विध्वंसात्मक या हिंसात्मक नहीं होता है। मैस्लो ने मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित अभिप्रेरणा सिद्धान्त का विकास किया। मैस्लो ने 1943 में इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की, जब जुलाई, 1943 के "साइकोलॉजिकल रिव्यू" (Psychological Review) में 'ए थ्योरी ऑफ ह्यूमन मोटिवेशन' (A Theory of Human Motivation) शीर्षक से उनके लेख छपे। इन लेखों में आपने मानवीय आवश्यकताओं की क्रमिकता/पदानुक्रम के विचार का प्रतिपादन किया। मैस्लो द्वारा लिखित पुस्तक 'मोटीवेशन एण्ड पर्सनॉलिटी' (Motivation and Personality) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है जो 1954 में प्रकाशित हुई थी।

इसके अलावा 'दी साइकोलॉजी ऑफ बियींग', 'दी साइकोलॉजी ऑफ साइन्स' आदि उनकी अन्य प्रसिद्ध महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। यद्यपि मैस्लो ने अपनी इन पुस्तकों में कई महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं एवं विचारों का उल्लेख किया है तथापि वर्तमान प्रयोजन की दृष्टि से अभिप्रेरणा के क्षेत्र में दिया गया उनका योगदान ही उल्लेखनीय है। मैस्लो अपने अंतिम वर्ष कैलिफोर्निया में अर्द्ध सेवानिवृत्त में बिताया। कैलिफोर्निया में ही मैस्लो 8 जून 1970 को हृदयाघात होने से उनकी मृत्यु हो गई।

3.2.2. \मैस्लो की आवश्यकता–प्राथमिकता सिद्धान्त (Maslow's Need-Hierarchy Theory)

अब्राहम मैस्लो ने पदानुक्रमित आवश्यकता सिद्धान्त का प्रतिपादन वर्ष 1943 में किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य की आवश्यकताएँ कई स्तरों पर होती हैं और इन्हें क्रम से पूरा किया जाना चाहिए। उसने कहा कि मानव आनन्द चाहने वाला प्राणी होता है और उनकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करके उनको अभिप्रेरित किया जा सकता है। मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त को और भी अन्य नामों से जाना जाता हैं। जैसे– पदानुक्रमित आवश्यकताओं का सिद्धान्त, मांग–आपूर्ति आवश्यकता का सिद्धान्त, नाभिकीय आवश्यकता का सिद्धान्त, मानवतावादी आवश्यकता का सिद्धान्त, मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धान्त, मैस्लो का पिरामिड सिद्धान्त।

मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं को दो भागों में वर्गीकृत किया है पहली आधारभूत आवश्यकताएँ, जो मनुष्य के अस्तित्व के लिए आवश्यक है तथा दूसरी अधिग्रहण (द्वितीयक) सम्बन्धी आवश्यकताएँ जो आधारभूत आवश्यकताओं की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण होती है। हालाँकि मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ या इच्छाएँ होती है परन्तु किसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। अतः इस प्रश्न का उत्तर अब्राहम मैस्लो ने अपने सिद्धान्त के माध्यम से दिया है जो आवश्यकताओं की क्रमबद्धता को दर्शाता है।

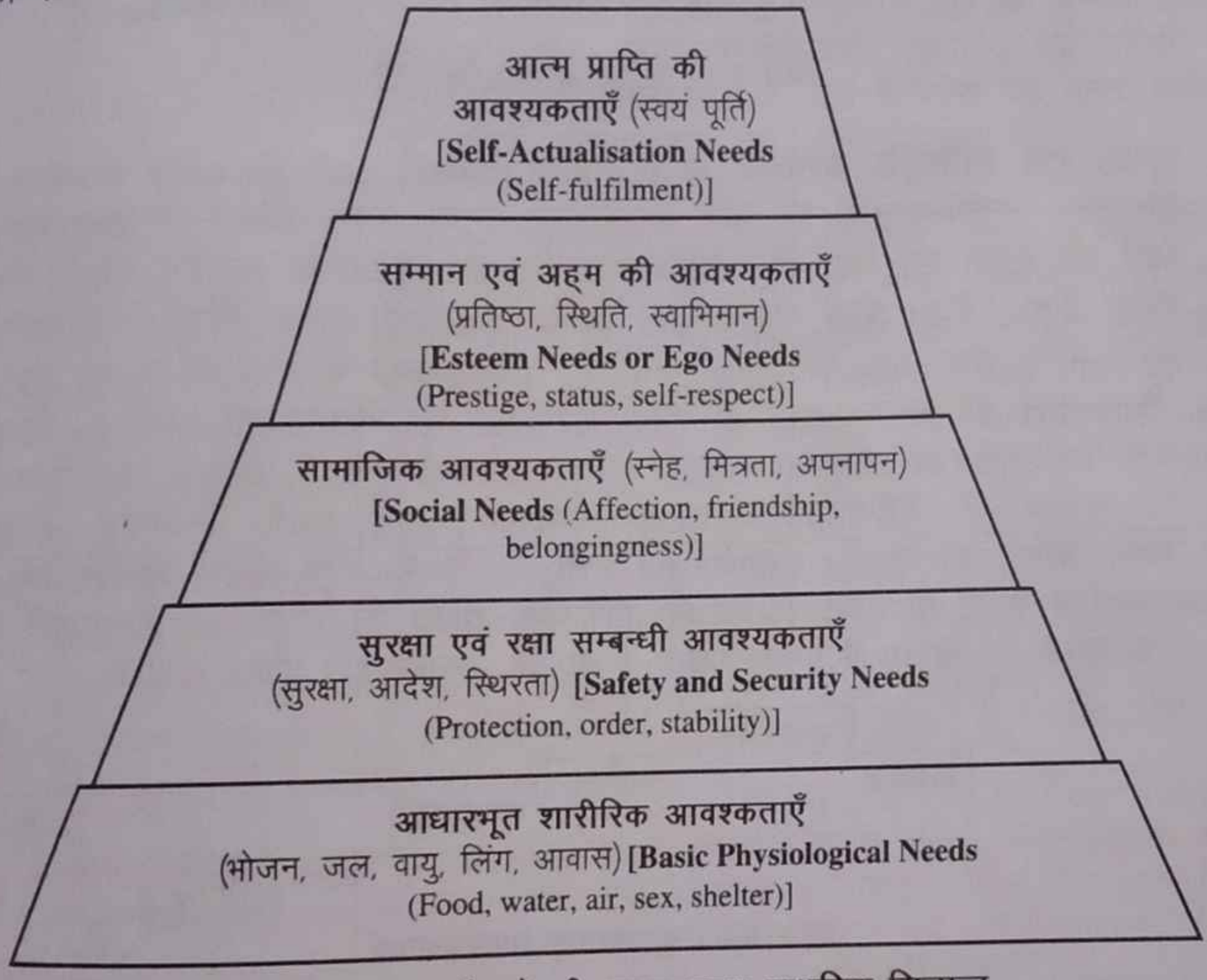

चित्र 3.2– मैस्लो की आवश्यकता–प्राथमिक सिद्धान्त
(Figure 3.2: Maslow's Need Hierarchy Theory)

आवश्यकता की क्रमबद्धता का सिद्धान्त निम्नलिखित बिन्दुओं को अधिक महत्त्व देता है–

1) मनुष्य वह जीव है जिसकी इच्छाएँ कभी समाप्त नहीं होती है। उसे स्वयं को सन्तुष्ट करने के लिए उसकी कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए।
2) एक बार जब कोई आवश्यकता पूरी हो जाती है तो वह एक व्यक्ति को आगे प्रेरित करना बन्द कर देती है।
3) महत्त्व के आधार पर, आवश्यकताएँ क्रमबद्ध होती है।

मैस्लो के अनुसार, आवश्यकता की क्रमबद्धता आरोही क्रम में निम्नलिखित प्रकार से है–

1) **आधारभूत शरीरिक आवश्यकताएँ (Basic Physiological Needs)**–भोजन, आवास, वस्त्र, वायु, जल आदि जैसी व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं को शारीरिक आवश्यकताएँ माना जाता है। चूँकि ये आवश्यकताएँ मनुष्य के अस्तित्व एवं स्थिरता के लिए आवश्यक है इसलिए इन आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जाती है। इन्हें मैस्लो के क्रमबद्ध सिद्धान्त के प्रारम्भिक चरण में रखा गया है।

जब शारीरिक आवश्यकताएँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं तो आवश्यकताओं का अनुक्रम इस प्रकार होता है–

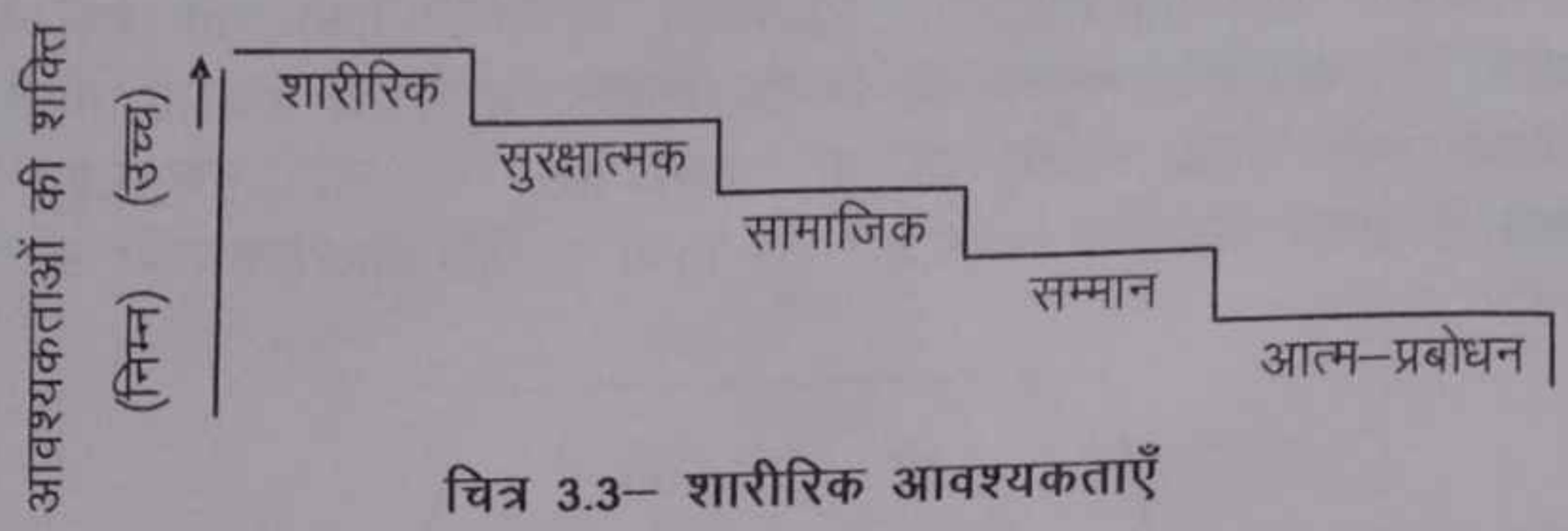

चित्र 3.3– शारीरिक आवश्यकताएँ

2) **सुरक्षा एवं प्रतिभूति सम्बन्धी आवश्यकता (Safety and Security Needs)**– आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मनुष्य अपने परिवार के साथ–साथ स्वयं की सुरक्षा एवं रक्षा की आशा करता है। इस सुरक्षा के अन्तर्गत नौकरी की सुरक्षा बीमा (जीवन बीमा, वाहन बीमा आदि), वृद्धावस्था सुरक्षा (पेंशन, सेवानिवृत्ति निधि आदि) तथा आय की सुरक्षा आते है। सरल शब्दों में, एक व्यक्ति को अपने जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए आश्वासन की आवश्यकता होती है। जिन समाजों में सुरक्षा की समुचित व्यवस्था सरकार द्वारा ही कर दी जाती है उनमें सुरक्षा की आवश्यकता अधिक अभिप्रेरणात्मक आवश्यकता नहीं रहती। निःसन्देह प्रत्येक व्यक्ति सुरक्षा चाहता है। इसलिए वह ऐसी नौकरी में जाना चाहता है जो वेतन, कार्यकाल आदि की दृष्टि से सुरक्षित हो। जब व्यक्ति की सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ आवश्यकता–क्रमिकता में प्रभुत्व रखती है तो यह अनुक्रम इस प्रकार होता है–

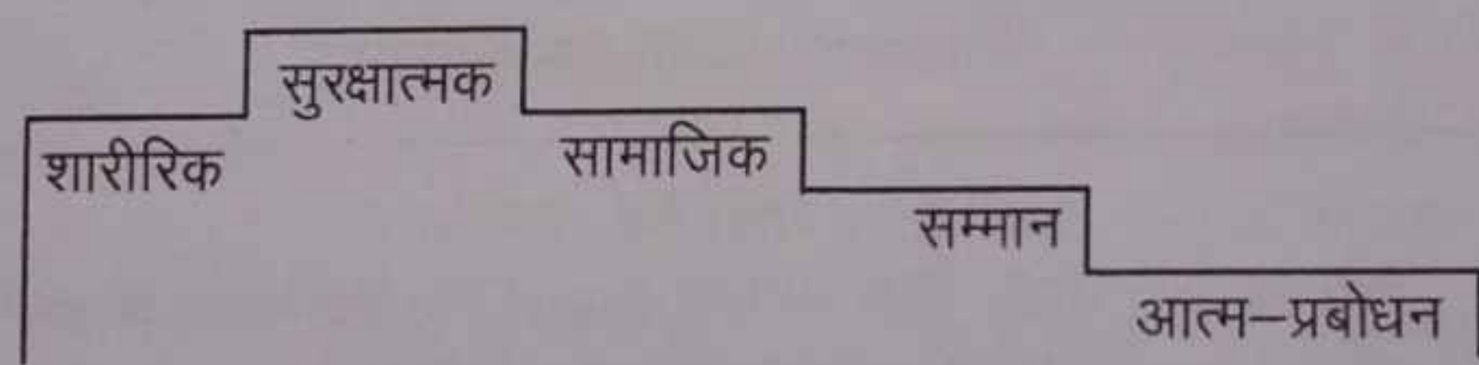

चित्र 3.4– सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ

3) **सामाजिक आवश्यकताएँ (Social Needs)**–सामाजिक आवश्यकता मनुष्य की एक प्रकार की संज्ञानात्मक आवश्यकता है। जब यह आवश्यकता पूरी नहीं होती है तो व्यक्ति के मस्तिष्क में असन्तुलन उत्पन्न होता है जो उसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। चूँकि मनुष्य एक समाज में रहता है इसलिए वह अन्य लोगों के साथ वार्तालाप करके अपनी भावनाओं को साझा करके मित्रों को बनाकर स्वयं को सामाजिक बनाता है। इसलिए यह कहा जाता है कि व्यक्ति की समुदाय एवं उसकी संस्कृति उसकी पहचान को दर्शाती है। जब आवश्यकता अनुक्रम संरचना में सामाजिक आवश्यकताएँ प्रभुत्व में होती हैं तो इसका स्वरूप इस प्रकार होता हैं–

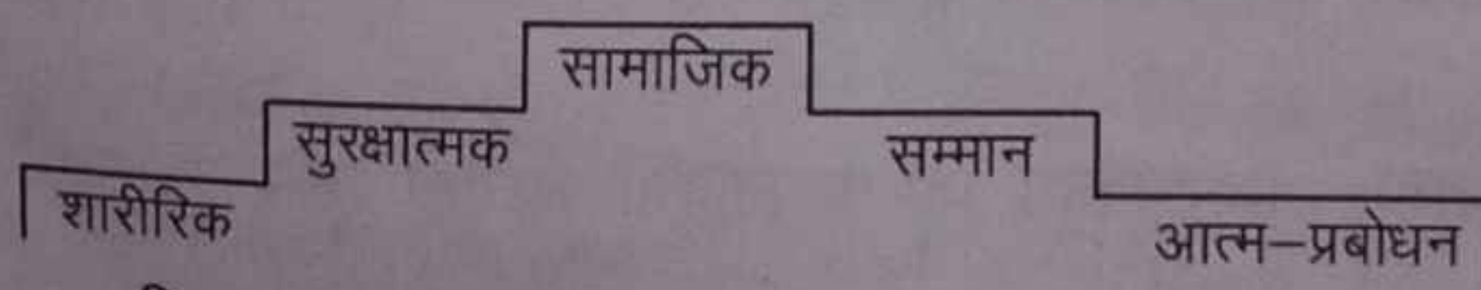

चित्र 3.5– सामाजिक आवश्यकताएँ

4) **सम्मान व अहम् की आवश्यकताएँ (Esteem Needs or Ego Needs)**–अहम् की आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती है अर्थात् आंतरिक एवं बाहरी। आत्मविश्वास, स्वप्रेरणा, कौशल, योग्यता, सामर्थ्य आदि कुछ ऐसे कारक है जो आंतरिक अहम् आवश्यकताओं पर आधारित होते हैं तथा एक व्यक्ति द्वारा कठोर परिश्रम के पश्चात्

अर्जित किए जाते है। जिन व्यक्तियों को आंतरिक सम्मान की आवश्यकता होती है वे समाज द्वारा सदैव अर्जित आभार प्राप्त करते है। बाह्य अहम् वादी की आवश्यकताएँ व्यक्ति के सद्भाव एवं पद के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करती है जो व्यक्ति द्वारा उच्च पद प्राप्त करके अथवा यदि व्यक्ति आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो जाता है, प्राप्त की जा सकती है। अतः व्यक्ति को अभिप्रेरित करने वाली प्रमुख शक्ति सम्मान की आवश्यकता है। जब आवश्यकता अनुक्रम संरचना में 'सम्मान आवश्यकताएँ' प्रभुत्व में होती हैं तो उसका स्वरूप इस प्रकार का होता है।

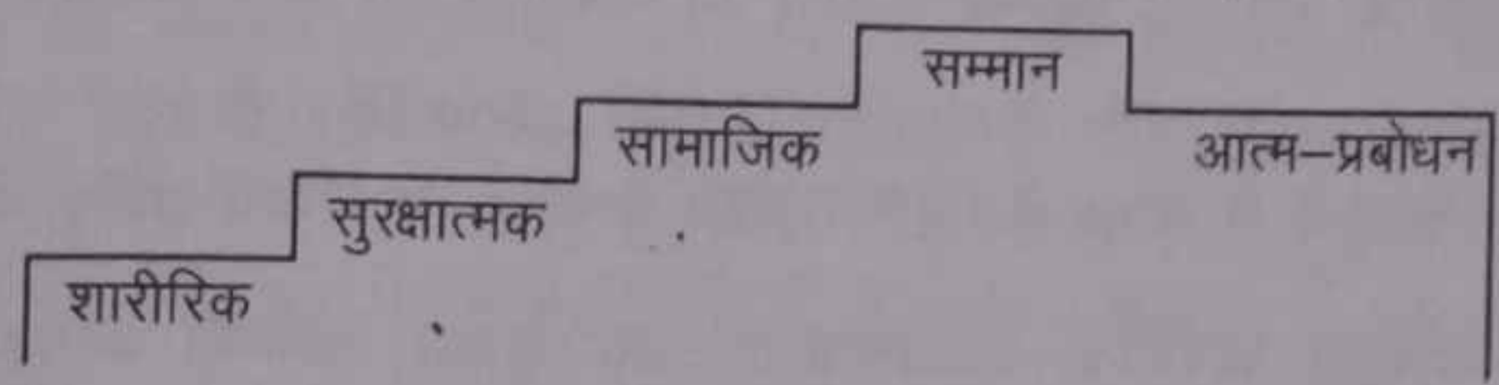

चित्र 3.6– 'सम्मान आवश्यकताएँ'

5) **आत्म साक्षात्कार की आवश्यकताएँ (Self-Actualisation Needs)**–यह एक आत्म साक्षात्कार का चरण है जिसमें व्यक्ति अद्वितीय अथवा रचनात्मक तरीके से आत्म–विकास के लिए अपनी उच्चतम क्षमता को अनुभव करते हैं। साधारण शब्दों में, इन आवश्यकताओं को एक व्यक्ति का जीवन उद्देश्य माना जाता है। जब एक व्यक्ति की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं तो वह व्यक्तिगत साक्षात्कार की खोज करता है जो उसे मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करता है। अतः इस समय 'आत्म–प्रबोधन' की आवश्यकता का उदय होता है। आत्म साक्षात्कार वाले व्यक्ति दूसरों की तुलना में बेहतर बनना चाहते है, अपनी क्षमता का निष्पादन करने के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य करते हैं तथा सफल होते है। इससे न केवल वे सन्तुष्ट होते हैं बल्कि समाज भी लाभान्वित होता है।

जब आत्म–विश्लेषण की आवश्यकताएँ प्रभुत्व में होती हैं तो आवश्यकता अनुक्रम का स्वरूप इस प्रकार होता है–

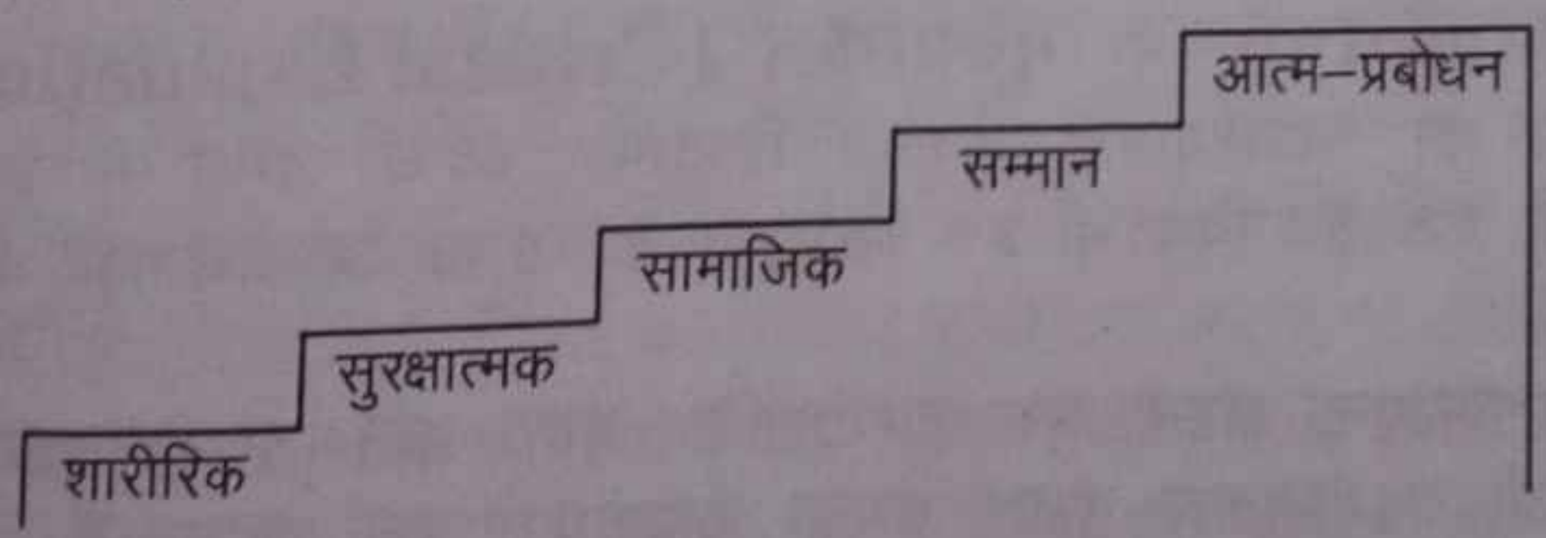

चित्र 3.7– आत्म–प्रबोधन की आवश्यकताएँ

मैस्लो इसे 'बी' मूल्य (B-values) आवश्यकता कहते हैं। उन्होंने इसे दो भागों में बाँटा है–

i) जानने की आवश्यकता।
ii) सौन्दर्यात्मक प्रशंसा सम्बन्धी आवश्यकताएँ।

मैस्लो की आवश्यकता सिद्धान्त के अनुसार (As per Maslow's Need theory)

1) मनुष्य की पाँच स्तर की आवश्यकताएँ होती हैं जिसे वह सन्तुष्ट करना चाहता है।
2) इन आवश्यकताओं की व्यवस्था को उसने दो श्रेणियों में बाँटा है प्राथमिकता के अनुसार इन आवश्यकताओं को क्रमबद्ध किया जाता है।
3) आधारभूत आवश्यकताओं की श्रेणी को 'अभाव आवश्यकताएँ' (Deficiency Needs) कहते हैं। इन अभाव आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जाना आवश्यक होता है।

4) मैस्लो की विचारधारा में प्रथम चार आवश्यकताओं को 'अभाव आवश्यकताएँ' या 'डी' आवश्यकताएँ कहा हैं। जब व्यक्ति की 'डी' आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं तो व्यक्ति जीवन की उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की ओर अग्रसर होता है। इस समय 'आत्म–प्रबोधन' की आवश्यकता का उदय होता है। मैस्लो इसे 'बी' मूल्य (B-Values) आवश्यकता कहते हैं।

5) मैस्लो के अनुसार एक बार आवश्यकता की सन्तुष्टि हो जाने के पश्चात् वह प्रेरक नहीं रह जाता है इसलिए व्यक्ति अगली आवश्यकता की ओर अग्रसर होता है।

6) एक आवश्यकता की पूर्ति के पश्चात् अगले चरण का विकास एक ऐसी अपूर्ण आवश्यकता के रूप में होता है जिसे व्यक्ति सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है।

7) हालाँकि आधारभूत शारीरिक आवश्यकताएँ एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ सीमित हैं तथा इन्हें आसानी से सन्तुष्टि किया जा सकता है परन्तु अन्य तीन आवश्यकताएँ असीमित हैं तथा उच्च स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्तियों पर इनका बहुत प्रभाव पड़ता है।

8) मैस्लो सिद्धान्त के सभी पाँच स्तर पारस्परिक रूप से एक दूसरे पर निर्भर हैं, क्योंकि इन सभी में कुछ सामान्य विशेषताएँ है। एक व्यक्ति पिछली आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् अगली आवश्यकता की पूर्ति के लिए अग्रसर हो सकता है। प्रत्येक स्तर की आवश्यकता व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है जो उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

9) मनुष्य की पहली दो आवश्यकताएँ अर्थात् आधारभूत एवं सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकता को निम्न क्रम की आवश्यकता माना जाता है तथा शेष तीन अर्थात् सामाजिक, सम्मान तथा आत्म प्रबन्धन की आवश्यकताओं को उच्च क्रम की आवश्यकताएँ माना जाता है।

3.2.3. आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

अब्राहम मैस्लो का 'आवश्यकता–अनुक्रम सिद्धान्त' प्रबन्ध जगत में अत्यन्त लोकप्रिय सिद्धान्तो में से एक है। फिर भी इस सिद्धान्त को अनेक आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा है। जैसे–

1) मैस्लो का सिद्धान्त अपनी अस्पष्ट, दार्शनिक एवं अति–सरल व्याख्या के कारण भी आलोचनाओं का शिकार हुआ। वस्तुतः आलोचको का कहना है कि यह सिद्धान्त मानवीय व्यवहार की अति–सरलीकृत व्याख्या है। सिद्धान्त में आनुभाविक के स्थान पर दार्शनिक व्याख्याओं का प्रयोग किया गया है फलतः ये सिद्धान्त अस्पष्टताओं से परिपूर्ण है। 'आत्म–प्रबोधन' आवश्यकताओं की मैस्लो की व्याख्या अस्पष्ट तथा अति सामान्य है।

2) मैस्लो के पदानुक्रम सिद्धान्त की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आलोचना उनके अवैज्ञानिक दृष्टिकोण, अविश्वसनीय नमूनों के उपयोग एवं निष्कर्ष निकालने के लिए उनके द्वारा उपयोग की जाने वाली विशिष्ट शोध विधियों (व्यक्तिगत अवलोकन और जीवनी विश्लेषण) से सम्बन्धित है। आलोचकों का मत है कि मैस्लो का यह सिद्धान्त किसी भी विश्वसनीय अनुभवजन्य शोध पर आधारित न होकर केवल मनोविज्ञान तथ्यों का एकत्रीकरण है। क्योकि इनके पदानुक्रम की वैधता को लेकर वैज्ञानिक समुदाय से आंशिक या बहुत कम या कोई सबूत नहीं है। सबसे अधिक बार उद्धृत समीक्षाओं में से एक एम ए. वाहबा एवं एल.जी. ब्रिडवेल (1976) की है, जिन्होंने मास्लो के सिद्धान्त पर आधारित अध्ययनों की समीक्षा की और कहा कि "साहित्य समीक्षा से

पता चलता है कि आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त को उपलब्ध शोध निष्कर्षों से बहुत कम स्पष्ट या सुसंगत समर्थन मिला है। इनके कुछ प्रस्ताव पूर्णतया खारिज कर दिए गए हैं, जबकि अन्य को मिश्रित एवं संदिग्ध समर्थन मिला है।"

3) कुछ विद्वानों ने यह भी अवलोकन किया कि सिद्धान्त 'लगभग अप्रमाणित है' क्योंकि मैस्लो ने प्रत्येक आवश्यकता निर्माण की स्पष्ट, मानक परिभाषाएँ नहीं दी है, लेकिन मुख्य रूप से इसलिए क्योंकि आवश्यकताओं की सापेक्ष संतुष्टि और अगली आवश्यकता के उभरने से पहले किस हद तक एक आवश्यकता को संतुष्ट किया जाना चाहिए, या यहाँ तक कि एक आवश्यकता क्या है (चाहे वह मनोवैज्ञानिक और/या शारीरिक हो) को मापना अत्यन्त कठिन है। ये मुद्दे अभी भी वर्तमान शोधकर्ताओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण चुनौती के रूप में हैं।

4) आलोचकों का कहना है कि मैसलो ने अपने सिद्धान्त में केवल उच्च वर्ग तथा मध्य वर्ग को ही लिया। अतः ये सिद्धान्त दो वर्गों के लिये ही उचित है लेकिन इन्होंने निम्न वर्ग की उपेक्षा की। अतः ये उन पर लागू नहीं होता है क्योंकि ऐसे लोगों की शारीरिक आवश्यकताएँ कभी पूर्ण नहीं होती हैं। अतः वे आगे के क्रम की आवश्यकताओं के विषय में सोच नहीं पाते हैं।

5) मैस्लो ने आत्मसिद्धि के जो भी गुण बताए उनसे सभी मनोवैज्ञानिक सहमत नहीं हैं। आलोचकों ने कहा है कि सम्मान की आवश्यकता को प्राप्त करने के बाद व्यक्ति में प्रतिस्पर्धा का विकास हो जाता है जो आगे चलकर घृणा एवं द्वेष में परिवर्तित हो जाता है।

6) मैस्लो ने अपने अनुक्रम में बताया है कि, आवश्यकताएँ एक अनुक्रम में पूरी होती हैं। पहले निम्न, फिर उच्च। उनका कहना था कि तृतीय या चौथी आवश्यकता तभी पूर्ण होती है जब व्यक्ति की इससे पहले की द्वितीय या तृतीय आवश्यकता पूर्ण हो जबकि आलोचकों का कहना है कि हमेशा ऐसा ही हो, यह आवश्यक नहीं। वस्तुतः यह सोपान बदलता रहता है। ऐसा भी हो सकता है कि सबसे निम्न स्तर की आवश्यकता की संतुष्टि करने के बाद उसमें दूसरे या तीसरे प्रकार की आवश्यकता न उत्पन्न होकर चौथे प्रकार की आवश्यकता उत्पन्न हो जाए। ऐसी पुष्टि विलियम एवं पेज ने अपने अध्ययन में की।

इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत व्यक्तियों की आवश्यकताओं का क्रम भी भिन्न–भिन्न होता है। व्यक्ति की किस समय कौन–सी आवश्यकता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है इसकी पहचान करना अत्यन्त कठिन है। मैस्लो ने आवश्यकताओं का जो सोपान प्रस्तुत किया है उसमें आवश्यकताएँ एक के बाद दूसरी आती है। परन्तु व्यवहार में एक साथ एक से अधिक आवश्यकताएँ भी पाई जाती है।

7) मैस्लो की कार्यप्रणाली की एक और महत्त्वपूर्ण आलोचना जातीय–केंद्रित पूर्वाग्रह से सम्बन्धित है। एक अत्यधिक व्यक्तिवादी संस्कृति के संदर्भ में अमेरिकियों (अधिकतर शिक्षित, बुद्धिमान, पुरुष) पर लगभग विशेष जोर। पदानुक्रम में उच्च–स्तरीय आवश्यकताओं में से कई स्वयं (उपलब्धि, आत्म–सम्मान, व्यक्तिगत विकास) पर केंद्रित हैं, जिन्हें आवश्यक नहीं कि वैश्वीकृत किया जा सके और सरलता से पूर्वी संस्कृतियों में स्थानांतरित किया जा सके। **उदाहरण के लिए–** जो समुदाय, निस्वार्थता और योगदान पर अधिक बल देते हैं। यह भी स्पष्ट नहीं है कि लिंग या सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुसार आवश्यकताएँ अलग–अलग हो सकती हैं या नहीं।

8) सी.एन. कॉफर तथा एम.एच. एपली इनके सिद्धान्त का परीक्षण करते हैं और पाते हैं कि इनकी 'आत्म–प्रबोधन' सम्बन्धी व्याख्या अवधारणागत रूप से अस्पष्ट, अपनी भाषा की दृष्टि से ढीली तथा अपने मुख्य विचारों से सम्बन्धित प्रमाणों की अपर्याप्तता से पीड़ित है।

उपर्युक्त सीमाओं के कारण ही मैस्लो का सिद्धान्त कमजोर माना जाता है। बरनार्ड बास एवं गेराल्ड बैरेट तो यह मानते हैं कि मैस्लो का सिद्धान्त रुचिकर तथा लोकप्रिय तो है लेकिन सत्य नहीं। माइकल नैश भी इसी प्रकार के विचार रखते हैं और मानते हैं कि यह सिद्धान्त रुचिकर है पर वैध नहीं। नैश, हर्जबर्ग और मैस्लो के सिद्धान्तों को सर्वाधिक गलत सिद्धान्त मानते हैं। इन आलोचनाओं के बावजूद भी मैस्लो का आवश्यकता–पदानुक्रम सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण माना गया क्योंकि इन्होंने अभिप्रेरणा की व्याख्या करने में जैविक, सामाजिक, तथा व्यवहार सम्बन्धी प्रभावों को शामिल किया है।

3.3. फ्रेडरिक हर्जबर्ग (FREDRICK HERZBERG)

3.3.1. परिचय (Introduction)

फ्रेडरिक हर्जबर्ग को नैदानिक मनोवैज्ञानिक एवं "नौकरी/कार्य संवर्धन" का अग्रणी माना जाता है साथ ही वे प्रबंधन एवं प्रेरक सिद्धान्त में महान मूल विचारकों में से एक है। फ्रेडरिक हर्जबर्ग का जन्म 18 अप्रैल, 1923 को मैसाचुसेट्स में हुआ था। उन्होंने स्नातक की पढ़ाई सिटी कॉलेज ऑफ न्यूयॉर्क से तथा स्नातकोत्तर की उपाधि पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय से प्राप्त की। उन्हें पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय में ग्रेजुएट स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ में भाग लेने के लिए फेलोशिप की पेशकश की गई जहाँ उन्होंने नैदानिक एवं असामान्य मनोविज्ञान का अध्ययन किया।

उनकी रुचि औद्योगिक मानसिक स्वास्थ्य में थी, लेकिन शीघ्र ही उन्हें पता चला कि औद्योगिक मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणाएँ उनके पिछले अध्ययन का पुनर्कथन थीं। इसी कारण से, उन्होंने अपनी थीसिस का शीर्षक रखा 'मानसिक स्वास्थ्य मानसिक बीमारी के विपरीत नहीं है।' हर्जबर्ग ने 1950 में मनोविज्ञान विषय में अपनी पीएच.डी. पूरी की। बाद में वे केस वेस्टर्न रिजर्व विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के प्रोफेसर बन गए और साथ ही साथ अपने शोध को कार्यस्थल पर केंद्रित करना शुरू कर दिया। इस दौरान उन्होंने औद्योगिक मानसिक स्वास्थ्य विभाग की स्थापना की। 1972 में वे यूटा विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ बिजनेस में चले गए, जहाँ वे प्रबंधन के प्रोफेसर थे। हर्जबर्ग ने 1959 में The Motivation to Work (co-author) एवं 1966 में Work and The Nature of Man नामक इन पुस्तकों की रचना की। इसके अलावा आपने कई लेख लिखे जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। अभिप्रेरणा, कार्य समृद्धिकरण आदि के क्षेत्र में उनका मौलिक योगदान है। फ्रेडरिक हर्जबर्ग ने पिट्सबर्ग की मनोवैज्ञानिक सेवाओं के लिए एक शोध निदेशक के रूप में भी काम किया है। अचानक एक दिन, एक परेशान औद्योगिक कर्मचारी ने उनसे पूछा 'लोग अपनी नौकरी से क्या चाहते हैं'? इस प्रश्न ने उन्हें एक परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए एक अध्ययन तैयार करने के लिए प्रेरित किया कि नौकरी की संतुष्टि और नौकरी की असंतुष्टि अलग–अलग अवधारणाएँ हैं। इस प्रकार नैदानिक मनोवैज्ञानिक और अग्रणी प्रेरणा सिद्धान्तकार फ्रेडरिक हर्जबर्ग पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह सुझाव दिया था कि कार्यस्थल पर संतुष्टि तथा असंतोष लगभग अलग–अलग कारकों से उत्पन्न होते हैं, और ये केवल समान कारकों के प्रति विरोधी प्रतिक्रियाएं नहीं हैं, जैसा कि पहले माना जाता था। 18 जनवरी, 2000 को साल्ट लेक सिटी में उनका निधन हो गया।

3.3.2. हर्जबर्ग का दो घटक का सिद्धान्त/हर्जबर्ग की अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त (Herzberg's Two Factor Theory/ Motivation Hygiene Theory)

वर्ष 1966 में फ्रेडरिक हर्जबर्ग द्वारा इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया था। फ्रेडरिक हर्जबर्ग एक अमेरिकी मनोवैज्ञानिक थे जो लोगों की प्रेरणा और नौकरी की संतुष्टि में बहुत रुचि रखते थे। फ्रेडरिक हर्जबर्ग के इस सिद्धान्त को दोहरा कारक सिद्धान्त, आंतरिक/बाह्य प्रेरणा के सिद्धान्त, या प्रेरणा और स्वच्छता सिद्धान्त भी कहा जाता है। यह सिद्धान्त उन कारकों के विषय में अनुमान लगाता है जो कार्यकर्ता में संतुष्टि या असंतोष पैदा करते हैं। इस सिद्धान्त का निष्कर्ष यह है कि कार्यस्थल में कुछ तत्त्वों से काम में संतुष्टि मिलती है, जबकि इन तत्त्वों की अनुपस्थिति होने पर असंतोष उत्पन्न होता है। ऐसे बहुत से कारक होते हैं जो सदैव लोगों को अपना जीवन बदलने के लिए प्रेरित करते हैं, लेकिन 'एक व्यक्ति के रूप में मेरा सम्मान हो' की भावना जीवन के किसी भी स्तर पर बहुत ही प्रेरित करने वाला कारक है।

इस सिद्धान्त को कभी–कभी "अभिप्रेरक–स्वच्छता सिद्धान्त" भी कहा जाता है। उन्होंने लोगों के एक समूह से काम पर उनके अच्छे और बुरे अनुभवों के बारे में पूछकर अपना शोध किया। वह आश्चर्यचकित थे कि समूह ने अपने अच्छे अनुभवों के बारे में सवालों के जवाब दिए हैं जो उनके बुरे अनुभवों के बारे में बहुत अलग हैं। इसके आधार पर, उन्होंने इस सिद्धान्त को विकसित किया और लोगों की नौकरी की संतुष्टि को कारकों पर निर्भर बताया।

3.3.3. हर्जबर्ग के दो कारक (Two Factors of Herzberg)

हर्जबर्ग ने कार्य की सन्तुष्टि अथवा असन्तुष्टि के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्न आधार पर वर्गीकृत किया है–

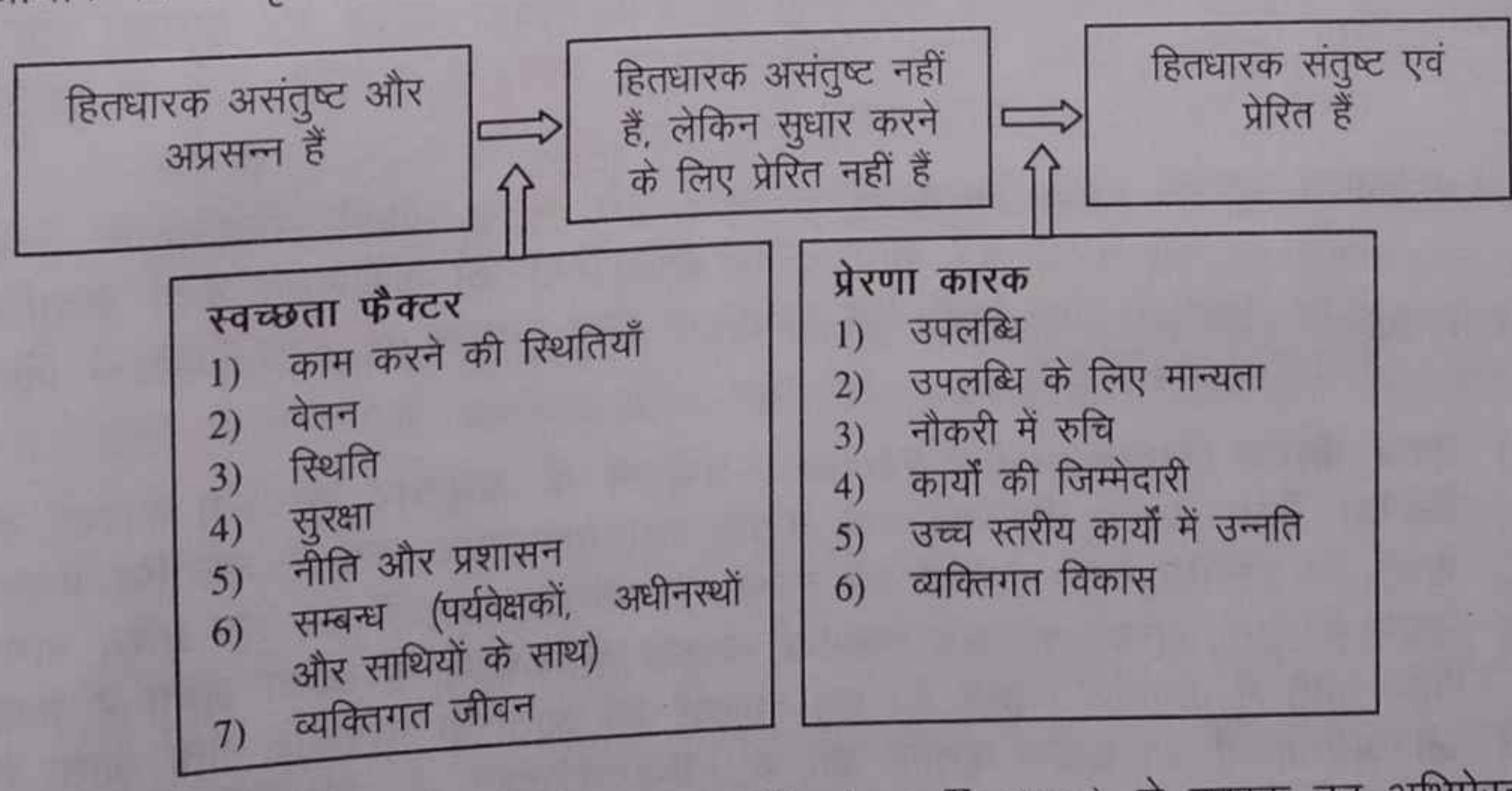

1) **आरोग्य/स्वास्थ्य सम्बन्धी कारक (Hygiene Factors)**–ये कारक वह अभिप्रेरक कारक है जिनकी उपस्थिति कर्मचारियों को कार्यस्थल पर केवल कुछ ही समय के लिए प्रेरित करती है हालाँकि इनकी अनुपस्थिति कर्मचारियों को असन्तुष्ट करती है। कार्यस्थल पर स्वास्थ्य सम्बन्धी कारक की पर्याप्त संख्या कर्मचारियों को सुविधा प्रदान करने में सहायता करती है। चूँकि ये कारक असन्तुष्टि से बचने में ध्यान केन्द्रित करते हैं, इसलिए इन्हें **अनुरक्षक कारक (Maintenance Factors)** कहा

जाता है। ये कारक एक स्वस्थ कार्यशील वातावरण बनाने में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो कर्मचारियों की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करते है। स्वास्थ्य सम्बन्धी कारक निम्नलिखित है–

i) **वेतन (Pay)**–कर्मचारियों की वेतन संरचना बाजार मूल्य के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए। विभिन्न संगठनों में समान पद पर कार्य करने वाले कर्मचारियों को दिया जाने वाला वेतन समान रहना चाहिए। वेतन उचित, यथोचित एवं **निष्पक्ष** होना चाहिए।

ii) **कम्पनी की नीतियाँ एवं प्रशासनिक नीतियाँ (Company Policies and Administrative Policies)**–कम्पनी द्वारा निर्धारित नीतियाँ प्रकृति में लचीली, निष्पक्ष तथा पारदर्शी होनी चाहिए। कार्य के घंटे, अवकाश तथा ड्रेस कोड में कठोरता कर्मचारियों के लिए असुविधा उत्पन्न कर सकती है।

iii) **अनुषंगी लाभ (Fringe Benefits)**–चिकित्सा दावा, परिवार के लिए लाभ योजना, कर्मचारियों के लिए सहायता कार्यक्रम आदि जैसे अनुषंगी लाभ कर्मचारियों को अधिक प्रेरित करते हैं।

iv) **भौतिक कार्यशील परिस्थितियाँ (Physical Working Conditions)**–कर्मचारियों के निष्पादन पर कार्यशील परिस्थितियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि साफ एवं स्वच्छ परिस्थितियाँ उन्हें प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। अस्वस्थ वातावरण, असुरक्षित एवं अकुशल उपकरण न केवल दुर्घटना की सम्भावना को बढ़ाते हैं, बल्कि असन्तोष का कारण भी होते हैं।

v) **पद स्थिति (Status)**–कर्मचारियों को संगठन में उचित सम्मान दिया जाना चाहिए। संगठन के भीतर कर्मचारियों की स्थिति परिचित एवं यथावत बनी रहनी चाहिए।

vi) **पारस्परिक सम्बन्ध (Interpersonal Relations)**–कर्मचारियों एवं उसके सहयोगियों, वरिष्ठों तथा अधीनस्थों के मध्य सम्बन्ध स्वस्थ एवं समझने योग्य होने चाहिए। किसी विवाद अथवा अपमान तत्त्व के उत्पन्न होने से उनके सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

vii) **कार्य–सुरक्षा (Job Security)**–संगठन द्वारा बीमा, पेंशन, सेवानिवृत्ति निधि आदि के रूप में दी गई कार्य सुरक्षा कर्मचारियों को अधिकतम कार्य सन्तुष्टि प्रदान करती है तथा उन्हें दीर्घ अवधि के लिए संगठन के साथ रहने के लिए अभिप्रेरित करती है।

2) **प्रेरक कारक (Motivational Factors)**–**हर्जबर्ग के अनुसार**, स्वच्छता कारकों के विपरीत, प्रेरक कारक दीर्घावधि तक मनुष्य को सकारात्मक रूप से सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। इसलिए प्रेरक कारकों की तुलना में स्वच्छता कारकों को कम प्रेरित माना जाता है। इन कारकों को **संतोषजनक कारक** के रूप में भी जाना जाता है तथा यह प्रकृति में अंतर्निहित होते है। इन कारकों को आंतरिक पुरस्कार माना जाता है जो कर्मचारियों को अधिक प्रभावी ढंग से निष्पादन करने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रेरक कारकों के अनुसार, आधारभूत शारीरिक आवश्यकताएँ कर्मचारियों के लिए मात्र एक अतिरिक्त लाभ होती हैं।

निम्नलिखित कुछ अभिप्रेरक कारक है–

i) **मान्यता (Recognition)**–प्रबन्धकों को कर्मचारियों के कठोर परिश्रम तथा अच्छे निष्पादन के लिए उनकी प्रशंसा तथा सराहना करके उन्हें प्रेरित करना चाहिए।

ii) **उपलब्धि की भावना (Sense of Achievement)**–किसी भी कार्य को करते समय, कर्मचारियों को उपलब्धि की भावना विकसित करनी चाहिए। उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि दिन के अन्त में उन्हें परिश्रम का पुरस्कार प्राप्त होगा। इसके लिए, प्रबन्धक कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए किसी प्रकार के पुरस्कार का उपयोग कर सकते है।

iii) **विकास एवं संवर्धन के अवसर (Growth and Promotional Opportunities)**–एक अन्य विधि है जिसके द्वारा एक संगठन अपने कर्मचारियों को प्रेरित कर सकता है वह उन्हें उनकी उन्नति के असंख्य अवसर प्रदान कर सकता है जो उनके कैरियर के विकास में सहायता करता है।

iv) **उत्तरदायित्त्व (Responsibility)**–प्रबन्धकों को कर्मचारियों के कार्य में अपने हस्तक्षेप तथा अत्यधिक नियन्त्रण को कम करके अपने अधीनस्थों को उत्तरदायी बनाने का प्रयास करना चाहिए। कर्मचारियों को उनके निष्पादन के लिए उत्तरदायी बनाना चाहिए तथा उन्हें कार्य का स्वामित्व प्रदान करना चाहिए।

v) **कार्य की सार्थकता (Meaningfulness of the Work)**–कर्मचारियों को जितना अधिक सार्थक और चुनौतीपूर्ण कार्य दिया जाता है, वह उतना ही अधिक रोचक एवं प्रेरक होता है।

3.3.4. हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त के चार संयोजन (Four Combination of Herzberg's Motivation Hygiene Theory)

हर्बजर्ग के सिद्धान्त से पता चलता है कि कर्मचारी संतुष्टि एवं प्रेरणा को प्रभावित करने वाले दो प्रकार के कारक हैं– स्वच्छता कारक और प्रेरक। स्वच्छता और प्रेरक कारकों को मिलाने से कुछ परिदृश्य सामने आ सकते हैं। जैसे– जब कर्मचारियों में स्वच्छता कारक तथा प्रेरक दोनों का उच्च स्तर होता है, तो उनके अपने काम में व्यस्त एवं प्रेरित होने की संभावना अधिक होती है। दूसरी ओर, जब कर्मचारियों में स्वच्छता कारक तथा प्रेरक का स्तर कम होता है, तो वे कम प्रेरणा एवं उच्च असंतोष का अनुभव कर सकते हैं। हर्जबर्ग के मॉडल के अनुसार, यहाँ 4 संभावित संयोजन दिए गए हैं–

1) **उच्च स्वच्छता एवं उच्च प्रेरणा**–वह आदर्श स्थिति जहाँ कर्मचारी अत्यधिक प्रेरित होते हैं तथा उनकी शिकायतें कम होती हैं।

2) **उच्च स्वच्छता एवं कम प्रेरणा**–ऐसी स्थिति जहाँ कर्मचारियों की शिकायतें तो कम होती हैं लेकिन वे अत्यधिक प्रेरित नहीं होते। कर्मचारियों को लगता है कि नौकरी, वेतन चेक है।

3) **कम स्वच्छता एवं उच्च प्रेरणा**–ऐसी स्थिति जहाँ कर्मचारी प्रेरित तो होते हैं लेकिन उनकी बहुत सारी शिकायतें भी होती हैं। यह ऐसी स्थिति है जहाँ नौकरी रोमांचक तथा चुनौतीपूर्ण होती है लेकिन वेतन तथा कार्य परिस्थितियाँ मानक या बराबर नहीं होती हैं।

4) **कम स्वच्छता एवं कम प्रेरणा**–ऐसी स्थिति में कर्मचारी प्रेरित नहीं होते तथा उनकी कम्पनी से बहुत सारी शिकायतें होती हैं।

हर्जबर्ग का सिद्धान्त यह समझाने का प्रयास करता है कि प्रबंधकों को कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए कारकों पर विचार करने में एकतरफा नहीं होना चाहिए, बल्कि कर्मचारियों को उनसे सर्वश्रेष्ठ प्राप्त करने के लिए इष्टतम रूप से प्रेरित तथा संतुष्ट करने के लिए दोनों कारकों पर विचार करना चाहिए।

3.3.5. "नौकरी / कार्य संवर्धन" (Job Enrichment)

हर्जबर्ग के कार्यों से पूर्व भी अनेक व्यवहारवादियों का ध्यान कर्मचारियों की अभिप्रेरणा पर गया था तथा इन लोगो ने कई वर्षों तक 'कार्य वृद्धिकरण' एवं 'कार्य रोटेशन' पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित किया। मान्यता यह थी कि कर्मचारियों के कार्य में वृद्धि करने से वे अधिक सन्तुष्टि अनुभव करेंगे। नौकरी संवर्धन, नए कार्यों एवं चुनौतियों को जोड़कर किसी कर्मचारी की नौकरी को बढ़ाने का अभ्यास है। यह एक नियमित, नीरस कार्य को एक ऐसे कार्य में बदलने से सम्बन्धित है जो उत्तेजक एवं संतुष्टिदायक है। नौकरी संवर्धन कर्मचारियों को उपलब्धि की भावना देता है तथा उन्हें अधिक व्यस्त एवं संतुष्ट अनुभव कराता है।

यह अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपने कौशल व क्षमताओं को विकसित करना चाहते हैं। नौकरी संवर्धन कर्मचारियों को अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग करने एवं अपनी रचनात्मकता तथा समस्या–समाधान कौशल को अपने काम में लागू करने के अवसर प्रदान करता है। इसमें उनकी कार्य प्रक्रियाओं तथा परिणामों पर अधिक नियंत्रण बढ़ाना शामिल है, जो उनकी स्वायत्तता व जवाबदेही की भावना को बढ़ाता है। इस दिशा में हर्जबर्ग ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किए हैं। उनका मत था कि अच्छा कार्य करने के लिए "नौकरी संवर्धन" या कार्य–समृद्धिकरण आवश्यक है। कार्य समृद्धिकरण का अर्थ है कार्य की जिम्मेदारी, क्षेत्र और चुनौती को जान–बुझकर उच्च करना अर्थात् Vertical Expansion of Jobs। यह तकनीक वह है जो कम्पनी अपने कर्मचारियों को कार्य के लिए अधिकतम अभिप्रेरित करने के लिए काम में लेती है ताकि कार्य सन्तुष्टि बढ़ सके। हर्जबर्ग ने तर्क दिया कि नौकरी संवर्धन नौकरी करने के लिए अधिक चुनौती, विविधता, स्वायत्तता, प्रतिक्रिया एवं मान्यता जोड़कर प्रेरकों को बढ़ाता है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि नौकरी संवर्धन कर्मचारियों को उनके कार्य वातावरण पर अधिक नियंत्रण देकर स्वच्छता कारकों के प्रतिकूल प्रभावों को कम कर सकता है। इससे उन विभिन्न समस्याओं का समाधान किया जा सकता है जिनका सामना आज के समय में प्रबन्धक कर रहे हैं। जैसे–कर्मचारियों के व्यवहार में तीव्र परिवर्तन, काम छोड़ने की प्रवृत्ति, अनुपस्थितिवाद, ढीलापन, हड़तालें, ऊँचे प्रशिक्षण खर्च, निम्न उत्पादन आदि।

3.3.6. हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त के अनुप्रयोग (Application of Herzberg's Motivation Hygiene Theory)

प्रबन्धन में दो–कारक सिद्धान्त के अनुप्रयोग पर चर्चा इस प्रकार की जा सकती है–

1) अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त का तात्पर्य है कि प्रबंधकों को कर्मचारी को असंतोष से बचाने के लिए स्वच्छता कारकों की पर्याप्तता सुनिश्चित पर बल देना चाहिए। इसके साथ ही साथ उसे यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि दिया गया कार्य ऊर्जावान एवं पुरस्कृत करने वाला हो ताकि कर्मचारी कठिन परिश्रम एवं बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित हों सकें।

2) यह सिद्धान्त कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए नौकरी–संवर्धन पर बल देता है। नौकरी में कर्मचारी के कौशल तथा क्षमताओं का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए। कार्य–गुणवत्ता में सुधार के लिए प्रेरक कारकों पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।

3) इस सिद्धान्त में बताया गया है कि आंतरिक एवं बाह्य कारक एक–दूसरे पर निर्भर हैं। बाह्य कारकों की उपस्थिति केवल कर्मचारियों के काम के असंतोष को समाप्त करेगी। हालाँकि, यह नौकरी की संतुष्टि प्रदान नहीं करेगा। दूसरी ओर, आंतरिक कारक की पर्याप्त आपूर्ति कर्मचारियों के आंतरिक वृद्धि तथा विकास को बढ़ावा देगी

जो उच्च उत्पादकता एवं प्रदर्शन की ओर ले जाएगी। बाह्य कारक केवल कर्मचारी की काम करने की इच्छा को अनुमति देते हैं जबकि आंतरिक कारक उनके काम की गुणवत्ता तय करते है।

4) इस सिद्धान्त में बताया गया है कि आंतरिक एवं बाह्य कारकों के दो समूह आवश्यक रूप से एक–दूसरे के विपरीत नहीं हैं, क्योंकि संतुष्टि के विपरीत असंतोष नहीं है, बल्कि संतुष्टि ही नहीं है। इसी प्रकार असंतोष के विपरीत संतुष्टि नहीं है, बल्कि असंतोष ही नहीं है। इसलिए, संगठनों को अपने कर्मचारियों के आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रेरणा कारकों को संतुष्ट करने के लिए अपने संचालन और प्रक्रियाओं को संशोधित करना चाहिए।

3.3.7. आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

हर्जबर्ग का प्रेरण सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह कार्यस्थल में ऐसे कारकों को उजागर करके प्रेरणा की समस्या पर प्रकाश डालता है जिन्हें वस्तुतः अनदेखा कर दिया जाता हैं। यह सिद्धान्त प्रबंधकों को उनके प्रश्नों के उत्तर देता हैं कि उनकी नीतियों ने उनके कर्मचारियों को प्रभावी रूप से प्रेरित क्यों नहीं किया। इसके बावजूद हर्जबर्ग के सिद्धान्त को विरोध का भी सामना करना पड़ा है। इसकी आलोचना के कुछ कारण निम्नलिखित हैं–

1) **कार्यप्रणाली त्रुटिपूर्ण है (Methodology is Flawed)**–कुछ आलोचकों का तर्क है कि हर्जबर्ग की शोध पद्धति, विशेष रूप से प्रेरक एवं स्वच्छता कारकों की पहचान करने के लिए उपयोग की जाने वाली महत्त्वपूर्ण घटना तकनीक, पूर्वाग्रह एवं सीमाओं के अधीन हो सकती है। इस सिद्धान्त ने डेटा एकत्र करने और शोध की विधि के लिए भी आलोचना की है। इसमें साक्षात्कारकर्ताओं से असाधारण रूप से सकारात्मक या नकारात्मक कार्य अनुभव साझा करने का अनुरोध किया गया था। ऐसी जानकारी या इनपुट सदैव व्यक्तिगत एवं आंशिक होंगे। व्यक्तियों की आत्म–रिपोर्ट और यादों पर निर्भरता निष्कर्षों की वैधता को प्रभावित कर सकती है। इसलिए इस दृष्टिकोण को त्रुटिपूर्ण माना जाता है।

2) **मापन में कठिनाई (Difficulty in Measurement)**–आलोचकों का तर्क है कि सिद्धान्त में, प्रेरकों एवं स्वच्छता कारकों को अलग–अलग श्रेणियों में वर्गीकृत करने के लिए सटीक मानदंडों का अभाव है। इसलिए प्रेरकों एवं स्वच्छता कारकों की पहचान करना एवं मापना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

3) **परिस्थितिजन्य चर को अनदेखा करता है (Ignores Situational Variables)**–दो–कारक सिद्धान्त में परिस्थितिजन्य चरों/कारकों को अनदेखी की गई है। अर्थात् सिद्धान्त इस बात पर विचार नहीं करता है कि आर्थिक स्थिति, फर्म में बदलाव, नेतृत्व शैली आदि जैसे परिस्थितिजन्य और पर्यावरणीय कारक प्रेरणा को कैसे प्रभावित करते हैं।

4) **नौकरी संवर्धन पर अधिक बल (Greater Emphasis on Job Enrichment)**–यह सिद्धान्त कर्मचारियों की नौकरी की संतुष्टि की पूर्णतया अनदेखी करते हुए नौकरी संवर्धन पर अत्यधिक बल देता/दबाव डालता है। आलोचकों का मानना है कि हर्जबर्ग ने वेतन, प्रतिष्ठा, पद या सम्बन्धों जैसे कारकों को अधिक महत्त्व नहीं दिया, जो आमतौर पर शक्तिशाली प्रेरक माने जाते है।

5) **व्यक्तिगत मतभेदों की उपेक्षा (Neglect of Individual Differences)**–दो–कारक सिद्धान्त व्यक्तिगत परिवर्तनशीलता को महत्त्व नहीं देता है। इसीलिए

सिद्धान्त प्राथमिकताओं में व्यक्तिगत अंतर एवं विभिन्न व्यक्तियों में कारकों के अलग–अलग महत्त्व की अनदेखी करता है तथा पर्याप्त रूप से इस बात पर विचार नहीं करता है कि विभिन्न लोगों की जरूरतें, मूल्य और गुण उन्हें क्या प्रेरित करते हैं। इसमें स्वच्छता कारक एवं प्रेरक कारक के मध्य का अंतर तय नहीं है।एक व्यक्ति के लिए जो प्रेरक हो सकता है, वह दूसरे के लिए स्वच्छता कारक हो सकता है। **उदाहरण के लिए**–यू.एस.ए. में एक कार्यकर्ता के लिए एक स्वच्छता कारक एक भारतीय कार्यकर्ता के लिए प्रेरक हो सकता है।

6) **आवश्यकताओं में अस्थायी परिवर्तन (Temporal Changes in Needs)**– हर्जबर्ग का सिद्धान्त मानता है कि प्रेरक मुख्य रूप से आंतरिक एवं स्थायी होते हैं, जबकि स्वच्छता कारक बाहरी एवं क्षणिक होते हैं। आलोचकों का तर्क है कि व्यक्तिगत आवश्यकताएँ एवं प्राथमिकताएँ समय के साथ परिवर्तित हो सकती हैं, जो सिद्धान्त की स्थिरता धारणा को चुनौती देती हैं।

3.3.8. मैस्लो तथा हर्जबर्ग के सिद्धान्त में अन्तर (Difference between Herzberg's Theory and Maslow's Theory)

सारणी 3.1– मैस्लो तथा हर्जबर्ग सिद्धान्त में अन्तर

(Table 3.1: Difference between Herzberg's Theory and Maslow's Theory)

अन्तर का आधार	हर्जबर्ग सिद्धान्त	मैस्लो सिद्धान्त
1) आवश्यकताओं की क्रमबद्धता	आवश्यकताओं को क्रमबद्ध नहीं किया जाता है।	आवश्यकताओं को उनकी प्राथमिकताओं के अनुसार क्रमबद्ध रूप में व्यवस्थित किया जाता है।
2) प्रकृति	यह सिद्धान्त व्यापक नहीं है।	यह सिद्धान्त विस्तृत है।
3) मुख्य विषय	प्रोत्साहन या मान्यता प्राप्त करने की आवश्यकता कर्मचारियों को बेहतर निष्पादन के लिए प्रेरित करती है।	असन्तुष्ट आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ कर्मचारियों को बेहतर निष्पादन के लिए प्रेरित करती है।
4) प्रेरक कारक	मान्यता, उपलब्धि, संवर्धन आदि के लिए दृढ़ इच्छाएँ प्रेरक कारक के रूप में कार्य करती हैं। स्वच्छ कारकों को प्रेरक कारक नहीं माना जाता है।	वे आवश्यकताएँ जो पूरी नहीं होती है व्यक्ति के लिए प्रेरक कारक के रूप में कार्य करती हैं।
5) उपयुक्तता	यह सिद्धान्त उच्च श्रेणी पर कार्य करने वाले व्यक्तियों की कार्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने के लिए उपयोग किया जाता है।	यह कर्मचारियों की सामान्य समस्याओं का समाधान करने के लिए उपयोग किया जाता है।
6) आनुभविक आँकड़े	यह सिद्धान्त उच्च श्रेणी के कर्मचारियों जैसे लेखाकारों एवं अभियन्ताओं के परीक्षण के पश्चात एकत्र किए गए आँकड़ों पर आधारित है।	हर्जबर्ग सिद्धान्त के विपरीत, यह सिद्धान्त प्रयोग पर नहीं बल्कि अवधारणा पर आधारित है।

3.4. डगलस मैक्ग्रेगर (DOUGLAS MCGREGOR)

3.4.1. परिचय (Introduction)

'**मैसाचुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी**' (MIT) के औद्योगिक प्रबन्ध प्रोफेसर और सन् 1960 में बेहद प्रभावशाली पुस्तक "**द ह्यूमन साइड ऑफ एन्टरप्राइज**" (The Human Side of Enterprize) के लेखक **डगलस मैक्ग्रेगर** का जन्म 1906 में डेट्रोइट,

मिशिगन में हुआ था। मैक्ग्रेगर अपने कार्यों में अत्यन्त निपुण थे और मानवीय प्रकृति एवं मनोविज्ञान को समझने मे उन्हें विशेष रुचि थी। मैक्ग्रेगर का 58 वर्ष (सन् 1964) की आयु में मैसाचुसेट्स में निधन हो गया इससे प्रबन्ध जगत् को एक अपूरणीय क्षति हुई। उनके सम्मान में एंटिओक कॉलेज में वयस्क और अनुभवात्मक शिक्षा स्कूल का नाम बदलकर मैक्ग्रेगर स्कूल कर दिया गया। बाद में इसका नाम बदलकर "एंटिओक यूनिवर्सिटी मिडवेस्ट" कर दिया गया। मैक्ग्रेगर ने अनेक पुस्तकें और कई लेख लिखे हैं। उनकी पुस्तकें प्रबन्ध साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। "द ह्यूमन साइड ऑफ एन्टरप्राइज" पुस्तक में मैक्ग्रेगर ने मानव प्रकृति से सम्बन्धित अपने प्रसिद्ध 'सिद्धान्त–X' और 'सिद्धान्त–Y' का प्रतिपादन किया है। मैक्ग्रेगर की अन्तिम पुस्तक **'द प्रोफेशनल मैनेजर'** (The Professional Manager, 1967) थी। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने परम्परागत अवधारणा को चुनौती देकर यह दर्शाया है, कि किस प्रकार प्रबन्धकीय हस्तक्षेप और समझ से उद्यम में मानवीय पक्ष का विकास किया जा सकता है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त भी मैक्ग्रेगर ने विभिन्न लेख लिखे हैं। मैक्ग्रेगर ने प्रबन्ध के अनेक क्षेत्रों में योगदान दिया है, जो निम्न हैं– 'सिद्धान्त–X' एवं 'सिद्धान्त–Y', मतभेदों का प्रबन्ध, स्केनलॉन प्लान, व्यावहारिक विश्लेषण आदि, मैक्ग्रेगर का सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्धान्त 'अभिप्रेरणा' है।

3.4.2. डगलस मैक्ग्रेगर का योगदान (Contribution of Douglas McGregor)

डगलस मैक्ग्रेगर एक विख्यात, व्यवहारवादी एवं मनोवैज्ञानिक विद्वान थे। ये 'थ्योरी–X' तथा 'थ्योरी–Y' मैक्ग्रेगर के प्रबन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक 'The Human Side of the Enterprise' में मैस्लो के आवश्यकता–प्राथमिकता क्रम का समर्थन करते हुए संगठन में कर्मचारियों की अभिप्रेरणा को आगे बढ़ाने के लिए विकेन्द्रीकरण एवं अधिकार सौंपने, कार्य–विस्तार भागीदारी तथा परामर्शात्मक प्रबन्ध और प्रगति, मूल्यांकन आदि प्रणालियों का सुझाव दिया है।

3.4.3. मैक्ग्रेगर की X तथा Y विचारधारा (McGregor's X and Y Ideology)

डगलस मैक्ग्रेगर के प्रबन्ध में अभिप्रेरणा को हृदय कहा गया है। किसी भी संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु सदस्यों को अभिप्रेरित करना चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि प्रबन्ध अपने कर्मचारियों को किस तरह से अभिप्रेरित कर सकता है? या प्रबन्धक को क्या–क्या करने की आवश्यकता है? इससे सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर अनेक विचारकों ने अपने–अपने विचारधाराओं (सिद्धान्तों) के द्वारा देने का प्रयास किया है। अतः 'थ्योरी–X तथा थ्योरी–Y' इन्हीं विचारधाराओं में से एक है।

1960 में डगलस मैक्ग्रेगर ने सिद्धान्त X तथा सिद्धान्त Y प्रस्तुत किया है जो मुख्य रूप से मानव जाति के दार्शनिक दृष्टिकोण पर विचार करता है तथा यह मास्लों के आवश्यकता सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के दो अलग–अलग विचार होते हैं– सकारात्मक तथा नकारात्मक। **मैक्ग्रेगर** ने नकारात्मक विचार को **सिद्धान्त "X"** तथा सकारात्मक विचार को **सिद्धान्त "Y"** कहा है। प्रबन्धन संगठनात्मक में निर्देशन और नियन्त्रण के उद्देश्यों हेतु प्रभावशाली अभिप्रेरणा को प्रोत्साहित करने में आज की परिस्थितियों में विफल होता है। यह विफलता इसलिए होती है क्योंकि निर्देशन और नियन्त्रण उन लोगों को प्रेरित करने का उपयुक्त तरीका नहीं है जिनकी शारीरिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ पहले से ही सन्तुष्ट हैं। ऐसे लोगों की सामाजिक, अहमवादी और आत्म–पूर्ति की आवश्यकताएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं।

इसलिए, प्रबन्धन को आवश्यक है कि वह अपने दृष्टिकोण को बदलकर अभिप्रेरणा के और प्रभावी तरीकों को अपनाए, ताकि संगठन के सदस्यों की गहरी मानसिक आवश्यकताओं को समझा जा सके और उन्हें सच्ची प्रेरणा मिल सके। मेयो के कार्यों, विशेषकर 'भीड़ परिकल्पना' (रेबल हायपोथेसिस) ने मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त–X और सिद्धान्त–Y के लिए रास्ता तैयार किया है। इसे मैक्ग्रेगर ने अपनी पुस्तक 'दी ह्यूमन साइड ऑफ एन्टरप्राइज' में थ्योरी–X और थ्योरी–Y का प्रतिपादन किया। जिसमें पूर्व मेयों के हॉथोर्न प्रयोग किए जा चुके थे।

मैक्ग्रेगर लिखते हैं कि, मानवीय प्रकृति को व्यक्ति अपनी इच्छाओं के समान बनाने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति पहचान कर लें कि नियन्त्रण मानवीय प्रकृति के चयनित अनुकूलन से बना हैं। जिससे कि व्यक्ति अपनी नियन्त्रण करने की क्षमता को सुधार सकता हैं तथा मानवीय व्यवहार का पूर्वानुमान लगाया जा सकता हैं।

यदि व्यक्ति नियन्त्रण के प्रयास में असफल होते हैं, तो इसका सामान्य कारण अनुपयुक्त साधनों के चयन में निहित होता है। उनका कहना है कि केन्द्रीकृत निर्णय, पदसोपानात्मक पिरामिड और कार्य के बाहरी नियन्त्रण वाले पारम्परिक संगठन मानवीय प्रकृति एवं मानवीय व्यवहार की कतिपय मान्यताओं पर आधारित होते हैं। इन्हें मैक्ग्रेगर 'थ्योरी–X' कहकर बुलाते हैं, जो मेयो द्वारा रैबल परिकल्पना से सम्बन्धित मान्यताओं से मेल खाती हैं। इसके अलावा, मैक्ग्रेगर ने 'थ्योरी–Y' का प्रतिपादन मानवीय प्रकृति की सकारात्मक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए किया है।

3.4.3.1. सिद्धान्त X की मान्यताएँ (Assumptions of X Theory)

सिद्धान्त **X** के अनुसार, "प्रबन्धकों द्वारा अनुसरण की जाने वाले चार मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

1) **कार्य की अरुचि**–अधिकांश कर्मचारी उन्हें दिए गए कार्य की अनदेखी करने का प्रयास करते हैं क्योंकि उनकी कार्य के प्रति स्वभाविक अरूचि होती है। यह 'थ्योरी–X' मानकर चलती है कि ज्यादा–से–ज्यादा लोगों में कार्य के प्रति अरुचि देखने को मिलती है। इससे लोगों में नकारात्मक सोच उत्पन्न होती है एवं वह व्यक्ति कार्य नहीं करना चाहता है।

2) **कम महत्त्वाकांक्षा, उत्तरदायित्व लेने की अरुचि और निर्देशन को वरीयता**– इसके अन्तर्गत लोगों में उत्तरदायित्व ग्रहण करने की ज्यादा कमी दिखायी देती है तथा वे निर्देशित होना अधिक पसन्द करते हैं। ज्यादा–से–ज्यादा लोग महत्त्वाकांक्षी नहीं होते हैं तथा वे अपनी वर्तमान स्थिति से ही सन्तुष्ट होते हैं।

3) **संगठनात्मक समस्याओं को सुलझाने में रचनात्मक क्षमता की कमी**– 'थ्योरी–X' में संगठन की समस्याओं का समाधान निकालने के लिए सहयोगी क्रियाओं की मदद लेनी चाहिए। परन्तु इस विचारधारा के अनुसार संगठन के ज्यादा–से–ज्यादा लोगों में समस्या समाधान की सृजनात्मक क्षमता की कमी देखी जाती है।

4) **शारीरिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकता स्तर पर ही अभिप्रेरणा**–व्यक्ति को धन, फ्रिज परिलाभों एवं सुरक्षा प्रदान करके ही अभिप्रेरित किया जा सकता है। क्योंकि 'थ्योरी–X' की मान्यता है कि अभिप्रेरणा केवल शारीरिक तथा सुरक्षात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करके ही उत्पन्न की जा सकती है। मानव की आवश्यकताओं में सबसे निम्न स्तरीय आवश्यकताएँ शारीरिक और सुरक्षात्मक होती है।

5) **कठोर नियन्त्रण और दण्ड**–इसमें अधिकांश लोगों को संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उन पर कठोर नियन्त्रण और उन्हें दण्ड भी दिया जाना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक रुचि नहीं लेता है, जिससे लक्ष्य प्राप्त करने में समस्याएँ बढ जाती है।

मैक्ग्रेगर ने 'थ्योरी– X' की विवेचना के बाद, यह परीक्षण किया कि क्या मानवीय प्रकृति के बारे में विचार सही हैं और क्या वर्तमान परिस्थितियों में इस दृष्टिकोण पर आधारित प्रबन्धन व्यवहार लागू हो रहा है या नहीं। उनका मानना था कि शिक्षा और जीवन स्तर में वृद्धि के कारण व्यक्ति ज्यादा–से–ज्यादा उचित व्यवहार करने में सक्षम हो सकता है। मैक्ग्रेगर ने बाद में यह स्वीकार किया कि 'थ्योरी–X' संगठन पर आधारित अपने कर्मचारियों को अभिप्रेरित नहीं कर सकती है। इसीलिए मानवीय प्रकृति के बारे में 'थ्योरी–X' की मान्यताएँ सही नहीं हैं। उनका तर्क था कि प्रबन्धन के द्वारा निर्देशन और नियन्त्रण सफल नहीं हो सकता है, क्योंकि ये तरीके उन लोगों को प्रेरित करने में प्रभावी नहीं होते जिनकी शारीरिक और सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी हो चुकी होती हैं। जबकि सामाजिक, आत्म–सम्मान और आत्म–विश्लेषण की आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं। मैक्ग्रेगर ने अनुभव किया कि प्रबन्धन के लिए मानवीय प्रकृति एवं अभिप्रेरणा की एक बेहतर समझ रखने वाले व्यवहारों की जरूरत है। इसलिए, उन्होंने मानवीय व्यवहार की एक वैकल्पिक थ्योरी विकसित की, जिसे 'थ्योरी–Y' का नाम दिया। यह विचारधारा मानवीय प्रकृति को सकारात्मक और आशावादी दृष्टिकोण से देखती है, यह मानते हुए कि लोग स्वभाव से आलसी और अविश्वसनीय नहीं होते है। यह सुझाव देती है कि यदि लोगों को सही तरीके से अभिप्रेरित किया जाए, तो वे कार्य करने में अधिक रचनात्मक हो सकते हैं।

3.4.3.2. सिद्धान्त Y की मान्यताएँ (Assumptions of Y Theory)

"थ्योरी Y" मानव संसाधन प्रबन्धन की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है, जिसे डगलस मैक्ग्रेगर ने 1960 के दशक में प्रस्तुत किया था। यह थ्योरी प्रबन्धन के दृष्टिकोण को व्यक्तियों की सम्भावनाओं एवं प्रेरणाओं के सन्दर्भ में देखती है। मैक्ग्रेगर का सिद्धान्त **Y** के अनुसार, विभिन्न सकारात्मक मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

1) **कार्य उतना ही स्वाभाविक होता है जितना कि खेलना**–'थ्योरी–Y' यह मानती है कि व्यक्ति स्वाभाविक रूप से काम करना पसन्द करता है एवं अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए अभिप्रेरित होता है। किन्तु कार्य करना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि खेलना और आराम करना। जिस प्रकार खेलने और आराम करने से व्यक्ति आनन्दित होता है उसी प्रकार यदि व्यक्ति को अनुकल, व्यवस्थित एवं सुचारू रूप से दशाएँ उपलब्ध कराई जाएँ तो वह कार्य करने से भी आनन्द प्राप्त करता है।

2) **आत्म–नियन्त्रण**–'थ्योरी–Y' मानती है कि कर्मचारी स्वायत्तता और स्वतन्त्रता के साथ काम करने में अधिक कुशल होते हैं। उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए। संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आत्म–नियन्त्रण अति–आवश्यक है। आत्म–नियन्त्रण या स्व–नियन्त्रित व्यक्ति संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक अभिप्रेरित होता है।

3) **समस्या समाधान के लिए उच्च सृजनात्मकता**–थ्योरी Y में यह भी कहा गया है कि अधिकांश व्यक्ति सृजनात्मक और समस्या समाधान करने की क्षमताएँ रखते हैं, जिन्हें विकसित एवं प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह सृजनात्मकता संकुचित न होकर जनसंख्या में विस्तृत रूप से वितरित होती है। इस प्रकार यह सकारात्मक धारणा है और लोगों की संगठनात्मक समस्याओं के समाधान में रुचि को प्रदर्शित करती है।

4) **अभिप्रेरणा सभी आवश्यकताओं पर**–'थ्योरी–Y' यह मानती है कि केवल भौतिक परिलाभों द्वारा ही नहीं बल्कि अनौपचारिक साधनों द्वारा भी व्यक्ति को अभिप्रेरित किया जा सकता है। अर्थात् निम्न स्तरीय आवश्यकताओं के साथ–साथ उच्च स्तरीय सामाजिक, सम्मान और आत्म–विश्लेषण की आवश्यकताओं की पूर्ति करके भी अभिप्रेरित किया जा सकता है।

5) **स्व–निर्देशन और रचनात्मकता**–कर्मचारियों की भागीदारी और सहयोग को प्रोत्साहित करना, जिससे वे संगठन के लक्ष्यों को अपने लक्ष्यों के रूप में मानने लगे। यदि व्यक्ति को सही तरीके से अभिप्रेरित किया जाए तो वह स्व–निर्देशित और अधिक रचनात्मक हो सकता है।

6) **उत्तरदायित्व स्वीकार करना**–'थ्योरी–Y' के अन्तर्गत कर्मचारियों के लिए विकास के अवसर प्रदान करना, जिससे वे अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग कर सकें। व्यक्ति उत्तरदायित्वों से नहीं बचता तथा उन्हें स्वेच्छा से स्वीकार करता है। अर्थात् सामान्यतया व्यक्ति को यदि अच्छी दशाएँ उपलब्ध कराई जाएँ तो वह न केवल उत्तरदायित्व को स्वीकार ही करता है अपितु उसकी खोज भी करता है।

'थ्योरी–X' कर्मचारी के स्वाभाविक रूप से काम करने से बचने और उन्हें प्रेरित करने के लिए सख्त नियन्त्रण के तरीकों तथा तकनीकों पर जोर देने की ओर ले जाती है। जो लोगों को बताती हैं कि क्या करना है, कार्य की प्रगति का निर्धारण करती है, और पुरस्कारों तथा दंड के प्रशासन की ओर संकेत करती है। इसका कारण यह है कि उद्यम की सफलता के लिए लोगों को क्या करना है, यह बताने के लिए निर्देशन और नियन्त्रण की तकनीकों पर सीधा ध्यान देना जरूरी है।

इसके विपरीत, मैक्ग्रेगर का मानना है कि यदि प्रबन्धन 'थ्योरी Y' को अपनाता है, तो यह संगठन की उत्पादकता और कर्मचारियों की सन्तुष्टि को बढ़ा सकती है। उनके विचार संगठनात्मक व्यवहार, मानव संसाधन प्रबन्धन और नेतृत्व में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'थ्योरी–Y' सम्बन्धों की प्रकृति पर ध्यान केन्द्रित करने की ओर ले जाती है। यह ऐसा पर्यावरण सृजित करके करती है जो संगठनात्मक उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता को प्रोत्साहित करता है तथा उद्देश्यों की प्राप्ति में पहल, बुद्धि तथा आत्म–निर्देशन के अधिकाधिक व्यवहार के अवसर प्रदान करता है।

3.4.4. सिद्धान्त X तथा सिद्धान्त Y में अन्तर (Difference Between X Theory and Y Theory)

सिद्धान्त **X** तथा सिद्धान्त **Y** एक ही सिक्के के दो पहलू हैं हालाँकि, ये दोनों मनुष्य के स्वभाव से सम्बन्धित हैं परन्तु एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत है। दोनों सिद्धान्तों के मध्य अंतर नीचे दिया गया है–

अन्तर का आधार (Basis of Comparison)	सिद्धान्त X (X Theory)	सिद्धान्त Y (Y Theory)
1) कार्य के प्रति दृष्टिकोण (Attitude towards Work)	इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकतर कर्मचारी स्वाभाविक रूप से कार्य करना पसंद नहीं करते हैं।	इस सिद्धान्त का मानना है कि यदि कर्मचारियों को उपयुक्त वातावरण प्रदान किया जाए तो वे अपने कार्य को एक खेल मानते हैं तथा इसे करने का आनन्द लेते हैं।

2) **उत्तरदायित्व को स्वीकार करना (Acceptance of Responsibility)**	अधिकतर कर्मचारी उत्तरदायित्व से बचते हैं जो उनकी गैर महत्त्वाकांक्षिता को दर्शाता है। वे नेतृत्व करने के बजाय अनुसरण करना अधिक पसन्द करते हैं।	जब कर्मचारियों को प्रेरित किया जाता है वे न केवल आत्मविश्वास के साथ स्वयं को निर्देशित करते हैं बल्कि उत्तरदायित्व को भी खुले दिल से लेते हैं।
3) **रचनात्मकता (Creativity)**	चूँकि लोग अपने उत्तरदायित्व के बारे में गम्भीर नहीं होते हैं, इसलिए वे संगठनात्मक समस्याओं को सुलझाने के लिए अपनी रचनात्मकता का उपयोग करने से बचते हैं।	इस सिद्धान्त के अनुसार, नवान्वेषी होने का सम्बन्ध केवल उच्च प्रबंधकीय अधिकारियों से नहीं है बल्कि यह क्षमता प्रत्येक व्यक्ति में होती है।
4) **अभिप्रेरणा (Motivation)**	आधारभूत आवश्यकताओं एवं सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति कर्मचारियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।	अभिप्रेरणा आधारभूत शारीरिक एवं सुरक्षा आवश्यकताओं की संतुष्टि तक सीमित नहीं है। सामाजिक, अहम एवं आत्म–प्राप्ति की आवश्यकताओं की संतुष्टि से अभिप्रेरणा में वृद्धि होती है।
5) **नियन्त्रण (Control)**	वरिष्ठों द्वारा सत्तावादी नियन्त्रण कर्मचारियों से कार्य करवाने एवं स्थापित संगठनात्मक लक्ष्यों को पूरा करने का एकमात्र तरीका है।	कर्मचारी, जब उचित रूप से प्रेरित होते हैं तो स्वयं को सही दिशा में ले जा सकते हैं तथा अपनी गतिविधियों को नियंत्रित कर सकते हैं।
6) **केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण (Centralisation and Decentralisation)**	सिद्धान्त X कम्पनी के उच्च श्रेणी के प्रबन्धकों पर केन्द्रित है तथा यह एक क्रमबद्ध प्रणाली का अनुसरण करता है।	सिद्धान्त Y का मुख्य उद्देश्य निर्णय लेने में कर्मचारियों की भागीदारी स्तर में वृद्धि करना है तथा यह विकेन्द्रीकरण पर केन्द्रित है।
7) **नेतृत्व (Leadership)**	यह सिद्धान्त निरंकुश नेतृत्व पर आधारित है। इसमें पहल का अभाव पाया जाता है।	यह सिद्धान्त सहभागिता एवं लोकतांत्रिक नेतृत्व पर आधारित है। इसमें पहल को प्रोत्साहन मिलता है।

संक्षेप में कह सकते है कि डगलस मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त आज भी प्रबन्धन के क्षेत्र में अध्ययन एवं अनुसन्धान का आधार बने हुए हैं तथा उनके विचार कर्मचारियों की मानसिकता और प्रबन्धन के बीच के सम्बन्ध को समझने में मदद करते हैं। मैक्ग्रेगर के 'X' तथा 'Y' सिद्धान्त मानव प्रकृति के विषय में पूर्णतया विरोधी मान्यताओं पर आधारित हैं। 'Y' सिद्धान्त के अनुसार मानव विकास की निहित क्षमताओं वाला है एवं सकारात्मक है।

3.4.5. मैक्ग्रेगर व लिकर्ट के सिद्धान्त की तुलना (Comparison of McGregor and Likert Theory)

मैक्ग्रेगर की 'थ्योरी–X' और 'थ्योरी–Y' को समझने के लिए विचारकों की विचारधाराओं में से रेन्सिस लिकर्ट की प्रणाली 1–4 से जोड़ सकते हैं।

इस तुलना को रेखाचित्र में निम्नलिखित तरीके से दर्शाया गया है–

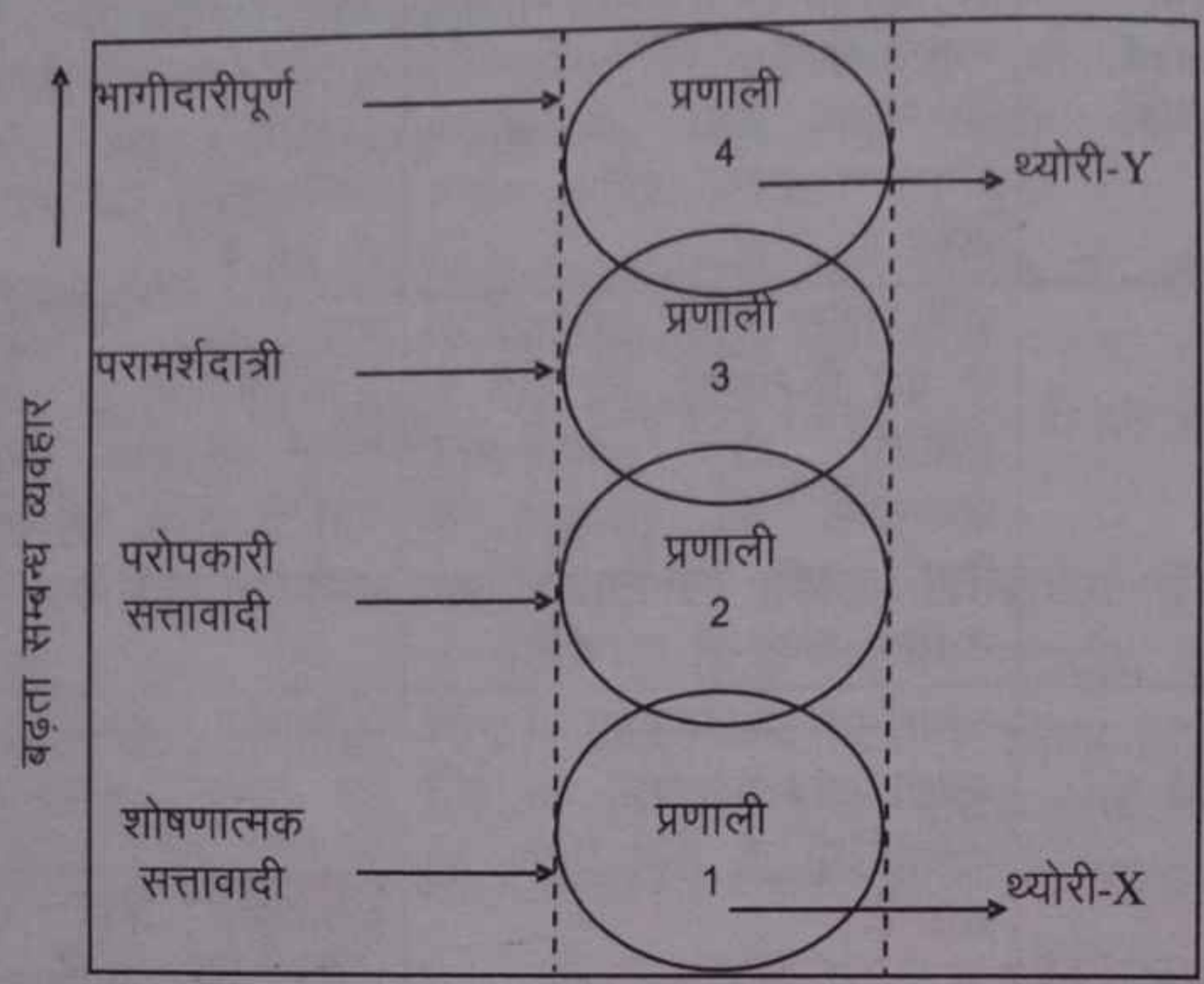

चित्र 3.8– मैक्ग्रेगर व लिकर्ट की विचारधाराओं की तुलना

मैक्ग्रेगर की 'थ्योरी–X' रेन्सिस लिकर्ट की प्रणाली–1 की मान्यताओं से सम्बन्धित एवं नियन्त्रण, आलस्य की धारणा, नकारात्मक विचारधाराओं में शामिल है। इसके अन्तर्गत लोग निर्देशित होना अधिक पसन्द करते हैं तथा सहभागिता, सकारात्मक दृष्टिकोण, आत्म–प्रेरणा, उत्तरदायित्व लेने में कोई रुचि नहीं रखते और सुरक्षा को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं। इसी प्रकार प्रणाली–4 'थ्योरी–Y' की मान्यताओं से मेल खाती है।

3.4.6. मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation of McGregor's Theory)

मैक्ग्रेगर का सिद्धान्त दो प्रमुख विचारों पर आधारित है–थ्योरी X और थ्योरी Y इस सिद्धान्त का मूल्यांकन निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से किया जा सकता है–

1) **व्यवहारिक विचारधारा**–थ्योरी X मानती है कि लोग काम से बचते हैं तथा उन्हें नियन्त्रण में रखना आवश्यक है। यह विचारधारा उन संगठनों में प्रभावी हो सकती है जहाँ काम के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण होता है। थ्योरी Y के अनुसार, लोग स्वाभाविक रूप से प्रेरित होते हैं और उन्हें अवसर दिया जाना चाहिए। यह विचारधारा आधुनिक प्रबन्धन में अधिक प्रभावी है।

2) **प्रबन्धन शैलियाँ**–मैक्ग्रेगर का सिद्धान्त प्रबन्धकों को उनकी प्रबन्धन शैलियों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है, कि प्रबन्धक स्वयं समझ सकते हैं कि उन्हें अपने कर्मचारियों के साथ कैसे बातचीत करनी चाहिए। मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त किसी आनुभविक शोध पर आधारित नहीं हैं। उनके दोनों सिद्धान्त मात्र सामान्य मान्यताओं पर आधारित हैं।

3) **आधुनिक संगठन**–वर्तमान में संगठन अपने कर्मचारियों की अभिप्रेरणा एवं विकास पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं, जिससे रचनात्मकता और उत्पादकता में वृद्धि होती है। मैक्ग्रेगर ने शारीरिक श्रम करने वाले एवं मानसिक श्रम करने वाले व्यक्तियों के बीच कोई अन्तर नहीं किया है जबकि सिद्धान्त 'Y' प्रबुद्ध कर्मचारियों के लिए अधिक प्रासंगिक है।

4) **उपयोगिता और सीमाएँ**–इसकी उपयोगिता यह है कि कर्मचारियों के मनोविज्ञान को समझने में मदद करता है एवं प्रबन्धन के विभिन्न विचारों पर प्रकाश डालता है। मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त में सभी कर्मचारियों के लिए थ्योरी Y की धारणा लागू नहीं होती है। कुछ लोग थ्योरी X के अनुसार ही कार्य करते हैं, जिससे प्रबन्धकों को व्यक्तिगत रूप से विचार करना पड़ता है।

संक्षेप में, मैक्ग्रेगर का सिद्धान्त X और Y प्रबन्धन और मानव संसाधन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। यह सिद्धान्त कर्मचारियों की अभिप्रेरणा एवं प्रबन्धन की प्रभावशीलता को समझने में मदद करता है। हालाँकि, प्रबन्धकों को यह समझना आवश्यक है कि हर कर्मचारी एक जैसा नहीं होता तथा उन्हें विभिन्न स्थितियों के अनुसार अपनी प्रबन्धन शैली को अनुकूलित करना चाहिए। मानवीय प्रकृति के बारे में सिद्धान्त Y की मान्यताओं को मानते हुए भी यह सम्भव है कि प्रबन्धक कुछ समय के लिए कुछ लोगों के साथ आवश्यकतानुसार अत्यन्त निर्देशात्मक और नियन्त्रणात्मक तरीके से पेश आ सकता है।

3.5. सहभागी प्रबन्धन (PARTICIPATIVE MANAGEMENT)

सहभागी प्रबंधन एक प्रबंधन शैली/तकनीक है जिसमें निर्णय लेने की प्रक्रिया में कर्मचारियों को शामिल किया जाता है। इसे सहभागी नेतृत्व भी कहा जाता है। सहभागी प्रबंधन से तात्पर्य किसी संगठन में काम करने के लोकतांत्रिक तरीके से है जिसमें प्रत्येक कर्मचारी संगठन के कल्याण में भाग लेता है। यह एक दृष्टिकोण है जो इस विचार पर आधारित है कि प्रबंधकों एवं कर्मचारियों को लक्ष्य प्राप्त करने, समस्याओं को हल करने एवं उत्पादकता व प्रदर्शन में सुधार करने के लिए मिलकर काम करना चाहिए। वास्तव में, निर्णय लेने में कर्मचारियों को शामिल करके तथा उनकी सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करके, सहभागी प्रबंधन एक अधिक संतोषजनक, अधिक प्रेरक और अधिक उत्पादक कार्य वातावरण बनाने में सहायता कर सकता है।

सहभागी प्रबंधन कर्मचारियों को सशक्त बनाता है। यह उन्हें अपने काम और संगठन को प्रभावित करने वाले निर्णयों में अपनी बात कहने और भागीदारी करने का अवसर देता है। यह प्रबंधकों और श्रमिकों के बीच परामर्श, दो–तरफा संचार और सहयोग की अनुमति देता है। इसका लक्ष्य संगठन भर से विचारों को एकीकृत करना है। इसका उद्देश्य बेहतर जानकारी वाले निर्णय लेना और उन्हें अधिक प्रभावी तरीके से लागू करना है। इस प्रकार, सहभागी प्रबंधन एक लोकतांत्रिक दर्शन है जो संगठन के सभी सदस्यों का सम्मान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को योगदान करने और प्राप्त परिणामों से लाभ उठाने का अवसर मिलता है।

स्टीफन पी. रॉबिंस के अनुसार, 'सहभागी प्रबंधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अधीनस्थ अपने तत्काल वरिष्ठों के साथ निर्णय लेने की शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा साझा करते हैं।'

अतः यहाँ पर सहभागी प्रबंधन के प्रमुख विचारकों के विचारों का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जा रहा है–

1) क्रिस आर्गिरिस (Chris Argyris)
2) रेंसिस लिकर्ट (Rensis Likert)

3.6. क्रिस आर्गिरिस (CHRIS ARGYRIS)

क्रिस आर्गिरिस का जन्म 16 जुलाई 1923 को नेवार्क, न्यू जर्सी में हुआ था तथा वहीं पर वे पले–बढ़े। आर्गिरिस का शैक्षणिक रिकॉर्ड काफी श्रेष्ठ है। उन्होंने 1947 में मैसाचुसेट्स के वॉर्सेस्टर में क्लार्क विश्वविद्यालय से अपनी पहली स्नातक डिग्री प्राप्त की। इसके पश्चात् कैनसस विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान तथा अर्थशास्त्र में एमए करने के बाद 1951 में कॉर्नेल विश्वविद्यालय से संगठनात्मक व्यवहार में डॉक्टरेट (पीएचडी) की उपाधि प्राप्त की। एक प्रतिष्ठित करियर में क्रिस आर्गिरिस येल विश्वविद्यालय (1951–1971) में एक संकाय सदस्य रहे। फिर वे हावर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा तथा संगठनात्मक व्यवहार के प्रोफेसर बने। उन्होंने अपना काफी समय परामर्शदाता के रूप में व्यतीत किया तथा सदैव इस बात की खोज करने मे रुचि ली कि किस प्रकार संगठनात्मक आवश्यकताओं एवं व्यक्तियों की आवश्यकताओं के मध्य सामंजस्य की स्थापना की जाए। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान वे यूएस आर्मी में सिग्नल कोर में शामिल हुए तथा सेकंड लेफ्टिनेंट बने। वहाँ से वे क्लार्क विश्वविद्यालय गए, जहाँ से वे कर्ट लेविन के संपर्क में आए। साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान देने के अलावा आप एक समर्पित और प्रतिबद्ध शिक्षक के रूप में भी जाने जाते थे। आर्गिरिस कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स में मॉनिटर कंपनी के निदेशक भी थे।

क्रिस आर्गिरिस उच्च कोटि की लेखन क्षमता के धनी व्यक्ति थे। उनके शुरुआती शोध ने व्यक्तियों पर औपचारिक संगठनात्मक संरचनाओं, नियंत्रण प्रणालियों एवं प्रबंधन के प्रभाव की खोज की। इस शोध के परिणामस्वरूप 'पर्सनालिटी एंड ऑर्गनाइजेशन' (1957) (Personality and Organization) एवं 'इंटीग्रेटिंग द इंडिविजुअल एंड द ऑर्गनाइजेशन' (1964) (Integrating the Individual and the Organization) पुस्तकें सामने आईं। इसके बाद उन्होंने अपना ध्यान संगठनात्मक परिवर्तन पर केंद्रित कर दिया, विशेष रूप से संगठनों में वरिष्ठ अधिकारियों के व्यवहार की खोज की तथा 'इंटरपर्सनल कॉम्पिटेंस एंड ऑर्गनाइजेशनल इफेक्टिवनेस' (1962) एवं 'ऑर्गनाइजेशन एंड इनोवेशन' (1965) (Organization and Innovation) नामक पुस्तकों की रचना की। इन पुस्तकों के अलावा समय–समय पर आर्गिरिस के अनेक लेख प्रकाशित होते रहे जिनमें 'डायगनोसिंग ह्यूमन रिलेशन्स इन ऑर्गेनाइजेशन', 'ऑर्गेनाइजेशनल इफेक्टिवनेस अण्डर स्ट्रेस', 'टी–ग्रुप्स फॉर ऑर्गेनाइजेशनल इफेक्टिवनेस' आदि प्रमुख हैं। 16 नवंबर, 2013 को उनकी मृत्यु हो गई।

3.6.1. संगठनात्मक सिद्धान्त– संयोजन मॉडल (Chris Argyris's Organisational Theory– Fusion Model)

क्रिस आर्गिरिस ने संगठन के सम्बन्ध में कई मौलिक विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'पर्सनालिटी एंड ऑर्गनाइजेशन' (1957) (Personality and Organization) में संगठन की परम्परागत विचारधारा की आलोचना करते हुए उस आधारभूत असंगति (इनको ग्रुएन्सी) की ओर ध्यान केन्द्रित किया जो एक परिपक्व कर्मचारी की आवश्यकताओं एवं संगठन की आवश्यकताओं के मध्य उपस्थित होती है। उनका मानना था कि औपचारिक संगठनात्मक सिद्धान्त स्वस्थ व्यक्तियों से जिन माँगों को पूर्ण करना चाहते हैं, वे उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं से असंगति रखती हैं। इस आधारभूत असंगति के कारण ही निराशा, संघर्ष, विफलता एवं अल्पकालीन परिप्रेक्ष्य का जन्म होता है। आर्गिरिस ने अपनी इस आधारभूत असंगति की विचारधारा की पुष्टि करने के लिए कई अनुभवात्मक प्रमाण प्रस्तुत किए।

उनका कहना था कि संगठन में कार्यरत व्यक्ति संगठन की औपचारिक संरचना से स्वचालित अनुकूलन नहीं कर सकते है। एक संगठन से अनुकूलन करने के लिए व्यक्ति निम्नलिखित कार्य कर सकता है–

1) **व्यक्ति संगठन को छोड़ दे** वस्तुतः यदि कोई व्यक्ति संगठन के साथ अनुकूलन करने में सफल नहीं हो पाता है तो वह उस संगठन को छोड़ देता है। ऐसा करके वह अनुकूलन की आवश्यकता को ही समाप्त कर सकता है।

2) **व्यक्ति संगठन की सीढ़ी से ऊपर चढ़ जाए** अर्थात् यदि वह व्यक्ति संगठनात्मक सीढ़ी में कुछ पायदान ऊपर चढ़ जाए तो उसे वहां नई आवश्यकताओं से अनुकूलन करना पड़ेगा और हो सकता है कि वह उन नई आवश्यकताओं से अनुकूलन करने मे सफल हो जाए। यद्यपि हर परिस्थिति में यह सम्भव नहीं हो सकता।

3) **सुरक्षात्मक क्रियाविधि को अपनाना**–संगठनात्मक अनुकूलन का एक तरीका सुरक्षात्मक क्रियाविधि को अपनाना भी हो सकता है।

4) संगठनात्मक अनुकूलन के चौथे तरीके में **व्यक्ति की अरुचि एवं उदासीनता** आती है। अर्थात् यदि व्यक्ति अनुकूलन के कार्य में कोई रुचि ही न दिखाए तथा पूर्णतया उदासीन होकर रहे तो भी इस आवश्यकता को सन्तुष्ट कर सकता है। परन्तु यह तरीका पलायनवादी हो सकता है।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि आर्गिरिस की 'आधारभूत असंगति' की विचारधारा ई. डब्ल्यू. बैक (E. W. Bakke) के कार्यों का ही विस्तार है। ई. डब्ल्यू. बैक येल विश्वविद्यालय में प्रबंधन सिद्धान्तकार एवं प्रोफेसर थे। बैक पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने यह माना कि दो वस्तुओ (व्यक्तिगत आवश्यकता एवं संगठन की आवश्यकता) के मध्य उचित एकीकरण ही संगठनात्मक सफलता का रहस्य है। उन्होंने जोर देकर कहा कि दो वस्तुओं के मध्य एकरूपता या संलयन, संगठनात्मक सफलता लाता है। बैक ने संगठन का विश्लेषण 'संयोजन/संलयन प्रक्रिया' (Fusion Process) के दृष्टिकोण से किया था जिसमें संगठन एवं व्यक्ति के लक्ष्यों को अलग–अलग करके पहचाना जाता है। इसमें इस बात को स्वीकार किया जाता है कि संगठन एक खुली प्रणाली है, यह गतिशील क्रियाओं युक्त व्यवस्था है तथा इसमें औपचारिक के साथ–साथ अनौपचारिक व्यवहार भी शामिल हैं। इसमें तीन प्रक्रियाएँ शामिल हैं–

1) पहली, **संगठनात्मक या समाजीकरण प्रक्रिया।** यह उन क्रियाओं की ओर संकेत देती है जो किसी संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान देती हैं।

2) दूसरी, **व्यक्तिकरण या वैयक्तिकरण प्रक्रिया।** इसमें वे क्रियाएँ शामिल हैं जो व्यक्तिगत विकास में योगदान देती है।

3) तीसरी, **संयोजन या फ्यूजन प्रक्रिया।** जो समाजीकरण एवं व्यक्तिकरण के साथ–साथ परिचालन की ओर संकेत करती है।

आगे चलकर आर्गिरिस ने बैक के साथ मिलकर संगठन की संयोजन प्रक्रिया विचारधारा का विकास किया। आप दोनों ने एक साथ मिलकर कई आनुभविक शोध किए। येल विश्वविद्यालय में किए गए इन अध्ययनों का उद्देश्य संगठन के एक नए सैद्धान्तिक ढ़ांचे का विकास करना था। इन शोधों में सामाजिक–मनोवैज्ञानिक आयामों की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा इसका मुख्य उद्देश्य ऐसी प्रक्रिया का पता लगाना था जिसके द्वारा संगठन एवं व्यक्ति एक–दूसरे की आवश्यकताओं से अनुकूलन कर सकें। फ्यूजन प्रक्रिया को समझने के लिए बिल्कुल आवश्यक बुनियादी सामान्यीकरण यह है कि व्यक्ति

एवं संगठन दोनों अद्वितीय एवं संपूर्ण संस्थाएं हैं। संगठन के व्यक्ति एवं एजेंट दोनों अद्वितीय संपूर्णता की इस अवधारणा को बनाए रखने, विकसित करने, व्यक्त करने एवं अनुभव करने का प्रयास करते हैं जो उनके आत्म–साक्षात्कार का आधार है। इसी प्रकार संयोजन की प्रक्रिया **संगठनात्मक** एवं **वैयक्तिकरण** के एक साथ पाए जाने से ही होती है। बाद में आर्गिरिस ने अपनी विचारधारा का परीक्षण किया तथा बाद के अध्ययनों के पश्चात् निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए–

1) व्यक्ति एवं संगठन अलग–अलग संगठित व्यवस्थाएँ हैं।
2) दोनों व्यवस्थाएँ (व्यक्ति एवं संगठन) अपना–अपना विकास चाहती हैं।
3) ऐसी गतिविधियाँ जिनकी सहायता से व्यक्ति अपना विकास करता है उनको **व्यक्तिकरण या वैयक्तिकरण प्रक्रिया** में शामिल किया जाता है।
4) ऐसी गतिविधियाँ जिनकी सहायता से संगठन अपना विकास करता है उनको **संगठनात्मक या समाजीकरण** की प्रक्रिया में शामिल किया जाता है।
5) उपरोक्त प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में दो परिकल्पनाएँ परिभाषित की जाती हैं।
   i) **वैयक्तिकरण प्रक्रिया** की अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, संगठन के साथ व्यक्ति का संयोजन उतना ही अधिक होता है।
   ii) **समाजीकरण प्रक्रिया** की अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, व्यक्ति के साथ संगठन का संयोजन उतना ही अधिक होता है।
6) जिस 'चीज/वस्तु' की अभिव्यक्ति होती है, वह है–
   i) **वैयक्तिकरण प्रक्रिया** के मामले में व्यक्ति के एक निश्चित व्यवहार के प्रकार की ओर व्यक्तित्व कारकों का एक समुच्चय (Set)।
   ii) **समाजीकरण प्रक्रिया** के मामले में किसी संगठन के परिचालन/संचालन के लिए आवश्यक मानी जाने वाली गतिविधियो (संगठनात्मक कारकों) का एक समुच्चय।
7) वैयक्तिकरण एवं समाजीकरण की प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति की मात्रा का वर्णन करने के लिए एक क्रमिक–गुण पैमाना बनाया जाता है जिसमें चार इकाइयाँ, (कोई अभिव्यक्ति नहीं, न्यूनतम अभिव्यक्ति, पर्याप्त अभिव्यक्ति, अधिकतम अभिव्यक्ति।) शामिल होती हैं।
8) प्रक्रिया में अभिव्यक्ति की मात्रा के मापन का निर्णय इस प्रकार किया जाता है–
   i) व्यक्तित्व कारकों के मामले में व्यक्तियों के दृष्टिकोण से।
   ii) संगठनात्मक कारकों के मामले में संगठन के दृष्टिकोण से।

आर्गिरिस सविस्तार व्यक्तित्व कारकों एवं संगठनात्मक कारकों की पहचान करते हैं। साथ ही इन कारकों की सहायता से संगठनात्मक माँगों एवं वर्तमान आवश्यकताओं के मध्य 'बदलाव' (Variation) देखते हैं। संयोजन मॉडल इसका समर्थन करता है। इस प्रकार आर्गिरिस के इस मॉडल के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ परम्परागत संगठनात्मक विचारधारा औपचारिक सम्बन्धों पर केन्द्रित थी वहीं संयोजन/संलयन मॉडल का सम्बन्ध अनौपचारिक सम्बन्धों से भी है। अतः जब कर्मचारी अपने औपचारिक कार्य प्रवाह से सन्तुष्ट नहीं होते हैं तो वे अनौपचारिक समूह आवश्यकताओं के विकास की ओर बढ़ जाते है। संगठन को सफल होने के लिए अपनी आवश्यकताओं के साथ–साथ संगठन में सेवा कर रहे व्यक्तियों की आवश्यकताओं के लिए भी संघर्ष करना चाहिए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अर्गारिस संयोजन/संलयन मॉडल संगठन की वास्तविक स्थिति का वर्णन करता है।

3.6.2. अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त/मॉडल (Immaturity-Maturity Theory/Model)

प्रबन्धन को अर्गारिस का एक अति–महत्त्वपूर्ण योगदान उनकी 'अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त' (Immaturity Maturity Theory) है। येल विश्वविद्यालय में कार्य करते समय अर्गारिस ने इस बात का परीक्षण किया कि औद्योगिक संगठनों में प्रबन्ध व्यवहारों का व्यक्तियों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है? अतः इनका यह मॉडल सातत्य मानव व्यक्तित्व विकास का एक सिद्धान्त है जो प्रस्तावित करता है कि मानव में कुछ निश्चित प्राकृतिक विकास अनुक्रम होता है जिसे संगठन द्वारा बढ़ाया या बाधित किया जा सकता है।

आर्गिरिस के अनुसार, कई संगठन अपने कर्मचारियों को नियमों, प्रक्रियाओं एवं कठोर औपचारिक संरचनाओं पर अत्यधिक निर्भरता के माध्यम से परिपक्व, स्वतंत्र व्यक्तित्व की इन वांछित अवस्थाओं तक पहुँचने से रोकते हैं। अन्य शब्दों में, परिपक्व एवं स्वतंत्र बनने की एक व्यक्ति की जन्मजात इच्छा प्रबंधन सिद्धान्तों द्वारा दबा दी जाती है जो कर्मचारियों को आश्रित अवस्था में रखने का प्रयास करते हैं। 'अपरिपक्वता– परिपक्वता सिद्धान्त के अनुसार, किसी व्यक्ति का विकास अपरिपक्वता की स्थिति से परिपक्वता की स्थिति में निरंतर बदलाव के साथ होता है। एक परिपक्व व्यक्ति सक्रिय, स्वतंत्र, आत्मविश्वासी एवं आत्म–नियंत्रित होने की विशेषता रखता है। इसके विपरीत, एक अपरिपक्व व्यक्ति निष्क्रिय, आश्रित, आत्मविश्वास की कमी वाला होता है जिसे दूसरों के द्वारा नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

आर्गिरिस का मानना था कि जो प्रबन्धक लोगों के साथ सकारात्मक एवं जिम्मेदार वयस्कों की तरह व्यवहार करते हैं, वे उच्चतम उत्पादकता प्राप्त करने में सक्षम होंगे। आपके विचार से कर्मचारियों द्वारा काम से बचना, रुचि की कमी, अलगाव एवं कम मनोबल जैसी सामान्य समस्याएँ प्रबंधन अभ्यास एवं परिपक्व वयस्क व्यक्तित्व के मध्य असंगतता का संकेत हो सकती हैं। उनके अनुसार नौकरी की जिम्मेदारियों का विस्तार करना, अधिक कार्य विविधता की अनुमति देना एवं अधिक भागीदारी की अनुमति देने व बेहतर मानवीय सम्बन्धों को बढ़ावा देने के लिए पर्यवेक्षी शैलियों को समायोजित करना, इन समस्याओं का समाधान हो सकता है। वे मानवीय व्यक्तित्व के विकास के विभिन्न सोपानों के विशिष्ट आयामों की पहचान करते हैं। उनका मानना था कि यदि संगठन के व्यक्ति परिपक्व व्यक्तियों के रूप में विकसित होते हैं तो उनके व्यक्तित्व में सात प्रकार के परिवर्तन होने चाहिए।

ये सात परिवर्तन हैं–

1) प्रथम परिवर्तन के रूप में व्यक्ति, शिशु के समान निष्क्रिय अवस्था से वयस्कों के समान सक्रिय अवस्था की ओर बढ़ते जाते हैं। अर्थात् यदि व्यक्ति परिपक्व होता है तो वह निष्क्रिय न होकर सक्रिय हो जाता है।

2) दूसरा परिवर्तन के रूप में व्यक्ति दूसरों पर निर्भर होने की अवस्था से एक पारस्परिक–स्वतन्त्रता की अवस्था की ओर कदम बढ़ाता है। अर्थात् शिशु की निर्भरता की स्थिति से निकलकर वह वयस्कों की सापेक्ष स्वतन्त्रता की स्थिति में आ जाते हैं।

3) तीसरा परिवर्तन के रूप में व्यक्ति शिशु के समान केवल कुछ ही तरीकों से व्यवहार नहीं करता अपितु वयस्कों के समान अनेक तरीकों से व्यवहार करने के योग्य हो जाता है।

4) चौथे परिवर्तन के रूप में व्यक्ति, शिशु के समान अनियमित, कारणात्मक एवं सतही हितों के बजाय वयस्कों के समान गहन तथा शक्तिशाली हितों का विकास कर लेता है। एक परिपक्व व्यक्ति की रुचि अनियमित एवं सतही कार्यों में नहीं हो सकती है।

5) पाँचवें परिवर्तन के रूप में व्यक्ति का दृष्टिकोण, शिशु के समान अल्प समय दृष्टिकोण से निकलकर वयस्क व्यक्तियों के समान दीर्घ–दृष्टियुक्त हो जाता है। बच्चे केवल अल्प–दृष्टि से ही सोच सकते हैं। उनकी सोच केवल वर्तमान तक ही सीमित होती है जबकि वयस्क व्यक्ति वर्तमान के साथ–साथ भूतकाल और भविष्य को भी ध्यान में रखकर व्यवहार करते हैं।

6) छठे परिवर्तन के रूप में व्यक्ति, शिशु के समान हर किसी के अधीन रहने की स्थिति से निकलकर ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जहाँ वे या तो समान स्थिति में होते हैं या फिर उच्च स्थिति में।

7) सातवें परिवर्तन के रूप में व्यक्ति, शिशु के समान अपने 'स्व' के प्रति जागरुकता के अभाव की स्थिति से निकलकर ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जहाँ वे न केवल अपने 'स्व' (Self) के प्रति जागरुक होते हैं अपितु उस पर नियन्त्रण करने की स्थिति में भी होते हैं।

आर्गिरिस के विचार में, परिवर्तन के ये सात चरण एक निरंतरता पर रहते हैं एवं 'स्वस्थ' व्यक्तित्व 'अपरिपक्वता' से 'परिपक्वता' तक एक निरंतरता के साथ विकसित होता है। ये परिवर्तन केवल सामान्य रुझान हैं, लेकिन वे परिपक्वता के मामले पर कुछ प्रकाश डालते हैं। इस प्रकार आर्गिरिस इसे एक सततता (Continuum) के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसे इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है–

आर्गिरिस की इस अवधारणा के आधार पर **परिपक्व व्यक्तियों** की निम्न विशेषताओं को पहचान सकते हैं–

1) **सक्रिय**–परिपक्व व्यक्ति सक्रिय होते हैं। वे अपने जीवन की जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं तथा जोखिम लेने से भी नहीं डरते है।

2) **स्वतंत्र**–ऐसे व्यक्ति स्वाधीनता की भावना से युक्त होते हैं। ये स्वयं के लिए सोचने तथा अपने फैसले लेने में सक्षम होते हैं।

3) **आत्मविश्वासी**–ऐसे व्यक्ति अपनी क्षमताओं पर विश्वास करते हैं तथा स्वयं के लिए खड़े होने से नहीं डरते है। ऐसे व्यक्ति बहुत से तरीकों से व्यवहार करना जानते हैं।

4) **आत्म–नियंत्रित**–ऐसे व्यक्ति अपनी भावनाओं एवं आवेगों को प्रबन्धित करने में सक्षम होते हैं। वे अपने 'स्व' को पहचानते हैं तथा नियन्त्रण रखने की क्षमता रखते हैं। ऐसे व्यक्ति की रुचियाँ/हित गहरी तथा शक्तिशाली होती हैं। इनका समय दृष्टिकोण दीर्घकालीन होता है तथा वे सम स्थिति से उच्च स्थिति में रहते हैं।

अपरिपक्व व्यक्तियों में निम्नलिखित गुण होते हैं–

1) **निष्क्रिय**–अपरिपक्व व्यक्ति दूसरों द्वारा नियंत्रित होने एवं बिना किसी सवाल के अपने भाग्य को स्वीकार करने की अधिक संभावना रखते हैं।

2) **आश्रित/अधीनता**–ऐसे व्यक्ति समर्थन एवं मार्गदर्शन के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं।

3) **आत्मविश्वास की कमी**–ऐसे व्यक्ति अपनी क्षमताओं पर संदेह करते हैं। अक्सर ऐसे व्यक्ति जोखिम लेने से डरते हैं तथा पीछे हट जाते है। ऐसे व्यक्ति कुछ ही तरीकों से व्यवहार करना जानते हैं।

4) **नियंत्रण की आवश्यकता**–ऐसे व्यक्ति अपने पर्यावरण एवं अपने आस–पास के लोगों को नियंत्रित करने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्ति की रुचियाँ/हित अनियमित एवं सतही होती हैं। इनका समय दृष्टिकोण अल्पकालीन होता है तथा वे अधीनस्थ स्थिति में रहते हैं।

आर्गिरिस का इस मॉडल के माध्यम से आर्गिरिस ने यह प्रतिपादित किया कि औपचारिक संगठन परिपक्वता–विरोधी होते हैं। आर्गिरिस कहते हैं कि एक परिपक्व व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं औपचारिक संगठन की आवश्यकताओं के मध्य एक निश्चित असंगति उपस्थित है। आर्गिरिस कहते हैं कि लोग संगठन के दृष्टिकोण के अन्तर्गत परिपक्व होने से रोक लिए जाते हैं क्योंकि इसके दो कारण होते हैं–

1) पहला कारण प्रबन्ध के प्रति कड़ा दृष्टिकोण।
2) दूसरा कारण उनमें अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य का अभाव।

इस कारण व्यक्तियों की पूर्ण मनोवैज्ञानिक ऊर्जा नहीं उठ पाती है। आगे आर्गिरिस अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की समस्या का जिक्र करते हुए कहते हैं कि एक व्यक्ति की विश्वसनीयता इस बात से मापी जा सकती है कि वह क्या करता है न कि इस बात से कि वह क्या सोचता है। आर्गिरिस कहते हैं कि जो संगठन इस विकास को स्वीकार करते हैं और इसमें सहायता या सहयोग करते हैं, उनके समृद्ध होने की संभावना उन संगठनों की तुलना में अधिक होगी जिन्होंने इस विकास को अनदेखा किया या सक्रिय रूप से बाधित किया।

आर्गिरिस की परिपक्वता–अपरिपक्वता सातत्य मानव व्यवहार को समझने एवं प्रभावी नेतृत्व रणनीतियों को विकसित करने के लिए एक मूल्यवान उपकरण है। अपरिपक्व एवं परिपक्व व्यक्तियों के गुणों को समझकर, नेता ऐसा माहौल बना सकते हैं जो व्यक्तिगत विकास एवं तरक्की के लिए अनुकूल हो। इसके अलावा, नेता निरंतरता की अपनी समझ का उपयोग अपने कर्मचारियों को उनकी पूरी क्षमता तक पहुँचने में मदद करने के लिए समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए कर सकते हैं।

3.6.3. अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त/मॉडल की सीमाएँ (Limitations of Immaturity-Maturity Theory/Model)

अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त अपनी खूबियों के बावजूद, कुछ सीमाओं के अधीन है–

1) इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है, इसलिए यह देखते हुए कि हर कोई अलग है, इस बात के बहुत सारे अलग–अलग परिणाम हो सकते हैं कि कोई व्यक्ति सभी सात चरणों तक कब पहुँचेगा।
2) इसके अलावा आर्गिरिस मॉडल के सातों आयामों का कठोर वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं किया गया है और इसके दावों को मान्य करने के लिए पर्याप्त अनुभवजन्य साक्ष्य का भी अभाव है। व्यापक परीक्षण एवं परिशोधन की अनुपस्थिति इसकी विश्वसनीयता और सामान्यीकरण में बाधा डालती है।

3) आर्गिरिस मॉडल एक स्वस्थ शिशु के विकास पर आधारित है, तथा विकलांग लोगों एवं उनके विकास को ध्यान में नहीं रखता है। साथ ही इस मॉडल के सातों आयाम (विमाएँ) मात्रा में बालक–सिरे (Infant-end) से वयस्क सिरे तक लगातार बदलते रहते हैं। एक सिरे पर बालक व दूसरे सिरे पर वयस्क मनोवृत्तियाँ होती हैं।
4) आर्गिरिस मॉडल के सातो आयाम सम्पूर्ण व्यक्तित्व के केवल एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह व्यक्ति की सोच, आत्म–अवधारणा, अनुकूलनशीलता तथा सामंजस्य पर निर्भर करता है।
5) यह सिद्धान्त मानता है कि नेता अपने अधीनस्थों की परिपक्वता के स्तर का सटीक आंकलन कर सकते हैं। हालाँकि, वास्तव में, परिपक्वता के सटीक स्तर का सही–सही आंकलन चुनौतीपूर्ण हो सकता है। नेताओं और अधीनस्थों के मध्य धारणा व समझ में अंतर परिपक्वता के स्तर का आंकलन करने में विसंगतियों को जन्म दे सकता है।
6) यह सिद्धान्त मानता है कि अधीनस्थों के परिपक्वता स्तर में परिवर्तन के साथ नेताओं के पास उच्च–कार्य व्यवहार से उच्च सम्बन्ध व्यवहार में संक्रमण के लिए पर्याप्त लचीलापन होता है। हालाँकि, व्यवहार में, देखा गया है कि नेताओं को अपनी नेतृत्व शैली को प्रभावी तरीके से अपनाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, विशेष रूप से तब, जब संघर्ष या परिस्थितिजन्य बाधाएँ उत्पन्न होती हैं।
7) यह मॉडल केवल एक 'निमित्त' है और विशिष्ट व्यवहार की भविष्यवाणी नहीं कर सकता। फिर भी यह किसी भी व्यक्ति की वृद्धि को मापने तथा वर्णन करने की एक विधि उपलब्ध कराता है।

3.6.4. संगठनात्मक परिवर्तन (Organisational Change)

परिवर्तन किसी व्यक्ति या संगठन का उसकी वर्तमान स्थिति से उसके इच्छित भविष्य की स्थिति में संक्रमण है। **पोरस, सिल्वर के अनुसार**, संगठन आमतौर पर आंतरिक या बाहरी कारकों के कारण प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप परिवर्तन का अनुभव करते हैं। यह संगठन के भीतर समय, प्रक्रियाओं, पर्यावरण और अन्य कारकों पर निर्भर एक कारण–और–प्रभाव घटना की तरह है। क्रिस आर्गिरिस संगठनात्मक परिवर्तन की चार रणनीतियों की चर्चा करते हैं।

1) आर्गिरिस महोदय संगठनात्मक परिवर्तन की प्रथम रणनीति के रूप में संगठन से आग्रह करते हैं कि वे अपने कर्मचारियों के लिए ऐसा वातावरण उपलब्ध कराए जिसमें व्यक्ति अपरिपक्वता से परिपक्वता की ओर बढ़ सके।

2) संगठनात्मक परिवर्तन की द्वितीय रणनीति के रूप में आर्गिरिस संगठन में अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य को विकसित करने का सुझाव देते हैं। जैसा कि बताया जा चुका है कि संगठन संगठित व्यक्तियों का समूह है, जिसके अपने निर्धारित लक्ष्य होते है। यह एक सामूहिक प्रयास है जिसके लिए प्रत्येक व्यक्ति द्वारा एक–दूसरे के साथ सहयोग करना एवं आपसी सौहार्द स्थापित करना अपेक्षित है। इसके लिए व्यक्ति में कई अंतर्वैयक्तिक कौशल होने चाहिए। व्यक्ति की दूसरों के साथ एवं एक बड़े समुदाय के साथ अंतःक्रिया कर पाने की योग्यता ही अंतर्वैयक्तिक क्षमता है। आर्गिरिस के विचार से प्रक्रियावादी उपागम का अनुसरण करने वाले संगठनों में अंतर्वैयक्तिक क्षमता कम होती है। ऐसे संगठन के कार्यकर्ता संशयपूर्ण, भयभीत होंगे, अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का अनुसरण करेंगे, सहयोग का अभाव दर्शाएंगे इत्यादि। ये सभी कारक व्यक्ति की तुलना में संगठन के कार्य निष्पादन को क्षति पहुँचाते हैं। आर्गिरिस ने संगठनों के लिए एक युक्ति बताई है, जो बौद्धिक एवं यान्त्रिक कौशलों के साथ–साथ अंतःवैयक्तिक कौशल को बेहतर बनाने को अधिक महत्त्व देती है। उन्होंने देखा कि संगठन में अंतर्वैयक्तिक कौशल वाली क्षमता को नजरअंदाज किया जाता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि सदस्य अंतर्वैयक्तिक रूप से अधिक सक्षम हों तो संगठन बेहतर तरीके से कार्य करता है। उनके अनुसार अंतःवैयक्तिक क्षमता से अभिप्राय दूसरे व्यक्तियों वाले परिवेश के साथ प्रभावी तरीके से निपटान या अंतःक्रिया करने की योग्यता से है। यह व्यक्तियों की क्षमता या योग्यता का द्योतक है।

इसकी निम्न तीन शर्ते/स्थितियाँ/अपेक्षाएँ हैं–

i) **आत्म–स्वीकृति (Self-Acceptance)**–आत्म–स्वीकृति से अभिप्राय उस मात्रा को प्रदर्शित करने से है कि कोई व्यक्ति सकारात्मक तरीके से स्वयं को कितना मूल्य या महत्त्व प्रदान करता है।

ii) **पुष्टिकरण (Confirmation)**–आर्गिरिस के अनुसार पुष्टिकरण से आशय व्यक्ति द्वारा अपनी आत्म–छवि (Self-image) की वास्तविकता का परीक्षण करने से है।

iii) **अनिवार्यता (Essentiatity)**–आर्गिरिस के अनुसार इसका अर्थ है व्यक्ति को यह अवसर प्रदान करना कि वह केन्द्रीय क्षमताओं का उपयोग कर सके एवं अपनी केन्द्रीय आवश्यकताओं को अभिव्यक्त कर सके।

आर्गिरिस ने अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य/सक्षमता को क्रियाशील करने के प्रयास में विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को विनिर्दिष्ट किया है जो इस प्रकार हैं–

i) अपने विचारों एवं भावनाओं की जिम्मेदारी लेना।
ii) दूसरे लोगो तथा अपने विचारों एवं भावनाओं के लिए खुलापन दिखाना।
iii) नए विचारों एवं भावनाओं के साथ प्रयोग करना।
iv) दूसरे लोगो को अपने विचारों एवं भावनाओं को ग्रहण करने, खुलापन दर्शाने एवं प्रयोग करने के लिए सहायता करना।

3) अर्गारिस संगठनात्मक परिवर्तन की तीसरी रणनीति का उल्लेख करते हुए परम्परागत एवं नई संगठनात्मक संरचना का विचार देते हैं। उनका मानना था कि सभी प्रकार के कार्यों एवं क्रियाकलापों को निष्पादित करने के लिए केवल एकल संगठनात्मक संरचना पर्याप्त नहीं है। अपितु कार्य के विभिन्न स्वरूपों को ध्यान में रखते हुए संगठनात्मक संरचनाएँ भी तदनुरूप भिन्न–भिन्न होनी चाहिए। उसके अनुसार भावी संगठन का प्रारूप नए तथा पुराने दोनों संगठनों का सम्मिश्रण होगा।

इसके लिए उन्होंने कुछ नई संगठनात्मक संरचनाएँ प्रस्तावित की, जो इस प्रकार हैं–

i) **संरचना I–पिरामिडीय संरचना (Pyramidal Structure)**–पिरामिडीय संरचना, परम्परागत संगठनात्मक संरचना का परिचय कराती है जो अत्यन्त कठोर है तथा दैनिक संचालनों व गैर–नवाचारी गतिविधियों के लिए उचित है। यहाँ दैनिक प्रकृति के कार्य निर्धारित नियमों द्वारा संचालित किए जाते हैं। इसमें संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति तथा कार्य के निष्पादन पर ही बल दिया जाता है। यह **संरचना** उन लोगों के लिए भी समुचित है जो दैनिक कार्य करना पसंद करते हैं तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की अवहेलना करते हैं।

ii) **संरचना II–संशोधित/रूपांतरित औपचारिक संगठनात्मक संरचना (Modified Formal Organisational Structure)**–यह एक पदानुक्रमिक (सोपान क्रमिक) संरचना है लेकिन प्रक्रियाओं एवं संचालन के संदर्भ में यह लोकतांत्रिक स्वरूप ही है। यह संरचना लिकर्ट की 'लिंकिंग–पिन' अवधारणा के सन्निकट है जहाँ अधीनस्थ को उच्च निर्णयात्मक इकाई का सदस्य बनने तथा निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता का अवसर दिया जाता है। यह संरचना पिरामिडीय संरचना की तुलना में ज्यादा अच्छी है।

iii) **संरचना III–सहभागी संरचना (Participative Structure)**–यह संरचना सापेक्षिक रूप से कम पदानुक्रमिक एवं लचीली है। यह कर्मचारी को उसके सामर्थ्यानुरूप समस्या–समाधान या निर्णयन प्रक्रिया में सहभागी होने के समान अवसर देती है। अर्थात् इस संरचना में जैसा व्यक्ति का संगठन को योगदान होता है उसी के अनुसार उसे शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह संरचना उन गतिविधियों के लिए समुचित है, जिनमें सृजनात्मक तथा कल्पनाशक्ति अपेक्षित है।

iv) **संरचना IV–मैट्रिक्स संगठन (Matrix Organisations)**–आर्गिरिस मैट्रिक्स संगठन का समर्थन करते हैं। मैट्रिक्स संगठनात्मक संरचना के अधीन संगठन में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति को सौंपे गए कार्य को करने के लिए समान शक्ति व उत्तरदायित्व दिए जाते है जिनसे व्यक्ति चाह कर भी छुटकारा नहीं पा सकता है। उनके पास संगठन की महत्त्वपूर्ण गतिविधियों को प्रभावित करने के अनेक अवसर होते हैं। सदस्यों से सुसंबद्ध इकाई के रूप में कार्य की अपेक्षा की जाती है। इसमें वरिष्ठ–अधीनस्थ सम्बन्ध समाप्त होने तथा व्यक्ति में स्व–अनुशासन का प्रयोग करने की आशा की जाती है। मैट्रिक्स संगठन की एक सकारात्मक विशेषता यह भी है कि इसमें व्यक्ति आत्म अनुशासन का विकास कर लेता है जिससे वहाँ अधीनस्थ–उच्चाधिकारी सम्बन्धों में झगड़ों की कोई सम्भावना नहीं रह जाती है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह संगठन की किसी भी गतिविधि को समाप्त कर सकता है और यदि आवश्यकता हो तो नई गतिविधियाँ शुरु भी कर सकता है। इसमें आन्तरिक एकाधिकार की प्रवृत्तियाँ नहीं पाई जाती हैं।

इस प्रकार के संगठन शक्ति के चारों ओर नहीं घूमते है। मैट्रिक्स संगठनों में, समस्याओं के समाधान के लिए परियोजना टीमों का गठन किया जाता है। यह उन कार्यों में लागू हो सकती है, जिनमें बहु–कौशल या विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त संरचनाओं के मध्य अंतर मूलभूत रूप से निर्णय लेने में अपेक्षित सहभागिता की मात्रा के संदर्भ में है। आर्गिरिस का मानना है कि इनमें से किसी एक ही संरचना का प्रयोग सदैव नहीं किया जाना चाहिए।

4) आर्गिरिस संगठनात्मक परिवर्तन की चौथी रणनीति का उल्लेख करते हुए **संवेदनशील प्रशिक्षण या टी–ग्रुप (Sensitivity Training or T-Group)** का विचार देते हैं। संवेदनशीलता प्रशिक्षण की उत्पत्ति का पता 1914 में लगाया गया है, जब जे. एल. मोरेनो ने 'साइकोड्रामा' बनाया। बाद में इस अवधारणा को मध्य यूरोप के एक मनोवैज्ञानिक कुर्ट लेविन ने आगे बढ़ाया, जिन्हें पहले टी–ग्रुप (प्रशिक्षण समूह) के आयोजन तथा नेतृत्व का श्रेय दिया जाता है। "संवेदनशीलता प्रशिक्षण या टी–समूह प्रशिक्षण का अर्थ है स्वयं एवं दूसरों के व्यवहार पैटर्न के प्रति जागरूकता एवं संवेदनशीलता का विकास।" इसे 'लेबोरेटरी ट्रेनिंग' भी कहते है। टी–ग्रुप (Training Group) मूलतः संगठनात्मक विकास की एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है।

रॉबर्ट टी. गोलेम्बिएवस्की के अनुसार, "टी–ग्रुप एक सीखने की प्रयोगशाला है। यह सीखने पर ध्यान केंद्रित करता है कि कैसे सीखना है और यह विशिष्ट रूप से तत्काल विचारों, भावनाओं और प्रतिक्रियाओं पर 'यहाँ–और–अभी' बल देकर ऐसा करता है।"

इसे समूह की गतिशीलता, नेतृत्व एवं पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में अनुभवात्मक शिक्षा प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है। इसका मूल उद्देश्य मनोवैज्ञानिक तकनीकों और कार्यक्रमों का उपयोग करके व्यक्ति के मानकों, दृष्टिकोण और व्यवहार को बदलना है। टी–ग्रुप वस्तुतः एक प्रयोगशाला कार्यक्रम है जिसका निर्माण व्यक्तियों/कर्मचारियों को अपने व्यवहार को प्रकट करने, फीडबैक प्राप्त करने व देने, नए व्यवहार के साथ प्रयोग, जागरुकता को विकसित करने, 'स्व' को स्वीकारने एवं अन्य के व्यक्तित्वों की संवेदनशीलता को स्वीकार करने के अवसर प्रदान करने के लिए किया जाता है। साथ ही साथ यह प्रभावी समूह कार्यकरण की प्रकृति को जानने की सम्भावनाएँ भी प्रदान करता है। परन्तु इस अवधारणा के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ पाई जाती हैं।

इसलिए आर्गिरिस यह बात स्पष्ट करते हैं कि टी–ग्रुप क्या नहीं है। वे कहते हैं–

1) टी–ग्रुप छिपी हुई छल–योजना प्रक्रियाओं का समुच्चय नहीं है जिनकी सहायता से व्यक्तियों का मतारोपण किया जा सके।
2) न ही यह किसी स्टाफ नेता द्वारा निर्देशित कोई शैक्षणिक प्रक्रिया है।
3) टी–ग्रुप का उद्देश्य किसी संघर्ष को दबा देना नही हैं। न ही प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे को चाहें, इसके लिए तैयार करना है।
4) यह प्रशिक्षण इस बात के शिक्षण का भी प्रयास नहीं करता है कि लोग समाज के प्रति कठोर या असम्मानजनक बनें। न ही यह प्रयास करता है कि वह उन्हें नापसन्द करें जो कम खुला जीवन जीते हैं।
5) यह प्रशिक्षण कोई मनो–विश्लेषण एवं गहन–समूह चिकित्सा नहीं हैं।
6) टी–ग्रुप प्रशिक्षण आवश्यक रूप से खतरनाक नहीं है लेकिन यह भावनाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है।
7) टी–ग्रुप प्रशिक्षण प्राधिकारवादी–नेतृत्व की शिक्षा नहीं है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रभावशाली वास्तविकता–केन्द्रित नेतृत्व का विकास करना है।
8) टी–ग्रुप प्रशिक्षण, प्रशिक्षण–सत्र में उपस्थिति के परिणामस्वरूप परिवर्तन की कोई गारण्टी नहीं देता है।

आर्गिरिस के अनुसार टी–ग्रुप प्रशिक्षण को अपनाया जाना चाहिए क्योंकि ये संगठन में व्यक्तियों के मध्य एक मुक्त वातावरण सृजित करती हैं जो कि संगठनात्मक विकास के लिए आवश्यक है।

3.6.5. आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

यह बात तो पूर्णतया सत्य है कि एक व्यवहारवादी विचारक के रूप में प्रबन्ध जगत में आर्गिरिस का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने प्रबन्ध साहित्य में विभिन्न नवीन अवधारणाओं का विकास किया है। वे संगठन के मानवतावादी उपागम का समर्थन करते हैं। इन सबके बावजूद निम्न आधारों पर आर्गिरिस के विचारों की आलोचना भी की जाती है–

1) कई विद्वानों का कहना है कि आर्गिरिस ने संगठन के जिन सिद्धान्तों की आलोचना की है, दरअसल यह उनकी इन सिद्धान्तों की गलत व्याख्या का परिणाम है।

2) आर्गिरिस सत्ता/प्राधिकार के प्रति वैर–भाव या विद्वेष रखते हैं जिसे उचित नहीं माना जा सकता। उनका यह विचार कि 'संरचना शैतान होती है' और शक्ति (Power) की आवश्यकता वाली विचारधारा से प्रभावित है। इस सम्बन्ध में साइमन कहते है कि आर्गिरिस ने समाधान के रूप में प्राधिकारी सम्बन्धों को बल न देने के लिए कहा, लेकिन संगठनात्मक प्रभाविता के परिणामों की अनदेखी किए बिना शक्ति की भूख व्यक्ति को भ्रष्ट बना देती है। बल्कि यह भी कह सकते है कि यह सशक्त एवं शक्तिहीन दोनों को भ्रष्ट बना देती है। आर्गिरिस का यह मानना भी सही नहीं है कि संगठन में जो लोग कार्य करते हैं वे प्राधिकार का विरोध करते हैं। लोग संगठन में प्राधिकार को अवश्य स्वीकार करते हैं क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति एवं संगठन दोनों के हितों की पूर्ति होती है।

3) आर्गिरिस के 'अपरिपक्वता–परिपक्वता मॉडल' की भी यह कहकर आलोचना की जाती है कि कोई व्यक्ति किसी समय किस स्थिति में होता है, इसका आंकलन करना कठिन कार्य है। किसी व्यक्ति का व्यवहार किन्हीं परिस्थितियों में कभी–कभी अत्यधिक परिपक्वता दर्शाता है, जबकि उसी परिस्थिति में कभी–कभी अपरिपक्वता भी दर्शाता है।

4) आर्गिरिस की आत्म–साक्षात्कार या आत्म–प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा को काल्पनिक माना जा रहा है तथा कहा जा रहा है कि इसमें कोई सटीक परिचालन संकेतक नहीं हैं। साइमन तो आत्म–साक्षात्कार को अराजकता के रूप में परिभाषित करते हैं। उन्होंने आर्गिरिस के इस तर्क का अनुभवजन्य रूप से समर्थन नहीं किया है कि संगठन में लोग अधिकार के प्रति शत्रुतापूर्ण हैं। दूसरी तरफ यह भी माना जाता है कि संगठन में लोग इसके अधिकार तथा इसके लक्ष्यों को स्वीकार करते हैं क्योंकि ऐसी स्वीकृति उनके मूल्यों के अनुरूप होती है। आर्गिरिस का यह मानना कि आत्म–साक्षात्कार के लक्ष्य की खोज एक सार्वभौमिक लक्ष्य है, इस पर भी विद्वानों ने प्रश्न उठाया है। अनेक परिस्थितियों में लोग इस लक्ष्य को कोई महत्त्व नहीं देते हैं तथा निर्देशात्मक नेतृत्व की स्थितियों में संतुष्ट अनुभव कर सकते हैं।

5) आर्गिरिस ने पारस्परिक क्षमता या अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य/सक्षमता को बढ़ाने के लिए कार्य–संवर्द्धन एवं टी–ग्रुप सत्रों की वकालत की है। जिसे आलोचको के द्वारा उपचारात्मक दृष्टिकोण प्रकृति में अदूरदर्शी बताया गया है। इसके द्वारा समस्या की जड़ (मूल) तक तब तक नहीं पहुँचा जा सकता जब तक कि नियोक्ताओं/नियोजकों एवं कर्मचारियों के मध्य हितों का एक मौलिक संघर्ष विद्यमान है। बल्कि, सत्य तो यह है कि ये तकनीकें यथास्थिति बनाए रखने से बेहतर कुछ नहीं कर सकती हैं।

6) आर्गिरिस का मानना है कि प्रबंधन दर्शन शुरू में वैज्ञानिक प्रबंधन पर विकसित बल से लोगों एवं मानवीय सम्बन्धों पर बल देने के लिए स्थानांतरित हो गया है। व्यावहारिक रूप से प्रभावी प्रबंधन के लिए दोनों उपागमो का सही संयोजन अपेक्षित है। तभी संगठन के संरचनात्मक एवं मानवीय आयामों के मध्य एक विवेकपूर्ण

संयोजन लाया जा सकता है। उनका अनुमान है कि जिन नीतियों के लिए लोगों को मित्रवत होने की आवश्यकता होती है, वे उन नीतियों में बदल जाएँगी जो लोगों को मित्रवत होने के साथ–साथ नापसंद होने की भी स्वतंत्रता देंगी। वे आगे कहते हैं कि यह विश्वास कि वरिष्ठ अपने अधीनस्थों को पारस्परिक क्षमता में अधिक कुशल बना सकते हैं, सत्य प्रतीत नही होता है, क्योंकि कोई भी अपने अलावा किसी और को विकसित नहीं कर सकता। प्रबंधन का उत्तरदायित्व लोगों को विकसित करना नहीं है बल्कि आत्म–विकास के लिए माहौल तथा अवसर विकसित करना है। इस प्रकार, आर्गिरिस के विचार से प्रबंधन को एक ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो व्यक्ति एवं संगठन को न केवल परस्पर सम्बन्धित बल्कि वास्तव में एक–दूसरे से जुड़ी हुई घटना के रूप में देखे। वह प्रबंधन के एक ऐसे दर्शन की वकालत करता है जिसमें व्यक्ति एवं संगठन को स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार है। आलोचको का कहना है कि आर्गिरिस द्वारा व्यवस्था एवं व्यक्ति के मध्य के सम्बन्धों का गलत चित्रण किया गया है। वे व्यवस्था एवं व्यक्ति के मध्य संघर्ष की अतिवादी व्याख्या करते हैं। इनकी मान्यताओं की भी कतिपय पद्धतिशास्त्रीय आलोचनाएँ की जाती है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद प्रबन्ध सदैव आर्गिरिस का ऋणी रहेगा जिन्होंने अपने मौलिक विचारों से प्रबन्ध साहित्य को समृद्ध किया है।

3.7. रेंसिस लिकर्ट (RENSIS LIKERT)

3.7.1. परिचय (Introduction)

रेन्सिस लिकर्ट उन महत्त्वपूर्ण प्रबन्धकीय विचारकों में से एक हैं जिनके मौलिक विचारों ने प्रबन्ध को महत्त्वपूर्ण तरीके से प्रभावित किया है। उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान उनके द्वारा बताई गई प्रबन्ध प्रणालियाँ है। रेंसिस लिकर्ट का जन्म 5 अगस्त, 1903, को चेयेन, व्योमिंग, यू.एस. में हुआ था। वे मूलतः एक अमेरिकी सामाजिक मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने दृष्टिकोण माप के लिए पैमाने विकसित किए तथा सहभागी प्रबंधन की अवधारणा प्रस्तुत की।

उन्होंने अपनी विश्वविद्यालयी शिक्षा (बी.ए.) वर्ष 1922 में अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र विषय से की थी। तत्पश्चात् 1932 में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट (मनोविज्ञान विषय मे पीएचडी) की उपाधि प्राप्त की। साथ ही न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में 1930–35 तक उन्होंने मनोविज्ञान पढ़ाया। इसके बाद वे हार्टफोर्ड, कनेक्टिकट चले गए, जहाँ पर जीवन बीमा एजेंसी प्रबंधन संघ के लिए अनुसंधान के निदेशक पद पर आसीन हुए तथा वहाँ रहते हुए, उन्होंने पर्यवेक्षण के तरीकों की तुलना एवं मूल्यांकन करना प्रारम्भ किया। 1939 में लिकर्ट अमेरिकी कृषि विभाग के भीतर कृषि अर्थशास्त्र ब्यूरो के लिए एक प्रभाग निदेशक बन गए। उनके कैरियर का अंतिम पड़ाव 1946 में हुआ, जब वे मिशिगन विश्वविद्यालय में सर्वेक्षण अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की जिसे अंततः सामाजिक अनुसंधान संस्थान का नाम दिया गया।

लिकर्ट ने 1970 में अपनी सेवानिवृत्ति तक इसके निदेशक के रूप में कार्य किया। लिकर्ट एक अच्छे लेखक भी थे। "न्यू पैटर्न ऑफ मैनेजमेंट" (1961) (New Patterns of Management - 1961), "द ह्यूमन ऑर्गनाइजेशन" (1967) (The Human Organization - 1967), New ways of Managing Conflicts (1976), उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

अपने करियर के आरम्भ में लिकर्ट ने मानवीय दृष्टिकोणों एवं उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने के प्रभावी एवं व्यवस्थित तरीके खोजने का प्रयास किया। उनके द्वारा किए गए शोध ने उन्हें दृष्टिकोण माप के लिए एक पैमाना विकसित करने के लिए प्रेरित किया जिसे लिकर्ट स्केल के नाम से जाना जाता है। मौजूदा सर्वेक्षण विधियों को लेकर लिकर्ट में असंतोष था। उनके इसी असंतोष ने उन्हें अधिक औपचारिक एवं बेहतर संरचित साक्षात्कार तकनीकों को तैयार करने के लिए प्रेरित किया, जो आज मानक सर्वेक्षण अनुसंधान अभ्यास बन गए हैं। हालाँकि, आपका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान सामाजिक अनुसंधान संस्थान के साथ उन वर्षों के दौरान आया, जब लिकर्ट ने व्यवसाय प्रबंधन में सुधार की दिशा में अपने प्रयासों को निर्देशित किया। इस कार्य ने अंततः उनके सहभागी प्रबंधन सिद्धान्त को जन्म दिया। 3 सितंबर, 1981, को एन आर्बर, मिशिगन में उनकी मृत्यु हो गई।

3.7.2. लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली (Likert's Management System)

रेंसिस लिकर्ट एवं उनके सहयोगियों ने विभिन्न कंपनियों में प्रबंधन के रुझानों तथा शैलियों का गहन अध्ययन किया। तत्पश्चात् 1960 के दशक में रेंसिस लिकर्ट ने अपने सहयोगियों के साथ मिलकर प्रबंधन प्रणाली की स्थापना की। जिसे लिकर्ट प्रबंधन प्रणाली के रूप में जाना जाता है जिसमें प्रबंधन के चार अलग–अलग तरीके शामिल है। उल्लेखनीय है कि लिकर्ट ने अपनी पुस्तक 'न्यू वेज ऑफ मैनेजिंग कांफ्लिक्ट्स' में लिकर्ट प्रणाली/प्रबन्ध प्रणाली– 4 का उल्लेख किया हैं। इन प्रबंधन प्रणालियों को औद्योगिक संदर्भों में प्रबंधकों एवं अधीनस्थों की बातचीत, जुड़ाव एवं भूमिकाओं को चिह्नित करने के लिए किया गया था। उन्होंने एक अमेरिकी बीमा कंपनी में अत्यधिक उत्पादक प्रबंधकों एवं उनकी टीमों के साथ किए गए शोध के आधार पर ही इन प्रणालियों को विकसित किया। लिकर्ट प्रबंधन प्रणाली अनिवार्य रूप से संगठनों के भीतर प्रबंधन पैटर्न विकसित करने में विभिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व करती है।

यह प्रणाली कई कारकों (जैसे–प्रेरणा, नेतृत्व, संचार, प्रभाव, बातचीत, निर्णय लेना आदि।) पर निर्भर करती है। रेंसिस लिकर्ट का मानना था कि नेतृत्व शैलियाँ दो प्रकार की होती हैं, अर्थात् निरंकुश तथा लोकतांत्रिक। इस विश्वास के आधार पर, उन्होंने **नेतृत्व शैलियों को चार प्रणालियों** में वर्गीकृत किया जिनका उपयोग विभिन्न संगठनों द्वारा किया जाता था। नेतृत्व शैली को समझाने वाली ये चार प्रबंधकीय प्रणालियाँ निम्न प्रकार हैं–

प्रबन्ध प्रणालियाँ
(लिकर्ट)

- शोषणात्मक–सत्तावादी प्रणाली (प्रणाली–1)
- परोपकारी–सत्तावादी प्रणाली (प्रणाली–2)
- परामर्शवादी प्रणाली (प्रणाली–3)
- भागीदारी प्रणाली (प्रणाली–4)

1) **प्रणाली 1–शोषणात्मक–सत्तावादी (Exploitative-Authoritative)**–यह लिकर्ट की नेतृत्व शैलियों में पहली प्रणाली है। यह प्रणाली कार्योन्मुख है, जिसमें प्रबंधक कार्य–सम्बन्धी निर्णय लेने और अधीनस्थों के विचारों पर विचार किए बिना आदेश जारी करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इस शैली के विषय में लिकर्ट कहते हैं कि अंतिम शक्ति (Power) शीर्ष अधीनस्थों के हाथों में होती है। शीर्ष प्रबंधन नीतियाँ तथा नियम बनाता है और निचले स्तर के कर्मचारी अपने वरिष्ठों द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। यहाँ, यह देखा गया है कि निचले

स्तर के कर्मचारी अपने वरिष्ठों के साथ अपने काम पर चर्चा करने के लिए स्वतंत्र अनुभव नहीं करते हैं। इस प्रणाली में संचार नीचे की ओर तथा अत्यधिक औपचारिक होता है, जिसमें कार्य पूरा करने के लिए दंड तथा धमकियों पर बल दिया जाता है। इसमें टीमवर्क बहुत कम है। शोषणात्मक–सत्तावादी प्रबन्ध प्रणाली या प्रणाली–1 की कुछ विशेषताएँ है जो इस प्रकार हैं–

i) इस प्रणाली में, अधीनस्थ स्वभाव से बहुत सख्त और दबंग होते हैं।
ii) इस प्रणाली में नियन्त्रण की प्रकृति अत्यन्त केन्द्रीयकृत होती है।
iii) शोषणात्मक सत्तावादी प्रणाली में अधीनस्थ अपने कर्मचारियों में बिल्कुल विश्वास नहीं करता है। इसी कारण वह कभी भी कर्मचारियों को निर्णय–प्रक्रिया में शामिल नहीं करता है।
iv) इस प्रणाली में निर्णयन और लक्ष्य निर्धारण का कार्य प्रबन्ध के उच्च स्तर पर होता है और कर्मचारियों को मात्र इसकी सूचना दी जाती है।
v) इस प्रणाली में नेताओं को अपने कर्मचारियों के प्रति कम चिंता होती है। इसमें अधीनस्थ, अपने कर्मचारियों को डराकर, धमकाकर, दण्ड देकर तथा कभी–कभी पुरस्कारों के साथ कार्य करने के लिए बाध्य करता है।
vi) इसमें अधीनस्थ–कर्मचारी में अन्तःक्रिया कभी–कभी ही हो पाती है और यदि होती भी है तो भय तथा अविश्वास के वातावरण में।
vii) इसमें कर्मचारियों को शारीरिक व सुरक्षात्मक स्तर की आवश्यकताओं पर ही सन्तुष्ट किया जाता है।
viii) इस प्रणाली में, अधीनस्थ अपने कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक भावनाओं से अनभिज्ञ होते हैं तथा उनके मध्य संचार लगभग शून्य होता है।

2) **प्रणाली 2–परोपकारी–सत्तावादी (Benevolent Authoritative)**–प्रणाली–2, प्रणाली–1 की तुलना में थोड़ी उदार होती है। लिकर्ट की इस प्रणाली में अधिकार निचले स्तर के कर्मचारियों के हाथों में न होकर प्रबंधकों के हाथों में होता है। इस प्रणाली में प्रबंधक शोषण के बिना एक निरंकुश दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे एक पितृसत्तात्मक भूमिका निभाते हैं, जिससे कर्मचारियों को कार्य निष्पादन में कुछ स्वतंत्रता मिलती है। हालाँकि, ईमानदार एवं आज्ञाकारी कर्मचारियों के प्रति एक संरक्षणात्मक रवैया अपनाया जाता है, जिसमें लक्ष्य प्राप्त करने वालों को पुरस्कार और असफल होने वालों को कठोर दंड दिया जाता है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

i) इस प्रणाली में वरिष्ठों को अपने कर्मचारियों पर थोड़ा विश्वास तथा भरोसा होता है। लेकिन यह विश्वास तथा भरोसा उतना ही होता है जितना एक मालिक तथा नौकर के मध्य होता है।
ii) इस प्रणाली में पुरस्कार एवं दण्ड का प्रयोग कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए किया जाता है।
iii) इस प्रणाली में अनौपचारिक संगठन का विकास होता है लेकिन यह बात भी सत्य है इसमें कि सदैव ही औपचारिक संगठन के लक्ष्यों का विरोध नहीं किया जाता है।
iv) इस प्रणाली में कर्मचारियों को कुछ निर्णयन एवं नियन्त्रण सम्बन्धी अधिकार दिए जाते हैं यद्यपि ये अधिकार अत्यन्त सीमित होते हैं।
v) वे सदैव उर्ध्वागामी संचार में व्यस्त रहते हैं।
vi) यद्यपि नियन्त्रण की प्रकृति इसमें भी केन्द्रीयकृत होती है तथापि कुछ नियन्त्रण मध्य एवं निम्न स्तरों तक प्रत्यायोजित किया जाता है।

vii) प्रणाली अपने कर्मचारियों के दृष्टिकोण और नए विचारों को महत्त्व प्रदान करते है।

viii) इसमें भी प्रबन्धक तथा कर्मचारियों के मध्य सीमित अन्तःक्रिया होती है जिसमें भय का वातावरण बना रहता है।

ix) इसमें कर्मचारी अपने कार्य अनुभव को वरिष्ठों के साथ साझा करने में स्वतंत्र महसूस नहीं करते हैं।

x) उचित पर्यवेक्षण के साथ निचले स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया की अनुमति प्रदान करते है।

3) **प्रणाली 3–परामर्शात्मक प्रणाली (Consultative System)**–यह लिकर्ट द्वारा दी गई नेतृत्व की तीसरी शैली है। लिकर्ट के अनुसार इस प्रणाली में, जिम्मेदारी एवं अधिकार पूरे संगठन में व्यापक रूप से फैले हुए होते हैं। इसमें कर्मचारियों एवं वरिष्ठों के मध्य निष्पक्ष संचार होता है। यह प्रणाली कर्मचारियों के लिए एक स्वस्थ कार्य वातावरण को बढ़ावा देती है और उन्हें कुशलता से काम करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

i) एक अनौपचारिक संगठन का विकास होता है जो या तो संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता करता है या आंशिक प्रतिरोध।

ii) इस प्रणाली में प्रबन्धक कर्मचारियों पर विश्वास करता है फिर भी पूर्ण विश्वास तथा भरोसे का अभाव रहता है।

iii) इस प्रणाली में संचार उर्ध्वगामी एवं अधोगामी दोनों प्रकार का होता है।

iv) इस प्रणाली में प्रबंधक आदेश जारी करने एवं लक्ष्य निर्धारित करने के लिए कर्मचारियों से परामर्श करते हैं।

v) इस प्रणाली में अभिप्रेरणा प्रणाली के अन्तर्गत पुरस्कार को दंड से अधिक प्राथमिकता दी जाती हैं।

vi) इसमें मुख्य नीति और निर्णय उच्च स्तर पर ही लिए जाते हैं परन्तु निचले स्तरों पर भी निर्णय लेने के लिए कर्मचारियों को अवसर दिए जाते है। अर्थात् इसमें नियमित निर्णय कर्मचारी लेते हैं, जबकि मुख्य निर्णय प्रबंधक लेते हैं।

vii) इसमें पर्याप्त विश्वास एवं भरोसे के वातावरण में प्रबन्धक व कर्मचारियों के मध्य अन्तःक्रियाएँ होती रहती हैं।

viii) इसमें कर्मचारी अपने वरिष्ठों एवं अधीनस्थों के साथ संवाद करने के लिए स्वतंत्र हैं। वे अपने काम से सम्बन्धित मुद्दों को वरिष्ठों के साथ स्वतंत्र रूप से साझा कर सकते हैं।

4) **प्रणाली 4–भागीदारीपूर्ण प्रणाली (Participative System)**–यह लिकर्ट द्वारा दी गई नेतृत्व की अंतिम शैली है। लिकर्ट ने इसे उपर्युक्त सभी प्रणालियों में श्रेष्ठ बताया है। लिकर्ट कहते हैं कि संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने की शक्ति एवं दायित्व संगठन के सभी कर्मचारियों तथा अधीनस्थों के मध्य वितरित की जाती है। इस प्रणाली के अनुसार, संगठन की सफलता में प्रत्येक कर्मचारी की एक निश्चित भूमिका होती है। वरिष्ठों को अपने कर्मचारियों पर अत्यधिक विश्वास होता है। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है–

i) इस प्रणाली में सभी समस्याओं के सम्बन्ध में प्रबन्ध अपने कर्मचारियों पर पूरा विश्वास तथा भरोसा रखते है।

ii) इस संचार प्रणाली में सम्प्रेषण उर्ध्वगामी, अधोगामी और समस्तरीय प्रकार का होता है।

iii) इस प्रणाली में निर्णय–प्रक्रिया व्यापक रूप से बिखरी होती है क्योंकि निचली इकाइयाँ भी इसमें शामिल होती हैं। अर्थात् इसमें कर्मचारियों की निर्णय–प्रक्रिया और लक्ष्य–निर्धारण में पूर्ण भागीदारी होती है।

iv) इस प्रणाली में सहभागिता, आर्थिक पुरस्कार आदि अभिप्रेरणा के साधन है।

v) इसमें नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण समूह–उन्मुख होते हैं, जिसमे प्रबंधक मित्रवत एवं सहायक की भूमिका में होते हैं।

vi) कर्मचारियों को एक स्वस्थ कार्य वातावरण प्रदान किया जाता है। वे सदैव अपने कर्मचारियों को उनके काम करने के तरीके में सुधार करके, ऐसे लक्ष्य निर्धारित करके उनके विकास में सहायता करते है जो उन्हें अपने प्रदर्शन में सुधार करने के लिए प्रेरित कर सकें।

vii) इसमें प्रबन्ध व कर्मचारियों के मध्य उच्च विश्वास और भरोसे के साथ अन्तःक्रियाएँ होती है।

viii) औपचारिक और अनौपचारिक संगठन प्रायः एक समान होते हैं।

ix) साथी कार्यकर्ताओं के साथ ऊपर तथा नीचे दोनों तरफ से संवाद होता है।

लिकर्ट के मतानुसार प्रणाली–4 अपने लक्ष्यों के कारण सर्वाधिक पसन्द की जाती है। इसलिए बेहतर लक्ष्य प्राप्ति के लिए आप किसी संगठन को प्रणाली–1 से प्रणाली–4 की ओर बढ़ने का सुझाव देते हैं। अर्थात् जब प्रबन्ध प्रणाली–1 से 4 टायपोलोजी में निष्पादन लक्ष्यों के स्तर एवं तकनीकी क्षमता का स्तर जैसे– चर और जोड़ दिए जाएँ तथा इनका जोड़ उच्च हो तो ऐसी स्थिति को प्रबन्ध प्रणाली–4 के रूप में अभिहीत करते हैं।

संक्षेप में उपर्युक्त वर्गीकरण योजना के आधार पर यह कह सकते है कि– प्रबन्ध प्रणाली–1 कार्य–अभिमुखी है, जबकि प्रबन्ध प्रणाली–4 सम्बन्ध–अभिमुखी है जो समूह कार्य, पारस्परिक विश्वास पर आधारित होती है। प्रबन्ध प्रणाली–2 तथा प्रबन्ध प्रणाली–3 इन दोनों (प्रबन्ध प्रणाली–1 तथा प्रबन्ध प्रणाली–4) के बीच की है। लिकर्ट ने निष्कर्ष निकाला कि यदि किसी संगठन की प्रबन्ध शैली, प्रबन्ध प्रणाली–4 के जितने अधिक निकट है वह संगठन उतनी ही अधिक उच्च उत्पादकता दर्शाता है। इसके विपरीत प्रबन्ध प्रणाली–1 के निकट की प्रबन्ध शैली निम्न उत्पादकता दर्शाती है। लिकर्ट ने अपनी प्रणाली 1–4 को स्पष्टतः समझाने के लिए **चित्र 3.9** प्रस्तुत किया है–

चित्र 3.9– लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली

लिकर्ट का मानना हैं कि एक प्रबन्ध प्रणाली की कार्यकारी विशेषताएँ एकदम से दूसरी प्रबन्ध प्रणाली पर आरोपित नहीं की जा सकती है। क्योंकि एक प्रबन्ध प्रणाली को पूर्णतया दूसरी प्रणाली में बदलने के प्रयासों से संगठनात्मक प्रभावशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन सबके बावजूद लिकर्ट प्रबन्ध प्रणाली–1 से प्रबन्ध प्रणाली 4 की ओर क्रमिक परिवर्तन का सुझाव देते हुए कहते है कि मानव संसाधन विकास को दिशा देने के लिए आवश्यक सभी गुण प्रबन्ध प्रणाली–4 में पाए जाते हैं। जैसे–जैसे संगठन प्रणाली–4 के निकट पहुँचता जाता है वैसे–वैसे उसके कार्यों में सुधार होता जाता है तथा इच्छित प्रतिफलों में वृद्धि होती जाती है।

3.7.3. संगठनात्मक विकास सुधार (Organisational Improvement)

लिकर्ट महोदय ने संगठनात्मक विकास के लिए प्रबन्ध प्रणाली – 4 का चक्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

1) आदर्श प्रारूप/मॉडल को स्थापित करना (प्रबन्ध प्रणाली–4)।
2) संगठनात्मक प्राप्तियों को आदर्श मॉडल के आधारभूत आयामों पर मापना।
3) आदर्श मॉडल के साथ सम्बन्धों के आधार पर प्राप्तियों का विश्लेषण एवं व्याख्या करना एवं संगठनात्मक क्षमताओं एवं सही कमजोरियों का निदान खोजना।
4) कार्य–योजना को क्रियान्वित करना।

उपर्युक्त संगठनात्मक सुधार चक्र के लिए लिकर्ट महोदय द्वारा दिए गए मार्गदर्शक सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

1) प्रबन्ध के कार्य–प्रयासों को नेतृत्त्व व्यवहार, संरचना आदि कारणात्मक चरों पर केन्द्रित करना।
2) प्रबन्ध प्रणाली–1 से प्रबन्ध प्रणाली–4 की ओर धीरे–धीरे अग्रसर होना। क्योंकि एक साथ तीव्र उछाल उपयुक्त नहीं होता है।
3) प्रबन्ध की कार्य योजना में उन व्यक्तियों को शामिल किया जाए जिनका व्यवहार सुधार प्रक्रिया के दौरान परिवर्तित होता है।
4) जहाँ तक सम्भव हो सके, कार्य योजना प्रक्रिया में वस्तुनिष्ठ, निर्वैयक्तिक प्रमाण काम में लिए जाने चाहिए।
5) जहाँ तक सम्भव हो सके सुधार कार्यक्रम में उन व्यक्तियों का सक्रिय सहयोग निश्चित किया जाए जो शक्तिशाली एवं प्रभावशाली पदों पर आसीन है।
6) कार्य योजना को सहायक एवं समर्थक वातावरण में लागू किया जाना चाहिए।

लिकर्ट महोदय द्वारा दिए गए इन उपर्युक्त मार्गदर्शक सिद्धान्तों की सहायता से संगठनात्मक सुधार में प्रणाली–4 को प्रयुक्त किया जा सकता है। वस्तुतः वर्तमान समय में अधिकांश संगठन प्रबन्ध प्रणाली–2 और प्रबन्ध प्रणाली–3 के निकट है।

3.7.4. संगठनात्मक प्रभावकारिता (Organisational Effectiveness)

संगठनात्मक प्रभावशीलता किसी संगठन की अपने लक्ष्यों को दक्षता के साथ पूरा करने की क्षमता है। जबकि व्यवसाय की सफलता धैर्य, भाग्य एवं अंतर्दृष्टि के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है, सफलता का एक स्थायी, टिकाऊ मॉडल बनाने के लिए सावधानीपूर्वक योजना बनाने एवं व्यवसाय उद्यम के सभी विभिन्न भागों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है। संगठनात्मक प्रभावशीलता व्यवसाय करने के लिए किसी संगठन के दृष्टिकोण का एक महत्त्वपूर्ण तत्व या आयाम है। कई बार व्यक्ति प्रभावकारिता एवं दक्षता को एक समान मान लेते है। लेकिन इन दोनों में अन्तर है। इन दोनों में अन्तर बताते हए **पीटर ड्रकर** अपनी पुस्तक **मैनेजमेन्ट – टास्कस, रिसपोन्सीबिलिटीज, प्रेक्टिसेस** में लिखते हैं कि प्रभावकारिता, सफलता की आधारशिला है। सफलता प्राप्ति के पश्चात् बने रहने के लिए दक्षता, एक न्यूनतम शर्त है। वस्तुओं/चीजों को ठीक तरीके से करना ही दक्षता है जबकि प्रभावकारिता ठीक चीजें करना है।

यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आखिर संगठन मे प्रभावकारिता का निर्धारण कैसे किया जाता है? प्रभावकारिता का वर्णन करते समय लिकर्ट द्वारा बताए गए विभिन्न प्रकार के चरों का उल्लेख समीचीन होगा।

लिकर्ट ने निम्न तीन प्रकार के चरों की पहचान की है–

1) **कार्य–कारणात्मक चर**–जो चर किसी संगठन में घटनाओं के क्रम एवं इसके परिणामों या उपलब्धियों को प्रभावित करते हैं उसे कार्य–कारणात्मक चर कहते है। ये स्वतन्त्र चर होते है जिनका संगठनात्मक विकास पर परिणाम प्राप्ति का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकता है। इन स्वतन्त्र चरों को संगठन एवं इसका प्रबन्धन परिवर्तित कर सकते हैं एवं अन्य सामान्य व्यापार की स्थितियों के विपरीत ये चर संगठन के नियन्त्रण के परे भी नहीं होते हैं। कार्य–कारणात्मक चरों के उदाहरणों में नेतृत्व रणनीतियाँ, कौशल एवं व्यवहार प्रबन्ध के निर्णय तथा संगठन की नीतियाँ तथा संरचना आदि शामिल हैं। ये चर संगठनों के परिणामों को प्रभावित करते हैं। नेतृत्व रणनीतियाँ, कौशल, व्यवहार एवं अन्य कार्य–कारणात्मक चर संगठन में मानवीय संसाधनों या हस्तक्षेपकारी चरों को भी प्रभावित करते हैं।

2) **हस्तक्षेपकारी / मध्यवर्ती चर**–वे चर जो संगठन की आन्तरिक अवस्था की वर्तमान स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हैं हस्तक्षेपकारी चर कहलाते है। सदस्यों की उद्देश्य के प्रति प्रतिबद्धता, अभिप्रेरणा व मनोबल तथा नेतृत्व में उनके कौशल, संचार, संघर्ष प्रस्ताव, निर्णय निर्माण एवं समस्या समाधान आदि हस्तक्षेपकारी चरों के अन्तर्गत आते हैं।

3) **निर्गत या लक्ष्य–परिणाम चर**–लिकर्ट महोदय ने तीसरे प्रकार के चरों के रूप में निर्गत चरों (Output Variables) या साध्य परिणाम चरों की पहचान की। जो चर संगठन की उपलब्धियों को प्रकट करते हैं उन्हें निर्गत चर कहते है। प्रबन्धन संगठन की प्रभावकारिता का मूल्यांकन करते समय 90 प्रतिशत से अधिक प्रबन्धक केवल निर्गत या उत्पादन का मापन करके ही प्रभावकारिता का पता लगाते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि जिस प्रकार एक प्रोफेसर की प्रभावकारिता का निर्धारण उसके द्वारा प्रकाशित लेखों एवं पुस्तकों के द्वारा एवं एक बास्केटबॉल कोच की प्रभावकारिता का निर्धारण उनके हार–जीत के रिकॉर्ड से ही किया जा सकता है ठीक उसी प्रकार एक प्रबन्धक की प्रभावकारिता का निर्धारण शुद्ध लाभों के द्वारा कर सकते है। कार्य–कारणात्मक चर, चूंकि स्वतन्त्र चर है, हस्तक्षेपकारी चरों का स्तर या स्थिति निधारित करते हैं, जो साध्य परिणाम चरों को प्रभावित करते हैं। चूंकि हस्तक्षेपकारी चरों को प्रत्यक्ष रूप से उन्नत करना अधिक प्रभावी नहीं होता है इसीलिए हस्तक्षेपकारी चरों को उन्नत करने के लिए कार्य–कारणात्मक चरों को परिवर्तित करना अधिक प्रभावी रहता है।

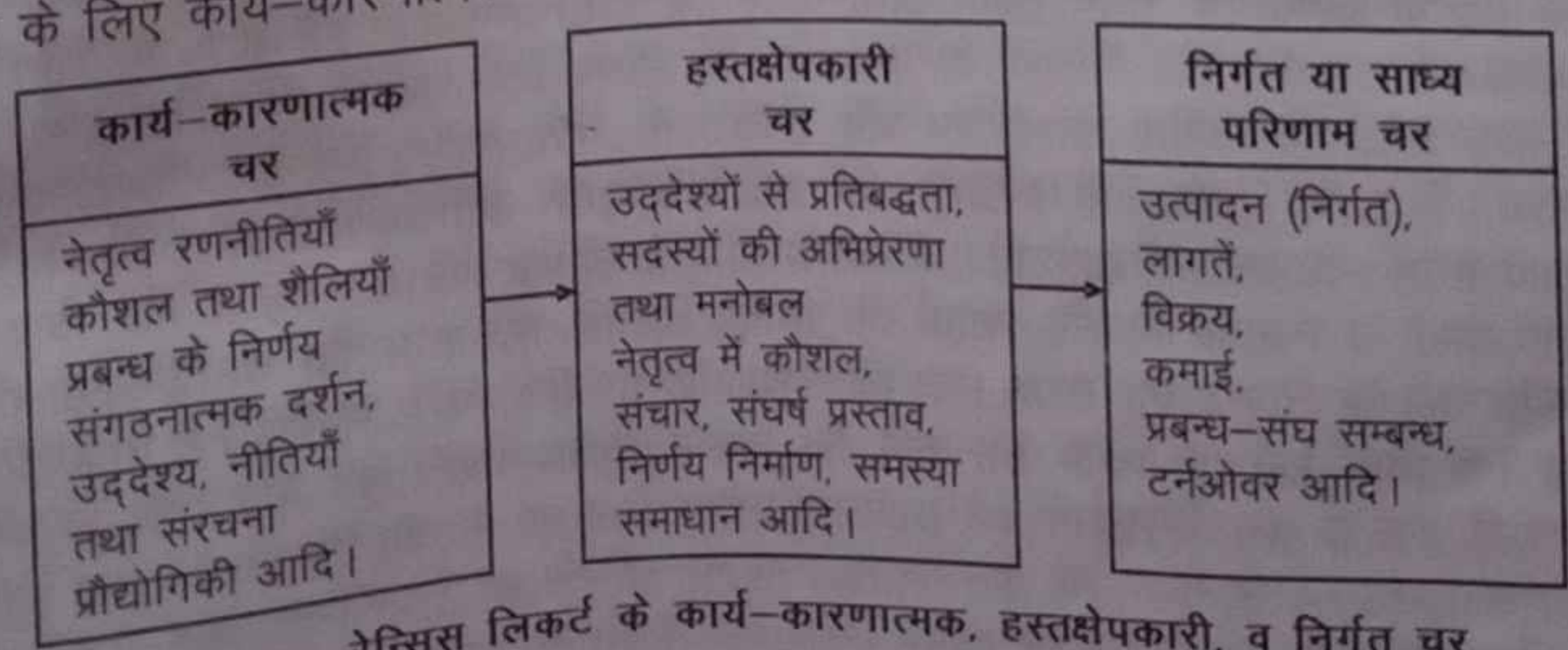

चित्र 3.10– रेन्सिस लिकर्ट के कार्य–कारणात्मक, हस्तक्षेपकारी, व निर्गत चर

इसी प्रकार साध्य परिणाम चरों को, हस्तक्षेपकारी चरों को न बदल कर कार्य–कारणात्मक चरों को संशोधित करके उन्नत किया जा सकता हैं। यदि लिकर्ट महोदय द्वारा बताए गए चरों पर दृष्टि डालते है तो हम पाते हैं कि इन तीनों श्रेणियों में सहसम्बन्ध पाया जाता हैं। इनमें कार्य–कारणात्मक चर उद्दीपन (Stimuts) होते हैं, हस्तक्षेपकारी चर

सावयव (Organism) पर कार्य करने वाले होते हैं जबकि निर्गत चर कुछ निश्चित अनुक्रिया (Responses) उत्पन्न करने वाले होते हैं। समझाने के लिए इन तीनों चरों को एक साथ उपर्युक्त **चित्र 3.10** में दर्शाया गया है।

3.7.5. संघर्ष का प्रबन्ध (Managing Conflicts)

संगठनों के भीतर एवं बीच में होने वाले विवादों से ही नही अपितु देशों के मध्य एवं भीतर विवादों की बढ़ते घटना चक्र से लिकर्ट अत्यन्त दुःखी थे। इन्होंने अपनी पुस्तक "न्यू वेज ऑफ मैनेजिंग कान्फ्लिक्ट" (New Ways of Managing Conflicts, 1976) में विवादों को सुलझाने के वर्तमान तरीकों को अपर्याप्त बताया क्योंकि यह केवल जीत–हार की तरफ ले जाते है। वस्तुतः यह माना जाता है कि संघर्ष या मतभेद किसी भी संगठन में उत्पन्न हो सकते हैं। यह विवाद व्यापार या व्यवसाय की प्रकृति, स्वामित्व, कार्यात्मक क्षेत्र के आधार पर तथा हितधारकों के मध्य हो सकता है। इसके अलावा भी विवाद के कुछ कारण हो सकते है जैसे– पदोन्नति निर्णय, वेतन, कर्मचारी स्थानान्तरण, अपघर्षण (Attrition) का प्रबंधन, कर्मचारियों की शिकायतों का निपटारा एवं प्रबंध–कर्मचारी सम्बन्ध आदि। इन विवादों/संघर्षों को यथाशीघ्र सुलझाया जाना आवश्यक होता है। यद्यपि आधुनिक संगठन सिद्धान्त के अनुसार विवाद न केवल अपरिहार्य हैं, अपितु उनके सकारात्मक या नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस प्रकार प्रबंधित होते हैं। आधुनिक राजनीतिक, अर्थव्यवस्था एवं समाज पर विज्ञान तथा तकनीकी विकास जनित चुनौतियाँ बनाम आर्थिक मंदी, राजनीतिक स्थिरता, बड़ा डाटा प्रबंध, साइबर सुरक्षा, स्वचालन, नमनीय कार्यावधि, लिंग समानता आदि। यह संभवतः संगठनात्मक विकास पर प्रभाव डाल सकता है। इस विषय में जटिल सामाजिक संगठनों का निर्माण ऐसे परिवर्तनों तथा विविधताओं से उत्पन्न विवादों को निपटाने के लिए किया जा सकता है। संघर्ष के प्रबन्ध पर लिकर्ट के विचार महत्त्वपूर्ण हैं।

आपने विवादों/संघर्षों को सुलझाने के नवीन रास्ते सुझाए है। अपनी पुस्तक 'न्यू वेज ऑफ मैनेजिंग कॉनफ्लिकट्स' पुस्तक में लिकर्ट संघर्ष को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि संघर्ष "अपने चाहे गए परिणाम, जो यदि प्राप्त हो जाते हैं, तो उन्हें प्राप्त करने की तीव्र इच्छा दूसरों द्वारा चाहे गए परिणामों की प्राप्ति में बाधा पहुँचाती है और इस कारण शत्रुता पैदा होती है।" लिंकर्ट दो तरह के संघर्षों का उल्लेख करते हैं– सारभूत संघर्ष (Substantive) एवं भावनात्मक संघर्ष। लिकर्ट ने विवादों को उनके प्रबंधात्मक एवं संगठनात्मक प्रभावशीलता के साथ–साथ प्रबंधन के लिए अलग पद्धतियों या रणनीतियों को विकसित करने का प्रयास किया। लिकर्ट संघर्षों का प्रबन्ध करने के लिए सहयोगी और समर्थक सम्बन्धों की रणनीति को अपनाने का सुझाव देते हैं। और जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है कि लिकर्ट ने प्रबंधन प्रणाली की चार शैलियाँ विकसित की– शोषक आधिकारिक, परोपकारी आधिकारिक, परामर्शदात्री एवं सहभागी। संगठनों में विवादपूर्ण स्थितियों पर नियन्त्रण पाने के लिए अर्थात् विवादों को सुलझाने एवं प्रबंध करने में लिकर्ट की, लिकर्ट सिस्टम/प्रबन्ध प्रणाली 4 प्रभावी हो सकती है। अपने द्वारा किए गए उद्योगों तथा स्कूलों में व्यापक शोध के आधार पर लिकर्ट ने जोर देकर कहा कि प्रबन्ध प्रणाली 4 उद्योगों, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा शहरों सहित सभी प्रकार की संगठनात्मक व्यवस्थाओं के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण हो सकता है। समूह समस्या समाधान प्रबन्ध प्रणाली 4 **(भागीदारीपूर्ण प्रणाली)** की विशेषता है, इसलिए संगठनों में तनावों एवं विवादो का प्रबंध करने के लिए लिकर्ट ने जीत–जीत (Win-Win) (जिसमें सभी यथा जीतते हैं) परिणाम प्राप्ति के लिए समूह समस्या–समाधान को प्रथम माध्यम के

रूप में प्रस्तुत किया। इसके आगे, लिकर्ट कहते कि समर्थकारी नेतृत्व का व्यवहार या अभ्यास अन्तर्क्रिया प्रभाव नेटवर्क के साथ मिलकर संगठन को प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों की आम सहमति प्राप्त करने में समर्थ बनाता है। वे 'एकात्मक उद्देश्यों, पद/स्तर को बल न देने तथा समस्या–समाधान को अवैयक्तिक करने का प्रयोग कर सकते हैं। सामान्यतः समर्थनकारी बर्ताव की अवधारणा लिकर्ट के प्रबंध शैली की प्रमुख विशेषताओं में से एक है, जहाँ विश्वास एवं खुलापन विवाद सुलझाने के प्रमुख हिस्सा हैं। लिकर्ट के शब्दों में "नेताओं को अपने सदस्यों के समर्थन तथा संलग्नता की अपेक्षाओं को पूरा करना तथा उनको पार करना चाहिए, परन्तु ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए, जो सदस्यों की सकारात्मक उत्तर देने की क्षमता को पार करे।"

संघर्ष प्रबंधन के लिए कुछ अन्य सुझाव इस प्रकार है–

1) संघर्ष के कारणों को समझने के लिए, संघर्ष के स्रोतों का विश्लेषण करना।
2) संघर्ष की स्थिति की जाँच करना। इसमें शामिल लोगों से बात करना तथा उनकी बात को ध्यान से सुनना।
3) संघर्ष के किसी भी अंतर्निहित कारण की पहचान करने का प्रयास करना।
4) संघर्ष का शीघ्र निदान करना एवं रचनात्मक तरीके से उसका प्रबंधन करना।
5) संचार शुरू होने से पहले, सम्मानजनक संचार के लिए नियम निर्धारित करना।
6) सभी पक्षों से समस्या को लिखने के लिए कहना।
7) सभी पक्षों से समाधान निकालने को कहना।
8) प्रत्येक समाधान एवं प्रस्तावित समाधान के सकारात्मक व नकारात्मक पहलुओं पर चर्चा करना।
9) खुला संचार एवं मनोवैज्ञानिक सुरक्षा बनाए रखना।
10) लोगों को असहमत होने एवं अपनी राय व्यक्त करने का अवसर देना।
11) टीम निर्माण को प्रोत्साहित करना।

लिकर्ट के अनुसार, संघर्ष प्रबंधन तेजी से एवं पर्याप्त सुधार की ओर परिपक्वता की स्थिति तक पहुँचता हुआ प्रतीत होता है। एक संघर्ष का समाधान तब माना जाता है जब सभी विरोधी पक्ष परिणाम से संतुष्ट होते हैं। जब तक एक पक्ष परिणाम से असंतुष्ट रहता है, तब तक संघर्ष अनसुलझा रहता है। संघर्ष समाधान करने से पहले, यह महत्त्वपूर्ण है कि इसमें शामिल सभी लोगों के लिए, यहाँ तक कि उन लोगों के लिए भी जो केवल दर्शक हैं, सीखने के दृष्टिकोण से इसका उपचार किया जाए।

3.7.6. लिंकिंग–पिन मॉडल (Linking-Pin Model)

लिंकिग–पिन मॉडल लिकर्ट की प्रबंधन अवधारणाओं का एक महत्त्वपूर्ण पहलू होने के साथ–साथ इनके महत्त्वपूर्ण योगदानों में से भी एक है। लिंकिंग पिन मॉडल लिकर्ट द्वारा विकसित एक विचार है जिसमें एक संगठन को कई अतिव्यापी कार्य इकाइयों के रूप में दर्शाया जाता है जिसमें एक इकाई के सदस्य दूसरी इकाई के नेता होते हैं। लिकर्ट ने अन्तर–समूह सहयोग को आसान बनाने के लिए संगठनों में मुख्य कार्य का लिंकिंग पिन मॉडल (Linking Pin Model) पर आधारित प्रस्ताव रखा, जो कहता है कि संगठन का प्रत्येक सदस्य दो अतिच्छादन (Overlapping) समूहों में दो भूमिकाओं का निर्वाह करता है। अर्थात् वह संगठन की ऊपरी इकाई/उच्च स्तरीय इकाई का सदस्य तो होता ही है साथ ही निचली इकाई/निम्न स्तरीय इकाइयों का नेता भी होता है। लिंकिंग–पिन मॉडल अन्तःक्रिया–प्रभाव व्यवस्था की वृद्धि में सहायता करता है एवं परम्परागत पदसोपानात्मक व्यवस्था की बाधाओं को दूर करता है। लिकर्ट का लिंकिंग–पिन मॉडल

इस विचार पर आधारित है कि संगठन में प्रत्येक व्यक्ति दो या अधिक समूहों का महत्त्वपूर्ण सदस्य होता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति संगठन में एक लिंकिंग–पिन की भाँति कार्य करता है जो कि संगठन की ऊपरी एवं निचली इकाइयों से जुड़ा होता है। ये सामान्यतया मात्र एक व्यक्ति होते हैं जो स्वयं को दो समूहों में पाते हैं, अक्सर जिम्मेदारी के उच्च स्तर या व्यापक कौशल–सेट के कारण जो उन्हें संगठन के भीतर विभिन्न विभागों या परिचालन टीमों के बीच स्थानांतरित करने की अनुमति देता है। लिकर्ट बाद में इस मॉडल का और विकास करते हुए इसमें क्षैतिज लिंकेज को जोड़ते हैं। इस प्रकार उनका मॉडल क्षैतिज आयामों को जोड़ते हुए उर्ध्वगामी अभिमुखता पर जोर देता है।

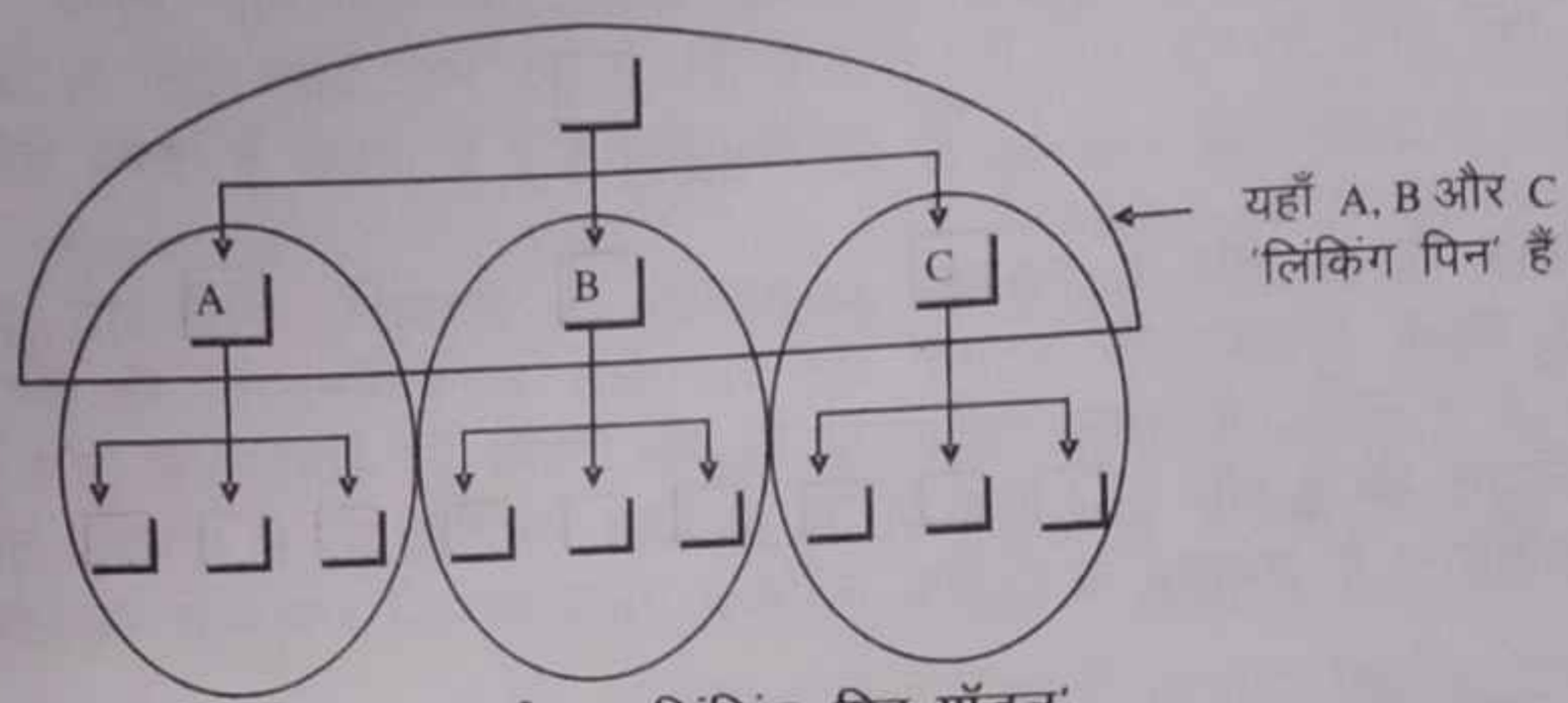

चित्र 3.11– लिकर्ट का 'लिंकिंग–पिन मॉडल'

लिंकिंग–पिन मॉडल की विशेषताएँ (Features of Linking-Pin Model)

लिंकिंग–पिन मॉडल की विशेषताएँ इस प्रकार है–

1) लिंकिंग–पिन मॉडल में पर्यवेक्षक/प्रबंधक दोहरी भूमिकाओं का निर्वाहन करता है। एक तो वह जिस समूह की देखरेख करता है, उसमें एकता बनाए रखता है एवं अपनेपन की भावना पैदा करके दूसरे वरिष्ठ व समानांतर प्रबंधन कर्मचारियों के साथ बैठकों में उस समूह का प्रतिनिधित्व करता है।
2) लिंकिंग–पिन मॉडल में व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध के स्थान पर समूह का समूह से सम्बन्ध को अधिक महत्त्व दिया जाता है।
3) इसमें अधोगामी अर्थात् नीचे की ओर उन्मुखता के स्थान पर 'उर्ध्वगामी' अर्थात् ऊपर की ओर उन्मुखता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसमें लक्ष्यों की प्राप्ति, संचार, पर्यवेक्षण प्रभाव आदि में 'उर्ध्वगामी अभिमुखता' देखी जा सकती है।
4) लिकर्ट के लिंकिंग–पिन मॉडल में समूह कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा सभी समूह शक्तिशाली माने जाते हैं।

लिंकिंग–पिन मॉडल' की आलोचनाएँ (Criticism of Linking-Pin Model)

1) लिकर्ट के 'लिंकिंग–पिन मॉडल' की यह कहकर आलोचना की जाती है कि इसमें कुछ भी नया नहीं है सिवाय इसके कि इसने परम्परागत पदसोपान संरचना के चारों ओर एक त्रिभुज बनाने का कार्य किया है।
2) किसी संगठन में इस मॉडल को लागू करने से निर्णय निर्माण की प्रक्रिया धीमी पड़ जाएगी।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी, यह मॉडल निर्णयन प्रक्रिया में व्यक्तियों की अधिक सहभागिता को प्रोत्साहित करता है। लिकर्ट का 'उर्ध्वाधर अभिमुखता' का विचार वास्तव में एक नया विचार है। लिंकिंग–पिन व्यवस्था समतलीय सम्बन्धों के साथ परम्परागत पदसोपानात्मक व्यवस्था से कहीं अधिक बेहतर है।

3.7.7. संगठनात्मक कार्य–सम्पादन (Organisational Performance)

संगठनात्मक प्रदर्शन से तात्पर्य है कि कोई संगठन अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को कितनी अच्छी तरह से प्राप्त कर रहा है। यह इस बात का माप है कि कोई संगठन अपने मिशन को पूरा करने एवं अपने हितधारकों को मूल्य प्रदान करने के लिए मानव एवं गैर–मानव दोनों संसाधनों का कितने प्रभावी तथा कुशल तरीके से उपयोग कर रहा है। संगठनात्मक प्रदर्शन किसी संगठन की सफलता एवं स्थिरता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संगठनात्मक प्रदर्शन को मापने तथा सुधारने के द्वारा, संगठन अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर सकते हैं, प्रतिस्पर्धी बने रह सकते हैं एवं अपने हितधारकों के लिए मूल्य बना सकते हैं। संगठनात्मक कार्य–सम्पादन को कैसे मापा जाए तथा इसमें मानवीय कारकों की कितनी भूमिका रहती हैं, इस विषय पर लिकर्ट के विचार अति महत्त्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में आप अभिप्रेरणा की संशोधित विचारधारा का प्रतिपादन करते हैं।

लिकर्ट के मतानुसार, संगठनात्मक प्रभावकारिता को मापते समय मानवीय संसाधनों के संधारण (Maintinence) को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में देखना चाहिए। आधुनिक समय में व्यक्ति अधिक स्वतन्त्रता एवं पहल चाहते हैं। लिकर्ट कहते है कि वे (व्यक्ति) नियन्त्रण एवं कड़े पर्यवेक्षण को बिल्कुल नहीं स्वीकारते है। आगे वे कहते है कि आज संगठनात्मक कार्य–सम्पादन को मापने के लिए केवल उत्पादकता ही एकमात्र घटक नहीं है अपितु मानवीय संसाधन भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

उत्पादन पर अत्यधिक ध्यान देने वाले दृष्टिकोण की लिकर्ट आलोचना करते हैं और कहते हैं, कि ये दृष्टिकोण अभिप्रेरणा के महत्त्व पर कम ध्यान देता है तथा ले–देकर पुनः 'आर्थिक मानव' के विचार के चारों ओर चक्कर लगाता है। इसलिए लिकर्ट प्रबन्ध एवं संगठन की उस संशोधित विचारधारा का सुझाव देते हैं जो निम्न बातों पर ध्यान देती हैं–

1) कार्यरत स्थितियों में मानवीय व्यवहार को नियन्त्रित करने वाले अभिप्रेरक बलों की प्रकृति तथा परिणाम।
2) उस तरीके पर जिसमें ये अभिप्रेरक बल काम में लिए जा सकें तथा इनमें आपस में कोई संघर्ष न हो।

लिकर्ट कहते हैं कि किसी निगम, एक विभाग या एक समूह के कार्य–निष्पादन का मापन करते समय निम्नलिखित घटकों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

1) संस्था के प्रति निष्ठा की भावना रखना एवं इसके उद्देश्यों के साथ पहचानीकरण करना।
2) इस बात का ध्यान रखना कि इकाइयों व व्यक्तियों के लक्ष्य किस सीमा तक संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं।
3) संगठन के सदस्यों के मध्य अभिप्रेरणा स्तर का ध्यान रखना, जिसमें निम्नलिखित चरों, जैसे– किए गए कार्य की गुणवत्ता व मात्रा सहित कार्य–सम्पादन, व्यर्थ की समाप्ति व लागतों को कम करने की चिन्ता, उत्पाद को सुधारने की चिन्ता, प्रक्रिया को सुधारने की चिन्ता आदि पर ध्यान दिया गया हो।
4) संगठन में सदस्यों के मध्य पारस्परिक तथा विभिन्न पदसोपानात्मक स्तरों पर विश्वास तथा भरोसे की मात्रा।
5) इकाइयों में टीम वर्क की मात्रा तथा गुणवत्ता तथा संगठन की इकाइयों के मध्य समूह कार्य की मात्रा व गुणवत्ता।

इस प्रकार लिकर्ट के अनुसार केवल उत्पादन ही कार्य–सम्पादन का एकमात्र मापदण्ड नहीं हो सकता बल्कि अनेक अन्य कारक भी इसमें शामिल किए जाने चाहिए। यद्यपि अलग–अलग हितधारकों के पास संगठनात्मक प्रदर्शन का गठन करने के बारे में अलग–अलग दृष्टिकोण हो सकते हैं और वे अपनी रुचियों और लक्ष्यों के आधार पर अलग–अलग मीट्रिक को प्राथमिकता दे सकते हैं।

3.7.8. आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

एक आदर्श संगठन विकसित करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा में लिकर्ट ने संगठनात्मक व्यवहार के क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं, जैसे– अन्तर्क्रिया–प्रभाव प्रणाली, भागीदारी निर्णय–निर्माण, लिंकिंग पिन मॉडल को विकसित या रेखांकित किया। लेकिन इन सबके अलावा उन्होंने सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यवहारात्मक/प्रवृत्ति उन्मुख स्केल, जिसे लिकर्ट स्केल के नाम से जाना जाता है, विकसित किया जो आज भी सभी नागरिकों, विशेषकर शोधकर्त्ताओं के जीवन को प्रभावित कर रहा है, चाहे उनका देश, लिंग, वंश, धर्म, आयु आदि कोई भी क्यों न हो। लिकर्ट के योगदानों के लिए प्रबन्ध जगत् सदैव उनका ऋणी रहेगा। उनके विचारों में मौलिकता व नवीनता झलकती है। इन सबके बावजूद लिकर्ट के विचारों की उनके समकालीन विचारकों के द्वारा आलोचना की जाती है–

1) लिकर्ट के लिंकिंग–पिन मॉडल को लेकर आलोचकों का दावा है कि इनका यह मॉडल परम्परावादी सोपानक्रमीय संरचनाओं के आस–पास खींचे हुए त्रिभुजों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। लूथन्स (Luthans) कहते है कि यह निर्णय प्रक्रिया में देरी करता है या यू कहे कि इससे निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया धीमी हो जाती है।

2) लिकर्ट का यह मानना है कि प्रबन्ध प्रणाली–4 को अपनाने वाले नेता/प्रबन्धक ही सदैव सफल होते हैं, गलत विचार है। आलोचको का कहना है कि प्रत्येक परिस्थिति में यह आवश्यक नहीं है। प्रबन्ध प्रणालियों के सम्बन्ध मे कतिपय प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं। हम किस प्रकार प्रबन्ध प्रणाली–1 और 2 को प्रबन्ध प्रणाली–3 और 4 की तरह बढ़ा सकते है? वस्तुतः यह एक कठिन और जटिल प्रक्रिया है। इस विषय में ज़ाल्ज़निक (Zaleznik) का कहना है कि प्रबन्ध प्रणाली–4 संगठनों के लिए आवश्यकता से अधिक सरलीकृत पैकेज है तथा प्रबंधकों को निरंकुश से लोकतांत्रिक रूप में बदलने की लिकर्ट की उत्कंठा/चिंता से बहुत अधिक सम्बन्धित है। क्लीन (Klein), ने पाया है कि प्रबन्ध प्रणाली–4 एक सम्बन्धित तुलनात्मक प्रक्रिया (Relative Process) है, क्योंकि उसकी मान्यता थी कि यह अद्यतन का सामयिक संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं द्वारा सीमित या प्रतिबंधित किया जा सकता है। प्रबन्ध प्रणाली–4 की मुख्य कमजोरियों में से एक, जिससे कई विचारक सहमत हैं, वह यह है कि लिकर्ट तथा उसके साथियों का विभिन्न संगठनात्मक स्थितियों में उनकी प्रस्तावित दृष्टिकोण की अनुभवात्मक सत्यता तथा विश्वसनीयता को सिद्ध करने का प्रयास है।

3) कई विचारकों का मत है कि लिकर्ट ने अपने दृष्टिकोण को सही ठहराने की अपनी महत्त्वाकांक्षा में, प्रतिपादकों द्वारा संगठनों में व्यावहारिक कठिनाइयों को दरकिनार कर दिया है।

4) आलोचको का कहना है कि संगठन, में संकट आना स्वाभाविक है। लेकिन इन संकटों का अर्थ यह नही है कि संगठन में निष्पादन लक्ष्य, समूह निर्णयन तथा समर्थात्मक सम्बन्ध टूट गए हैं। वस्तुतः संघर्ष का प्रबन्ध एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें अनेक पूर्वापेक्षाएँ शामिल हैं।

5) आलोचकों का कहना है कि लिकर्ट ने अपनी प्रबन्ध प्रणालियों के सम्बन्ध में परिस्थितिजन्य घटकों की अवहेलना की है। विचारक पॉल हर्सी ने नाइजीरिया के सन्दर्भ में नेतृत्व शैली सम्बन्धी अध्ययन किया। इस अध्ययन द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि नेता के व्यवहार की एक अकेली आदर्श या मानकीकृत शैली का समर्थन करने वाले प्रमाण अव्यवहारिक है। इसके परिणाम लिकर्ट के निष्कर्षों के बिल्कुल विपरीत थे।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद विचारक संगठनात्मक व्यवहार में लिकर्ट विधि सम्बन्धी तथा उनके सैद्धान्तिक योगदान को स्वीकार करते हुए उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। इस सम्बन्ध में किश (Kish) महोदय कहते है कि, लिकर्ट का समस्याओं के प्रति व्यावहारिक तथा प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण उसकी रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट हुआ है। वे आगे कहते है कि लिकर्ट स्केल/पैमाने पर आधारित सर्वेक्षण परिणाम व्यक्ति को लोगों के राजनेताओं, वैश्विक घटनाओं या उपभोक्ता उत्पादों तथा अन्य प्रासंगिक मामलों के प्रति दृष्टिकोणों को समझने योग्य बनाते हैं। दूसरे, लिकर्ट के भागीदार नेतृत्व तथा निर्णय–निर्माण पर लिकर्ट के विचार यद्यपि एक आदर्श स्थिति लगती है, इसके बावजूद भी इसकी व्यावहारिकता/प्रासंगिकता को कम नहीं आंक सकते हैं क्योंकि समकालीन संगठनों का प्रबन्ध प्रणाली–4 में दिए लोकतंत्र तथा विश्वास के सिद्धान्तों पर संरचित करना आवश्यक है।

3.8. अभ्यास प्रश्न (EXERCISE)

3.8.1. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1) अभिप्रेरणा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2) अब्राहम एच. मैस्लो का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3) फ्रेडरिक हर्जबर्ग के कारकों का नाम लिखिए।
4) डगलस मैक्ग्रेगर के सिद्धान्त 'Y' की मान्यताओं को संक्षिप्त में समझाइए।
5) सहभागी प्रबन्धन से क्या आशय है?

3.8.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1) अभिप्रेरणा की प्रक्रिया का नामोल्लेख कीजिए।
2) मैस्लो की आवश्यकता प्राथमिक सिद्धान्तों को संक्षिप्त में समझाइए।
3) हर्जबर्ग एवं मैस्लो के सिद्धान्तों में अन्तर लिखिए।
4) सिद्धान्त X तथा सिद्धान्त Y में अन्तर बताइए।
5) क्रिस आर्गिरिस का संक्षिप्त परिचय लिखिए।

3.8.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए। अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2) अब्राहम एच. मैस्लो द्वारा लिखित एक पुस्तक का नाम लिखिए। मैस्लो के आलोचनात्मक मूल्यांकन का उल्लेख कीजिए।
3) 'मानसिक स्वास्थ्य मानसिक बीमारी' के शीर्षक कौन हैं? फ्रेडरिक हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त के चार संयोजनों का विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
4) X एवं Y सिद्धान्त के किसने दिया है। डगलस मैक्ग्रेगर के सिद्धान्तों का मूल्यांकन सविस्तार वर्णन कीजिए।
5) रैंसिस लिकर्ट का परिचय देते हुए, लिकर्ट का 'लिंकिंग–पिन मॉडल' का सविस्तार उल्लेख कीजिए।

इकाई–4

प्रशासनिक तकनीकें
ADMINISTRATIVE TECHNIQUES

4.1. कार्यक्रम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक एवं सीपीएम (PROGRAMME EVALUATION AND REVIEW TECHNIQUE AND CPM)

4.1.1. कार्यक्रम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक (पर्ट) [Programme Evaluation and Review Technique (PERT)]

कार्यक्रम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक (PERT) एक प्रबन्धन तकनीक है जो विशेष रूप से जटिल प्रशासनिक योजना और प्रबन्धन हेतु विकसित की गई है। इसका विकास 1950 के दशक में किया गया था तथा इसका मुख्य उद्देश्य परियोजना के विभिन्न कार्यों के बीच सम्बन्धों को समझना और समय का प्रबन्धन करना है। PERT का विकास अमेरिकी जल सेना के विशेष परियोजना अधिकारी और लॉकहीड एयरक्राफ्ट निगम द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था। यह तकनीक परियोजना प्रबन्धन की एक महत्त्वपूर्ण विधि है, जो अनुगमन, समन्वय एवं कार्यों की आपसी समस्याओं का समाधान करने में अधिक प्रभावी होता है। जब परियोजनाएँ विभिन्न चरणों या उपकार्यों में पूरी की जाती हैं, तब तकनीकों का विशेष अनुक्रम तैयार करना, प्रत्येक उपकार्य में लगने वाले समय का निर्धारण करना तथा सभी कार्यों को मुख्य परियोजना से जोड़ना महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

यह तकनीक परियोजना के क्रियान्वयन में आने वाली समास्याओं एवं रुकावटों को दूर करने और समय पर परियोजना को पूरा करने में सहायक होती है। PERT, नियोजन और नियन्त्रण की एक ऐसी तकनीक है, जो किसी पूर्ण निर्धारित परियोजना या अनुसूची को पूरा करने में तन्त्र विश्लेषण का उपयोग करती है। जब किसी परियोजना की सभी क्रियाएँ एवं घटनाएँ तार्किक और अनुक्रमिक रूप से एक–दूसरे से सम्बन्धित कर दी जाती हैं, तो वे एक समग्र तन्त्र का निर्माण करती हैं। कई वर्षों से, PERT में अनेक सुविधाएँ एवं क्षमताएँ जोड़ी गई हैं। **उदाहरण के लिए**–वर्तमान समय में PERT का उपयोग परियोजना से सम्बन्धित खतरों का मूल्यांकन करने, महत्त्वपूर्ण पथ निर्धारित करने (जो कार्य समय पर पूरा किए जाने चाहिए) तथा परियोजना योजना में परिवर्तनों के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है वर्तमान समय में PERT एक लोकप्रिय प्रबन्धन तकनीकों में से एक है जो तब लागू होती है जब किसी परियोजना को पूरा करने के लिए आवश्यक समय निश्चित नहीं होता हैं। इसका उपयोग अत्यधिक अन्य विधियों जैसे कि महत्त्वपूर्ण पथ विश्लेषण एवं गैंट चार्ट के संयोजन में किया जाता है। पर्ट का पूरा नाम "प्रोग्राम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक (PERT)" है। यह एक वैज्ञानिक तकनीक है, जिसके तहत कार्यक्रम से जुड़े कार्यों को विभाजित कर, उन्हें

क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक कार्य के लिए एक अनुमानित समय निर्धारित किया जाता है तथा उसी समय सीमा के भीतर कार्य को पूरा करने का प्रयास किया जाता है। क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को सम्भवतः दूर करने के प्रयास किए जाते हैं। इस प्रकार, यह तकनीक किसी परियोजना की स्पष्ट व्याख्या करती है, उसके कार्यों में समन्वय स्थापित करती है और समय के अनुसार लक्ष्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करती है। पर्ट तकनीक भविष्य में आने वाली बाधाओं, कठिनाइयों एवं अवरोधों को उनकी उत्पत्ति से पहले ही समाप्त करके परियोजना को समय से पूर्व पूरा करने में सहायता करती है। इसे निम्नलिखित चित्र द्वारा समझाया जा सकता है–

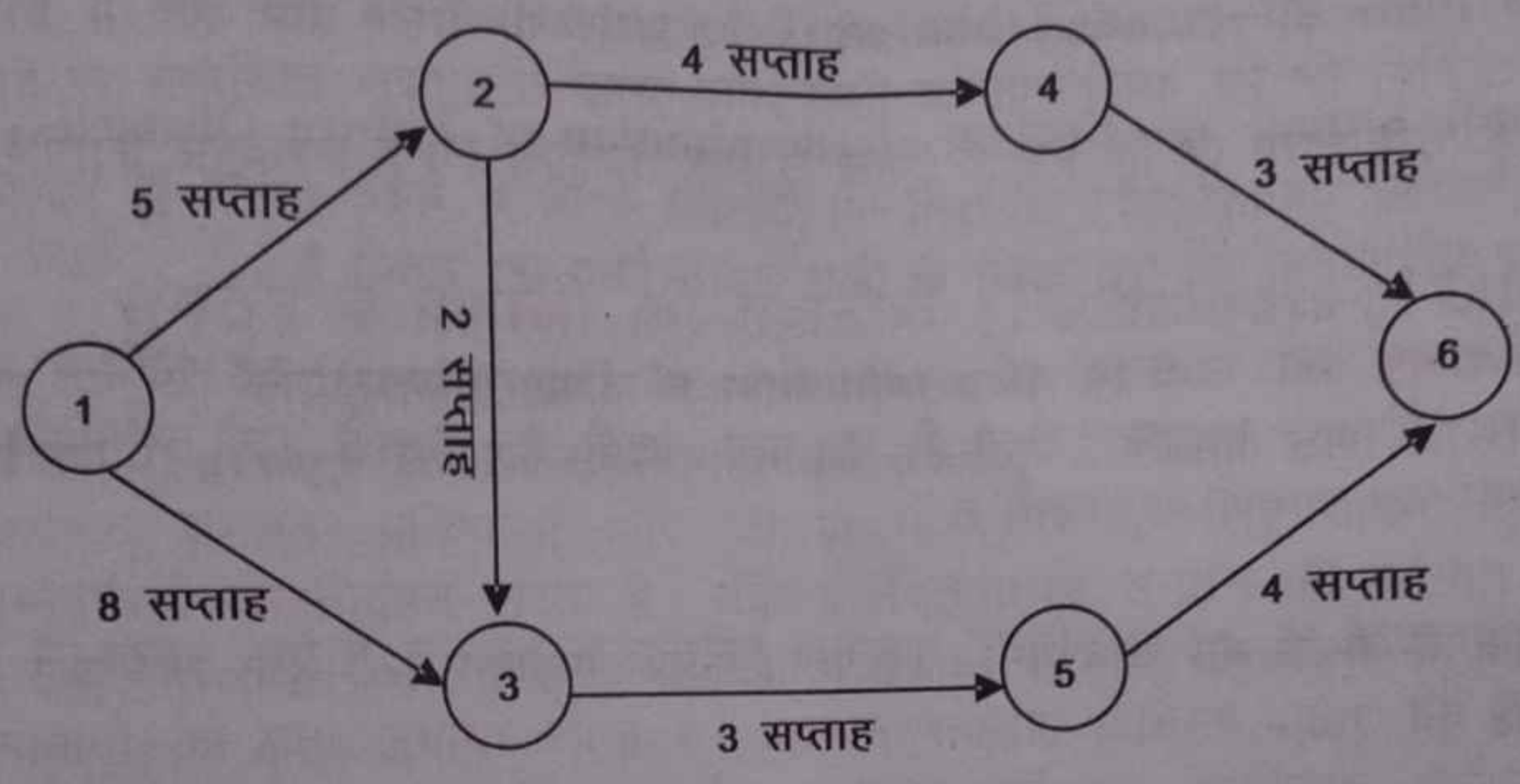

चित्र 4.1– पर्ट प्रक्रिया (PERT Process)

उपर्युक्त चित्र में पर्ट को तीरों (Arrow) के माध्यम से इसके पथ को दर्शाया गया है, जबकि गोल घेरे में घटनाक्रम को इंगित किया गया है। इस चित्र में (1) प्रारम्भिक बिन्दु को एक छोर पर और (2) अन्तिम बिन्दु को गंतव्य के रूप में दर्शाया गया है। अब हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि गंतव्य स्थान तक पहुँचने के लिए कितने मार्ग उपलब्ध हैं और प्रत्येक मार्ग में लगने वाला समय कितना है। इसे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया गया है–

1) **प्रथम मार्ग**– 1, 2, 4, 6 (समय 5+4+3 = 12 सप्ताह)
2) **द्वितीय मार्ग**– 1, 2, 3, 5, 6 (समय 5+2+3+4 = 14 सप्ताह)
3) **तृतीय मार्ग**– 1, 3, 5, 6 (समय 8+3+4 = 15 सप्ताह)

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि द्वितीय एवं तृतीय मार्ग अधिक कठिनाई वाले हैं, जिनमें क्रमशः 14 और 15 सप्ताह समय लग जाता है।

4.1.1.1. पर्ट की विशेषताएँ (Features of PERT)

PERT की मुख्य विशेषताएँ परियोजना को पूरा करने में लगने वाले समय को न्यूनतम करना तथा यह एक संभाव्यता मॉडल है। PERT के कुछ मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) **कार्य विभाजन (Work Division)**–PERT तकनीक में किसी परियोजना को छोटे–छोटे कार्यों में विभाजित किया जाता है, जिससे प्रत्येक कार्य का सही मूल्यांकन किया जा सके।

2) **समय प्रबन्धन में सहायता करना (Helping With Time Management)**– इसमें प्रत्येक कार्य के लिए न्यूनतम, अधिकतम एवं औसत समय का अनुमान लगाया जाता है, जिससे कार्य की समय सीमा का सही आकलन किया जा सकता है।

3) **दृश्य प्रस्तुति (Visual Presentation)**–PERT चार्ट में कार्यों को ग्राफिकल तरीके से प्रदर्शित किया जाता है, जिससे उनकी आपसी निर्भरता एवं क्रियान्वयन का क्रम स्पष्ट होता है।

4) **क्रियान्वयन में सुगमता (Ease of Implementation)**–यह तकनीक कार्यों के बीच के सम्बन्धों को स्पष्ट करती है, जिससे परियोजना प्रबन्धन में आसानी होती है।

5) **अनुमानित मार्ग (Approximate Route)**–PERT तकनीक का उपयोग करके सबसे लम्बा समय लेने वाला मार्ग (क्रिटिकल पाथ) निर्धारित किया जा सकता है, जो परियोजना के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के लिए महत्त्वपूर्ण होता है।

6) **भावी बाधाओं का निर्धारण (Determination of Future Obstacles)**–PERT सम्भावित बाधाओं और जोखिमों की पहचान करने में मदद करती है, जिससे समय पर परियोजना को पूरा करने के लिए उपाय किए जा सकते है।

7) **संचालन का समन्वय (Coordination of Operations)**–यह विभिन्न कार्यों के बीच समन्वय स्थापित करने में सहायता करती है, जिससे सभी गतिविधियाँ सही समय पर सम्पूर्ण हो सकती है।

इन विशेषताओं के कारण PERT तकनीक परियोजना प्रबन्धन में एक महत्त्वपूर्ण तकनीक बन गई है।

4.1.1.2. पर्ट के चरण (Steps of PERT)

पर्ट की तकनीकों के प्रयोग हेतु निम्न चरणों को अपनाना पड़ता है–

1) **घटनाओं एवं क्रियाओं की पहचान (Identification of Events and Activities)**–इसके अन्तर्गत घटना उस समय बिन्दु को कहते हैं जब कोई क्रिया प्रारम्भ होती है या समाप्त होती है। क्रिया एक ऐसी परिचालन है जिसमें समय एवं संसाधनों का उपयोग किया जाता है। इसमें समयबद्धता का तत्त्व होता है। इसमें क्रिया को तीर के निशान से और घटना को गोले द्वारा दिखाया गया है। ऊपर दिए गए चित्र में पर्ट की प्रक्रिया को दर्शाया गया है।

2) **क्रियाओं का अनुक्रम तय करना (Determining the Sequence of Activities)**–अनुक्रम निश्चित होने के फलस्वरूप क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध स्पष्ट हो जाते हैं। इससे ज्ञात हो जाता है कि कौन–कौन से कार्य एक साथ किए जाने हैं तथा कौन–कौन से कार्य पूर्ववर्ती एवं कौन–कौन से कार्य पश्चवर्ती हैं। क्रिया की पहचान से तर्कयुक्त तरीके से क्रियाओं की क्रमबद्धता दर्शायी जाती है।

3) **समयानुमानों का पता लगाना (Finding Time Estimates)**–इस चरण में अपेक्षित समय का निर्धारण करके विभिन्न समयानुमानों पर विचार किया जाता है। सामान्यतः क्रिया के तीन प्रकार अनुमानित किये जाते है।

   i) **आशावादी समयानुमान [Optimistic Time Estimates (a)]**–इसमें सबसे कम समय लगता है परन्तु कुछ क्रियाओं को पूरा करने में आवश्यक समय लग जाता है परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी विपरीत ही क्यों न हो।

   ii) **अधिकतम प्रायिक समयानुमान [Most Likely Time Estimate (m)]**–इस चरण में वह सबसे सम्भावित समय जिसमें कार्य पूरा होगा। अर्थात् सामान्य अवस्था में किसी क्रिया के पूरा होने में अनुमानित समय अधिकतम प्रायिक समयानुमान के अन्तर्गत होता है।

iii) **निराशावादी समयानुमान [Pessimistic Time Estimates (b)]**–इस क्रिया में सबसे अधिक समय लगता है, लेकिन कार्य पूरा होने की अत्यधिक सम्भावना रहती है। अर्थात् जिसमें समस्त परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के पश्चात् भी क्रिया पूरी हो जाती है।

प्रत्याशित क्रिया समय (Expected Activity Time-t_e)
प्रत्येक क्रिया के लिए प्रत्याशित समय निकलना, इन समयानुमानों के द्वारा बीटा प्रायिकता के आधार पर होता हैं। जिसे प्रत्याशित क्रिया समय (Expected Activity Time-t_e) निकाला जाता है। प्रत्याशित क्रिया समय के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसे ज्ञात करने हेतु निम्नांकित सूत्र है–

$$t_{ei} = (a + 4m + b)/6$$

जहाँ,

t_{ei} = ith गतिविधि का अपेक्षित समय,
a = आशावादी समय
m = सबसे अधिक संभावित, या मोडल समय,
b = निराशावादी समय

यह वह अनुमानित समय होता है जिसके माध्याम से सामान्य अवस्था में किसी क्रिया को पूरा करने में लगेगा।

4) **परियोजना अनुसूचियन (Project Scheduling)**–इस चरण के द्वारा परियोजना में जिन बातों का निर्धारण किया जाता है, वे परियोजनाएँ इस प्रकार से हैं–
   i) इसके अन्तर्गत परियोजना के पूर्ण होने का समय निर्धारित होता है।
   ii) इसमें क्रान्तिक क्रियाएँ जो कि निर्धारित समय पर पूर्ण की जाती हैं।
   iii) सभी घटनाओं एवं क्रियाओं में शैथिल्य समय की गणना करना अर्थात् अक्रान्तिक क्रियाओं का अनुमति योग्य विलम्ब जिसके कारण सम्पूर्ण परियोजना के पूर्ण होने पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

5) **तंत्र का निर्माण करना (Formulating the Network)**–सभी क्रियाओं को एक चार्ट में प्रदर्शित करते हुए तन्त्र तैयार किया जाता है। तन्त्र के निर्माण हेतु परियोजना की सभी क्रियाओं में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

6) **चरम पथ का निर्धारण (Determination of Critical Path)**–इस चरण में शीघ्रता से घटित होने वाला समय वह होता है जब घटना अस्तित्व में आती है तथा विलम्बित घटित समय वह है जब कार्य सम्पन्न हो जाता है। यह चरम पक्ष या क्रान्तिक मार्ग सबसे लम्बा मार्ग होता है। यह क्रान्तिक घटनाओं या क्रियाओं के अर्न्तगत शीघ्र घटित होने वाला समय एवं विलम्बित घटना दोनों का समय समान होता है।

7) **समीक्षा एवं नियन्त्रण (Monitoring and Control)**–इसके अन्तर्गत परियोजना शुरू करने के बाद विभिन्न समय पर उसकी समीक्षा की जाती है। समीक्षा एवं नियन्त्रण में निम्न कार्य किए जाते हैं–
   i) इसमें पूर्व निर्धारित योजना के साथ उसकी तुलना करना तथा सभी क्रियाओं एवं उसके निष्पादन समयों की समीक्षा करना शामिल है।
   ii) PERT के अन्तर्गत मूल योजना से होने वाले सभी विचलनों की पहचान करना है।
   iii) इस परियोजना में क्रान्तिक क्रियाओं में विलम्ब की पहचान करके दुबारा योजना बनाना एवं सम्पूर्ण तन्त्र का पुनः निर्माण करना शामिल है।

iv) PERT में परियोजना के निर्माण कार्य के सम्भावित विलम्ब को दूर किया जा सकता है इससे संसाधनों को क्रान्तिक क्रियाओं की तरफ हस्तान्तरित किया जाता है।

PERT एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है जो परियोजनाओं की जटिलता को समझने एवं प्रबंधित करने में मदद करता है। यह प्रबन्धकों को कार्यों की योजना बनाने और समय का अधिकतम उपयोग करने में सक्षम बनाता है। यदि परियोजनाएँ समय पर पूरी होती हैं, तो यह संगठन की दक्षता और उत्पादकता को बढ़ाता है।

4.1.1.3. पर्ट के लाभ (Advantages of PERT)

प्रोग्राम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक के विभिन्न महत्त्वपूर्ण लाभ हैं, जो प्रशासन प्रबन्धन में इसे एक प्रभावी उपकरण बनाते हैं। यहाँ PERT के लाभ इस प्रकार हैं–

1) **संगठन और स्पष्टता (Organisation and Clarity)**–किसी परियोजना में महत्त्वपूर्ण कार्यों की पहचान करने के लिए PERT एक परियोजना प्रबन्धन तकनीक के रूप में कार्यों को पूरा करने का सबसे कुशल तरीका है। PERT कार्यों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करता है, जिससे परियोजना की संरचना स्पष्ट होती है।

2) **समय प्रबन्धन (Time Management)**–PERT परियोजना की समय सीमा को बेहतर तरीके से प्रबन्धित करने में सहायता करता है, जिससे कार्यों को समय पर पूरा किया जा सकता है। यह एक परियोजना प्रबन्धन तकनीक है जिसमें उन कार्यों को पूरा करने का सबसे कुशल तरीका निर्धारित करने में मदद करती है।

3) **जोखिम पहचानना (Identifying Risks)**–इसके अन्तर्गत कार्यों के बीच निर्भरता के कारण सम्भावित जोखिमों की पहचान करना आसान होता है, जिससे प्रबन्धक समय रहते कार्यों को पूरा करने एवं सबसे कुशल तरीका निर्धारित करने में सक्षम होते हैं।

4) **संसाधन आवंटन (Resource Allocation)**–संसाधन आवंटन एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जो संसाधनों के उचित वितरण में सहायता करती है तथा परियोजना की दक्षता में वृद्धि होती है। PERT के द्वारा अधिक संसाधनों की आवश्यकता एवं कार्यों की पहचान कर सकते हैं जिससे परियोजना प्रबन्धकों को संसाधनों को अधिक प्रभावी तरीके से आवंटित करने की अनुमति देता है तथा तदनुसार उन्हें प्राथमिकता दे सकते हैं।

5) **लचीलापन (Flexibility)**–लचीलापन एक महत्त्वपूर्ण पहलू है जो परियोजना की योजना में आवश्यकतानुसार समायोजन करने की सुविधा प्रदान करता है। यह परियोजना प्रबन्धकों को एक लचीली योजना विकसित करने की अनुमति देता है, जिसे परियोजना के क्षेत्र, अनुसूची या संसाधनों में होने वाले किसी भी बदलाव के अनुरूप आसानी से अद्यतन किया जा सकता है। इस प्रकार, परियोजना की प्रगति के साथ आवश्यक परिवर्तन किए जा सकते हैं, जिससे समग्र सफलता की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

6) **क्रिटिकल पाथ का ज्ञान (Knowledge of Critical Path)**–क्रिटिकल पाथ का ज्ञान प्रबन्धकों को यह पहचानने में मदद करता है कि कौन–से कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है, ताकि परियोजना समय पर पूरी हो सके। यह परियोजना प्रबन्धकों को प्रगति की निगरानी करने एवं परियोजना योजना से किसी भी विचलन को पहचानने की अनुमति देता है, जिससे वे आवश्यकतानुसार सुधारात्मक कार्यवाही कर सकें।

7) **संचार में सुधार (Improving Communication)**–संचार में सुधार, समूह के सदस्यों के बीच स्पष्ट संवाद सुनिश्चित करता है, जिससे सभी को परियोजना की स्थिति एवं आवश्यकताओं का ज्ञान होता है। परियोजना योजना को अदृश्य रूप से प्रस्तुत करने हेतु नेटवर्क आरेख का उपयोग किया जाता है, जो परियोजना समूह के सदस्यों के बीच संचार और समन्वय को बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

8) **निर्णय लेने में सहायक (Decision Making Aids)**–PERT चार्ट निर्णय लेने में सहायक होता है, क्योंकि यह अलग–अलग कार्यों और उनके सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से दिखाता है। इसमें परियोजना प्रबन्धकों को परियोजना के साथ आगे बढने के बारे में उचित निर्णय लेने में मदद मिलती क्योंकि PERT का उपयोग कार्यवाही के वैकल्पिक पाठ्यक्रमों का मूल्यांकन करने के लिए किया जा सकता है।

इन लाभों के कारण PERT तकनीक परियोजना प्रबन्धन हेतु एक अत्यन्त उपयोगी तकनीक बन जाती है, जो योजना और कार्यान्वयन को सफल बनाती है।

4.1.1.4. पर्ट के हानि (Disadvantage of PERT)

PERT के कई हानि देखने को मिलते हैं, लेकिन इसके कुछ मुख्य हानियाँ इस प्रकार हैं–

1) **जटिलता (Complexity)**–इसके अन्तर्गत जटिल परियोजनाओं हेतु PERT चार्ट तैयार करना कठिन हो सकता है, जिससे योजना बनाने में समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। विशेषकर बड़ी एवं जटिल परियोजनाओं के लिए PERT को स्थापित करने और बनाए रखने में अधिक समय लग सकता है।

2) **परिवर्तन का प्रबन्धन (Managing Change)**–यदि परियोजना में कई परिवर्तन होते हैं, तो PERT चार्ट को अद्यतन करना कठिन हो सकता है, जिससे समय की बर्बादी होती है। अनिश्चित या तेजी से बदलती आवश्यकताओं वाली परियोजनाओं हेतु उपयोग करना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि यह विस्तृत, अग्रिम योजना पर निर्भर करता है।

3) **उच्च गणनात्मक प्रयास (High Computational Effort)**–PERT का सही उपयोग करने के लिए गणनाओं की आवश्यकता होती है, तथा परियोजना योजना में सभी प्रबन्धकों के विविध दृष्टिकोणों एवं प्राथमिकताओं को शामिल करना चुनौतीपूर्ण होता है। जिससे कई हितधारकों या परस्पर विरोधी उद्देश्यों वाली परियोजनाओं के लिए PERT का उपयोग करना मुश्किल हो सकता हैं।

4) **अनुमान की सटीकता (Accuracy of Estimate)**–कार्यों के लिए समय अनुमान हमेशा निश्चित नहीं होते तथा यह गलत अनुमान परियोजना की योजना को प्रभावित कर सकते हैं। यह भविष्य के बारे में धारणा बनाने पर निर्भर करता है जो सटीक नहीं हो सकता है। इससे उच्च स्तर की अनिश्चितता या जोखिम वाली परियोजनाओं के लिए PERT का उपयोग करना मुश्किल हो सकता है।

5) **निर्भरता का अभाव (Absence of Dependency)**–कुछ मामलों में कार्यों के बीच की वास्तविक निर्भरताओं को सही तरीके से प्रतिबिंबित नहीं कर सकता है, क्योंकि उपलब्ध समय सीमा के भीतर सभी आवश्यक योजनाओं एवं विश्लेषण को पूरा करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। इससे योजना में कमी आ सकती है तथा PERT का उपयोग तंग समय सीमा या अन्य बाधाओं वाली परियोजनाओं हेतु करना मुश्किल हो सकता है।

6) **सीमित उपयोग (Limited Use)**–यह तकनीक अधिकतर उन परियोजनाओं के लिए उपयुक्त है जिनमें समय प्रबन्धन महत्त्वपूर्ण होता है। कुछ साधारण या छोटे कार्यों हेतु इसका उपयोग कम प्रभावी हो सकता है। परियोजना की बाधाओं को प्रभावी तरीके से संसाधनों को आवंटित करना चुनौतीपूर्ण होता है। इससे सीमित संसाधनों वाली परियोजनाओं हेतु PERT का उपयोग करना कठिन हो सकता है।

7) **परियोजना की जटिलता को छिपाना (Hiding the Complexity of the Project)**–कभी–कभी, PERT की प्रस्तुति कार्यों की जटिलता को छिपा सकती है, जिससे प्रबन्धकों को वास्तविक चुनौतियों का सामना नहीं करना पड़ता है। कार्यों एवं संसाधनों के मध्य सम्बन्धों को निश्चित रूप से मॉडल करना तथा जटिल निर्भरताओं या अन्योन्याश्रितताओं वाली परियोजनाओं हेतु PERT का उपयोग करना कठिन हो सकता है।

अतः PERT एक महत्त्वपूर्ण तकनीक है जो परियोजनाओं की जटिलता को समझने और प्रबन्धित करने में मदद करता है। यह प्रबन्धकों को कार्यों की योजना बनाने और समय का अधिकतम उपयोग करने में सक्षम बनाता है। यदि परियोजनाएँ समय पर पूरी होती हैं, तो यह संगठन की दक्षता और उत्पादकता को बढ़ाता है। परियोजना प्रबन्धन में इसके प्रभावी उपयोग के लिए, प्रबन्धकों को इसके हानि को समझना और उन्हें सन्तुलित करना चाहिए। PERT तकनीक में कई लाभ हैं, लेकिन इसके हानि भी ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है।

4.1.2. सीपीएम (CPM)

सीपीएम का पूरा नाम (Critical Path Method), अर्थात् संकट पथ विधि या क्रिटिकल पाथ विधि है। क्रिटिकल पाथ का अभिप्राय क्रियाओं एवं घटनाओं के उस क्रम से है, जिनको पूरा करने में अधिकतम समय लगने की सम्भावना है। यदि किसी परियोजना को पूरा करने वाले समय में कमी करनी है तो क्रिटिकल पाथ को कम करना होगा। इस पथ पर स्थित गतिविधियों में किसी भी देरी के परिणामस्वरूप पूरी परियोजना में देरी होती है और इसलिए इसे क्रिटिकल पाथ के रूप में जाना जाता है। प्रक्रिया को तेज करने के लिए क्रिटिकल पाथ की गतिविधियों को पहले चुना जाता है। गत वर्षों में, सीपीएम (CPM) कई अतिरिक्त विशेषताओं एवं क्षमताओं को शामिल करने के लिए विकसित हुआ है। उदाहरणार्थ, अब इसका उपयोग किसी परियोजना से सम्बन्धित खतरों का आंकलन करने, परियोजना या योजना में परिवर्तनों के प्रभाव का मूल्यांकन करने और उसमें देरी करने वाली संभावित बाधाओं की पहचान करने के लिए किया जा सकता है। क्रिटिकल पाथ विधि एक नियतात्मक मॉडल है। सीपीएम विधि का उपयोग बड़े पैमाने पर अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों में सफलतापूर्वक किया जाता है, जैसे निर्माण कार्य, औद्योगिक रखरखाव और अधिष्ठान संचालन। वर्तमान समय में, सीपीएम सामान्यतया प्रबन्धन तकनीकों जैसे पर्ट और गैंट चार्ट के संयोजन के साथ प्रयुक्त किया जाता है। यह जटिल परियोजनाओं के प्रबन्धन और उसे सुनिश्चित करने के लिए एक प्रभावी उपकरण है कि वे समय पर और बजट के भीतर पूरी हो जाएं।

4.1.2.1. सीपीएम विश्लेषण के सिद्धान्त (Principles of CPM Analysis)

सीपीएम विश्लेषण के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1) दो या अधिक परिचालनों के बीच एक मार्ग निर्धारित करता है जो प्रदर्शन के कुछ उपायों को अनुकूलित करता है।

2) उत्पादन प्रक्रिया में शामिल कठिनाइयों का पता लगाता है।

3) प्रत्येक गतिविधि के लिए, आरंभ और समाप्ति का समय निर्दिष्ट किया जाता है।
4) प्रत्येक गतिविधि के लिए, फ्लोट मान निर्धारित किया जाता है जो प्रत्येक गैर–महत्त्वपूर्ण गतिविधि से जुड़ा हुआ है।

4.1.2.2. सीपीएम के लाभ (Advantages of CPM)

सीपीएम के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1) यह उन गतिविधियों की समय सारणी निर्धारित करने में मदद करता है जो एक क्रम में होती हैं।
2) किसी परियोजना या प्रशासन में महत्त्वपूर्ण कार्यों की पहचान करने में सीपीएम सहायक होता है, परियोजना प्रबंधकों को यह सुनिश्चित करने के लिए कि कार्य समय पर पूरा हो, के लिए अपने प्रयासों पर ध्यान केंद्रित करने की अनुमति देता है।
3) सीपीएम किसी परियोजना या प्रशासन का एक स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकता है, जो प्रशासनिक समूह के सदस्यों के मध्य संचार एवं समन्वय स्थापित करने के लिए उपयोगी हो सकता है।
4) सीपीएम प्रबंधकों को परियोजना में संभावित बाधाओं एवं महत्त्वपूर्ण बिंदुओं की पहचान करने में मदद करता है, जिससे उन्हें देरी को रोकने या कम करने के लिए सक्रिय उपाय करने में मदद मिलती है।
5) यह प्रबन्धन के लिए परियोजना के नियंत्रण को सरल बनाने में मदद करता है।
6) सीपीएम परियोजना प्रबंधकों को संसाधनों को अधिक प्रभावी ढंग से आवंटित करने में मदद करता है, उन्हें उन कार्यों की पहचान करने की अनुमति देता है।
7) सीपीएम परियोजना प्रबंधकों को प्रगति को ट्रैक करके उन्हें आवश्यकतानुसार सुधारात्मक कार्रवाई करने की अनुमति प्रदान करता है।
8) सीपीएम प्रबंधकों को योजना के विरुद्ध वास्तविक प्रगति की तुलना करने और बजट पर बने रहने के लिए आवश्यकतानुसार सुधारात्मक कार्रवाई करने की अनुमति देकर परियोजना लागतों की निगरानी और नियंत्रण के लिए एक आधार प्रदान करता है।
9) सीपीएम प्रबंधकों को संभावित खतरों की पहचान करने और उन खतरों को कम करने या प्रबंधित करने के लिए आकस्मिक योजना बनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।
10) प्रबन्धन केवल महत्त्वपूर्ण गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करता है क्योंकि यह विधि परियोजना में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्वों को परिभाषित करती है।
11) सीपीएम परियोजना प्रबंधकों को योजना के प्रबन्धन के लिए एक स्पष्ट योजना और एक संरचित दृष्टिकोण प्रदान करके यह सुनिश्चित करने में मदद करता है कि परियोजना समय पर और बजट के भीतर पूरी हो गई है।
12) सीपीएम परियोजना प्रबंधकों को मूल परियोजना के विरुद्ध परियोजना के वास्तविक परिणाम की तुलना करने की अनुमति देकर, परियोजना के बाद मूल्यांकन के लिए एक आधार प्रदान करता है।

4.1.2.3. सीपीएम के हानि (Disadvantages of CPM)

सीपीएम की कुछ हानियाँ हैं जो इस प्रकार हैं–

1) सीपीएम के प्रयोग में अधिक समय लगता है, विशेष रूप से बड़ी एवं जटिल प्रशासनिक परियोजनाओं में अधिक समय लगता है।

2) सीपीएम अनिश्चित रूप से या तेजी से बदलती आवश्यकताओं वाली परियोजनाओं के लिए प्रयोग करना कठिन होता है, क्योंकि यह बड़ी एवं अग्रिम योजना पर निर्भर करता है।
3) यह विधि इस धारणा पर आधारित है कि परियोजना में प्रत्येक गतिविधि में सटीक ज्ञात समय लगता है लेकिन वास्तव में यह संभव नहीं है।
4) सीपीएम को कई हितधारकों या परस्पर विरोधी उद्देश्यों वाली परियोजनाओं के लिए उपयोग करना कठिन होता है, क्योंकि परियोजना योजना में सभी हितधारकों के वैचारिक विभिन्नता एवं प्राथमिकताओं को शामिल करना चुनौतीपूर्ण होता है।
5) सीपीएम को उच्च स्तर की अनिश्चितता या खतरे वाली परियोजनाओं के लिए उपयोग करना कठिन होता है, क्योंकि यह भविष्य के बारे में धारणा बनाने पर निर्भर करता है जो सटीक होना असंभव है।
6) नेटवर्क में कोई भी बदलाव नेटवर्क की पूरी संरचना को बदल देगा और इसलिए सीपीएम को एक नियंत्रण उपकरण के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
7) सीपीएम को सीमित समय सीमा या अन्य बाधाओं वाली परियोजनाओं के लिए उपयोग करना कठिन हो सकता है, क्योंकि उपलब्ध समय सीमा के भीतर सभी आवश्यक योजना और विश्लेषण को पूरा करना चुनौतीपूर्ण होता है।
8) सीपीएम अनुमानों में किसी भी सांख्यिकीय विश्लेषण का उपयोग नहीं किया जाता है।
9) सीमित संसाधनों वाली परियोजनाओं के लिए सीपीएम का प्रयोग करना कठिन होता है, क्योंकि परियोजना की बाधाओं को प्रभावी ढंग से दूर करने के लिए संसाधनों को आवंटित करना चुनौतीपूर्ण होता है। यह एक गतिशील नियंत्रण उपकरण नहीं है।

4.1.3. पर्ट एवं सीपीएम में अन्तर (Difference Between PERT and CPM)

पर्ट (PERT) (प्रोग्राम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक) और सीपीएम (CPM) (क्रिटिकल पाथ मेथड) प्रशासन प्रबन्धन की तकनीकें हैं जो उनके केन्द्रविन्दु एवं दृष्टिकोण में भिन्न हैं। पर्ट और सीपीएम के मध्य प्रमुख अन्तर इस प्रकार है–

आधार (BASES)	पर्ट (PERT)	सीपीएम (CPM)
मॉडल (Model)	परिणाम का अनुमान प्रायिकता के तरीके से लगाया जाता है क्योंकि यह संभाव्यता मॉडल है।	परिणाम निश्चित रूप से सुनिश्चित किया जाता है क्योंकि यह एक नियतात्मक मॉडल है।
समय (Time)	इस पद्धति में अनिश्चित समय की गतिविधियों से निपटा जाता है।	इस पद्धति में गतिविधियों के सटीक समय का पता लगाया जाता है।
अभिविन्यास (Orientation)	यह घटना उन्मुख है, क्योंकि इसके परिणामों की गणना घटनाओं के आधार पर की जाती है।	यह गतिविधि उन्मुख है, क्योंकि इसका परिणाम गतिविधियों के आधार पर गणना किया जाता है।
वैकल्पिक गतिविधियाँ (Dummy Activities)	गतिविधियों के उचित अनुक्रम का प्रतिनिधित्व करने के लिए पर्ट तकनीक में वैकल्पिक गतिविधियों का उपयोग किया जाता है।	सीपीएम तकनीक में वैकल्पिक गतिविधियों का उपयोग नहीं किया जाता है।
लगत (Cost)	इस पद्धति में किसी परियोजना की लागत का पता नहीं लगाया जाता है।	सीपीएम तकनीक में किसी प्रोजेक्ट शेड्यूल की लागत और उनके न्यूनतमीकरण का पता लगाया जाता है।

क्रैशिंग (Crashing)	पर्ट पद्धति में क्रैशिंग का पता नहीं लगाया जाता है।	सीपीएम विधि में क्रैशिंग का पता लगाया जाता है।
अनुमान (Estimation)	तीन समय अनुमानों के उपयोग से, प्रत्येक गतिविधि के लिए अनुमानित समय की गणना की जाती है।	गणना में एक प्रकार के समय अनुमान का उपयोग किया जाता है जो बिल्कुल ज्ञात होता है
नियंत्रण उपकरण (Control Device)	इसका उपयोग एक महत्त्वपूर्ण नियंत्रण उपकरण के रूप में किया जाता है क्योंकि यह गतिविधियों में देरी की निरंतर समीक्षा करके किसी परियोजना को नियंत्रित करने में प्रबन्धन की सहायता करता है।	इसे नियंत्रण उपकरण के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसके नेटवर्क में हर बार बदलाव किए जाने पर परियोजना के संपूर्ण मूल्यांकन को दोहराना पड़ता है।
सांख्यिकीय उपकरण (Statistical Device)	पर्ट तकनीक अनुमान लगाने में सांख्यिकीय उपकरणों का उपयोग करती है।	सीपीएम तकनीक अनुमान लगाने में सांख्यिकीय उपकरणों का उपयोग नहीं करती है।

पर्ट तथा सीपीएम तकनीक का प्रयोग नियन्त्रण के रूप में, कम्प्यूटर व्यवस्था में, नए उत्पाद निर्माण से सम्बन्धित परियोजनाओं के अध्ययन में, यन्त्रों के अन्तिम लेखे–जोखों में, बड़ी परियोजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन में किया जाता है। यद्यपि पर्ट एवं सीपीएम महत्त्वपूर्ण प्रबंधकीय नियन्त्रण की तकनीकें हैं, किन्तु कई बार व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण इस तकनीक का प्रयोग सम्भव नहीं हो पाता है।

4.2. साइबरनेटिक्स (CYBERNETICS)

4.2.1. परिचय (Introduction)

साइबरनेटिक्स शब्द से आशय, विभिन्न प्रणालियों के अन्वेषण, अनुभव और उनके आपसी क्रिया करने के तरीके से है, प्रमुख रूप से फीडबैक लूप (प्रतिक्रिया पाश) के सम्बन्ध में। जब सिस्टम के एक भाग के परिणामों को अगले भाग के लिए इनपुट के रूप में लिया जाता है, तब फीडबैक लूप उत्पन्न होता है। साइबरनेटिक्स का क्षेत्र अनेक वर्षों से अस्तित्व में है, और यह विकसित ही होता जा रहा है। हालाँकि अलग–अलग लोगों द्वारा इसे अलग–अलग तरीकों से परिभाषित किया गया है। अब लोक प्रशासन में भी यह महत्त्वपूर्ण हो गया है। सर्वप्रथम 1948 ई. में गणितज्ञ नॉर्बर्ट वीनर ने साइबरनेटिक्स को "पशु और मशीन में नियंत्रण एवं संचार के अध्ययन" के रूप में वर्णित किया है। इसके बाद साइबरनेटिक्स को इंजीनियरिंग, वास्तुकला और मनोविज्ञान सहित कई अन्य क्षेत्रों में लागू किया गया है। हालाँकि साइबरनेटिक्स को समझने के अनेक तरीके हैं, परन्तु बुनियादी रूप में इसे नियंत्रण प्रणालियों और उनकी अंतःक्रियाओं का अध्ययन माना जाता है। साइबरनेटिक्स को सामान्यतः किसी प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझने के लिए लागू किया जाता है। अक्सर इसमें देरी या ओवरशूट को कम करते हुए इनपुट को अनुकूलित करने के लिए एक एल्गोरिथ्म अथवा मॉडल को विकसित करना शामिल होता है। इस प्रकार यह स्थिरता सुनिश्चित करने में सहायता करता है। साइबरनेटिक्स के इस विशिष्ट पहलू को नियंत्रण सिद्धान्त कहते हैं। प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए अक्सर इसका उपयोग किया जाता है, इसके अतिरिक्त यह लक्ष्य प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए भी आश्वस्त करता है। साइबरनेटिक्स प्रमुख रूप से विभिन्न प्रक्रियाओं को समझने और समझाने का प्रयास करते समय सहायक होता है क्योंकि प्रक्रियाओं को समझने से ही उन्हें अनुकूलित एवं परिशोधित किया जा सकता है। साइबरनेटिक्स का यह विशेष उपयोग सबसे सामान्य है।

4.2.2. प्रबन्धन साइबरनेटिक्स (Management Cybernetics)

"प्रबन्धन साइबरनेटिक्स" प्रबन्धन एवं संगठनों के लिए साइबरनेटिक्स के अनुप्रयोग से सम्बन्धित है। इसे 1950 के दशक के अंत में स्टैफोर्ड बीयर द्वारा पेश किया गया था। साइबरनेटिक्स के नजरिए से यह संगठनात्मक प्रणाली द्वारा और उन पर लागू होने वाले स्व–नियमन के ढाँचों का परिचय देता है। बीयर ने इस सिद्धान्त को व्यावहारिक अनुप्रयोगों एवं प्रभावशाली पुस्तकों की एक श्रृंखला को संयोजित करके विकसित किया था। व्यावहारिक अनुप्रयोगों के अन्तर्गत विभिन्न उद्योगों की विस्तृत विविधता में उत्पादन, प्रकाशन एवं संचालन अनुसंधान शामिल थे। कुछ लोगों का मत है, कि प्रबन्धन साइबरनेटिक्स का सम्पूर्ण विकास बीयर की पुस्तकों में दृष्टिगत होता है।

4.2.3. परिचालन में अनुसंधान (Research into Operations)

जैसा कि बीयर ने अभ्यास किया, परिचालन सम्बन्धी अनुसंधान में विभिन्न विषयों से सम्बंधित टीमें शामिल थीं, ये टीमें कठिन प्रबंधकीय मुद्दों के लिए व्यावहारिक सहयोग की तलाश में थीं। इसके अन्तर्गत प्रायः मूल विज्ञानों से उधार लिए गए मॉडलों का विकास शामिल होता था और उन्हें संगठनात्मक स्थिति के साथ समरूपी सम्बन्धों में रखा जाता था। बीयर ने शुरू में इसे ऑपरेशन रिसर्च (ओआर) कहा था, लेकिन रसेल एकॉफ के साथ, वे इस शब्द से लगातार असंतुष्ट होते गए क्योंकि यह एक ऐसे क्षेत्र में परिवर्तित हो गया, जिसमें गणितीय उपकरणों के एक पूर्वनिर्धारित सेट को उचित प्रकार से तैयार की गई समस्याओं पर लागू किया गया था।

बीयर के ऑपरेशन रिसर्च की आंशिक तौर पर पारंपरिक आलोचना यह थी कि यह गणित के विशेषज्ञों का मामला बन गया है जो अपनी विधियों के अनुरूप स्थितियों को तलाश रहे हैं। बीयर ने इस मामले में जोर देकर कहा कि परिचालनों में प्रभावी अनुसंधान के लिए सर्वप्रथम स्थिति के भीतर गतिशीलता को समझना आवश्यक है, तत्पश्चात ही उन तरीकों अथवा सिद्धान्त का चयन करना चाहिए जो उस स्थिति को विस्तार से समझने में सक्षम हो। बीयर की "निर्णय और नियंत्रण" नामक पुस्तक में विशेष रूप से अध्याय छह, में कार्यप्रणाली पर विस्तार से चर्चा की गई है।

4.2.4. व्यवहार्य प्रणाली मॉडल (Viable System Model- VSM)

व्यवहार्य से आशय है, स्वतंत्र अस्तित्व में समर्थ होना। इसके द्वारा आंतरिक स्थिरता को बनाए रखने और बदलते परिवेश के लिए अनुकूलन दोनों को सन्दर्भित किया जाता है। है, यदि प्रासंगिक परिवेश तेजी से परिवर्तित हो रहा हो तो "आंतरिक स्थिरता" और "अनुकूलन" में टकराव हो सकता है। इस सम्भावना के तहत इन दोनों के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए व्यवहार्य प्रणाली मॉडल को अपनाया जाता है ताकि सिस्टम जीवित रह सके। व्यवहार्य प्रणाली मॉडल एक शक्तिशाली एवं बहुमुखी प्रशासनिक ढाँचा है, जिसका उपयोग व्यवहार्य प्रणालियों के डिजाइन, व्यवसाय प्रबन्धन, सिस्टम इंजीनियरिंग और लेखापरीक्षा में शिक्षण हेतु किया जाता है।

इस विषय पर स्टैफोर्ड बीयर ने तर्क प्रस्तुत किया है, कि व्यवहार्य अथवा स्वायत्त प्रणालियों में एक अंतर्निहित अनुकूलित संगठन होता है, अर्थात एक विशेष प्रकार की संरचना होती है, जिसके भीतर समस्थिति की नियामक प्रक्रिया के माध्यम से परिवर्तित होते वातावरण में उसके अस्तित्व को सुनिश्चित करने के लिए पाँच विशिष्ट कार्य होते हैं। पुनरावृत्ति के केंद्रीय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यवहार्य प्रणाली के भीतर समाहित एक और व्यवहार्य प्रणाली होती है।

4.2.4.1. व्यवहार्य प्रणाली का साइबरनेटिक मॉडल (Cybernetic Model of Viable System)

किसी भी व्यवहार्य प्रणाली का साइबरनेटिक मॉडल पाँच आवश्यक एवं पर्याप्त उप–प्रणालियों का सम्मिलित रूप होता है, जो किसी भी प्राणी या संगठन में परस्पर क्रियाशील रहते हैं, तथा बदलते वातावरण में अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम होते हैं। प्रणाली के प्रबन्धन साइबरनेटिक्स के तत्व हैं–संचालन, समन्वय, अनुकूलन, विकास और मूल्यांकन। इनका संक्षिप्त विश्लेषण निम्नवत है।

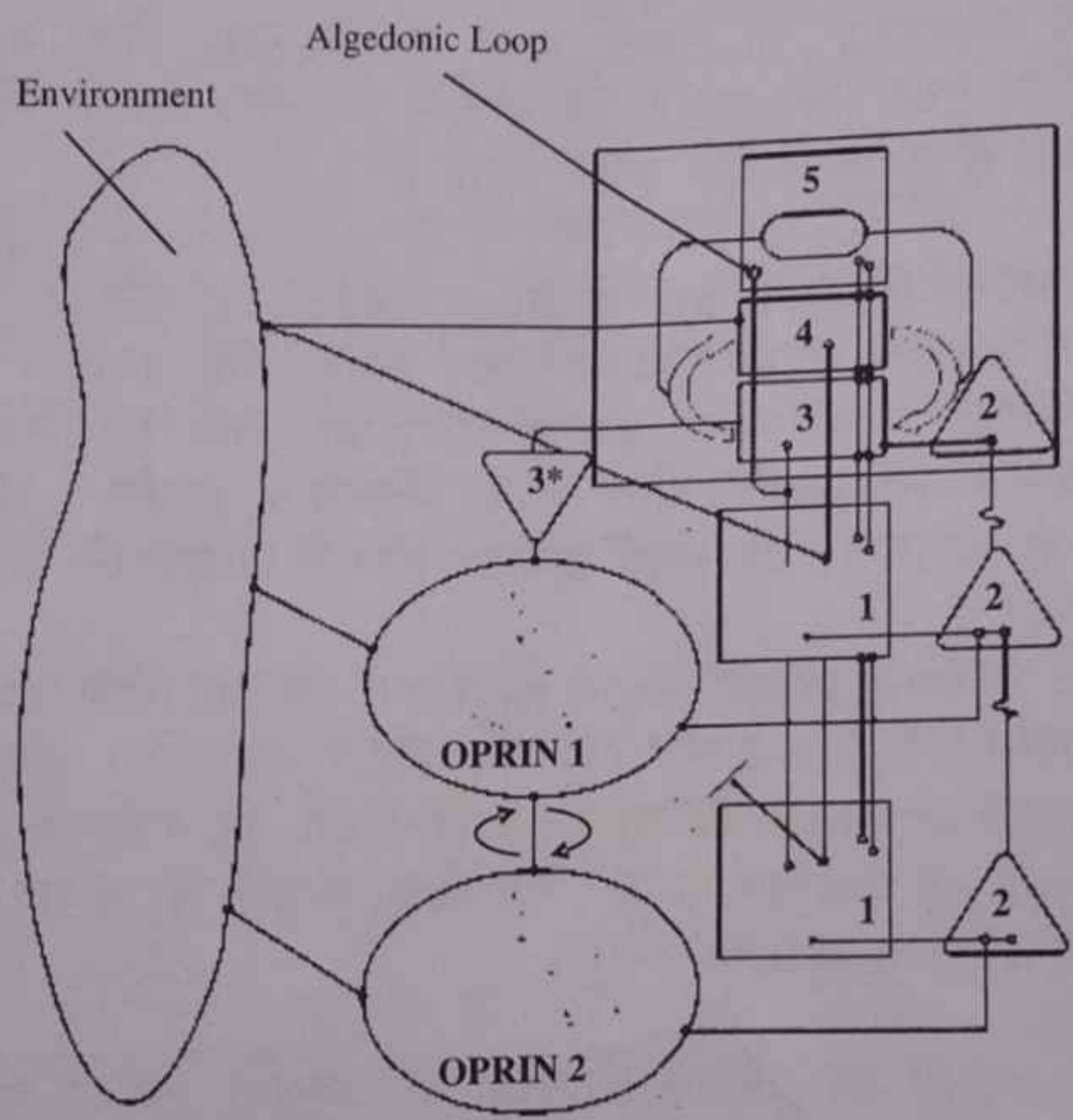

चित्र 4.2– व्यवहार्य प्रणाली मॉडल (बीयर–1984)
[Figure 4.2: Viable System Model (Beer 1984)]

संचालन (सिस्टम 1) व्यवहार्य प्रणाली के अंतर्गत सिस्टम 1 मूलभूत संचालन को संदर्भित करता है। व्यवहार्य प्रणाली का पहला उपतंत्र इसे बनाने वाले उन तत्वों से मिलकर बना होता है जिन्हें सिस्टम का ऑटोपोएटिक जनरेटर कहा जाता है। इसमें इन संचालनों का प्रबन्धन शामिल है, परन्तु वरिष्ठ प्रबन्धन शामिल नहीं है, इसे सिस्टम 1 की सेवाओं के एक समूह के रूप में माना जाना चाहिए।

समन्वय (सिस्टम 2) सिस्टम 1 के तत्व एक दूसरे के रास्ते में आकर सिस्टम में दोलन उत्पन्न न कर दें। अतः दोलनों को कम करने के लिए उनके मध्य समन्वय आवश्यक है। इसलिए सिस्टम 2 में सिस्टम 1 के प्रत्येक तत्व के लिए एक विनियामक केंद्र और वरिष्ठ प्रबन्धन स्तर पर एक निगरानी विनियामक केंद्र शामिल है। सिस्टम 2 का स्पष्ट उदाहरण एक उत्पादन योजना अथवा एक आंतरिक कंपनी का समाचार पत्र है। सिस्टम 2 की गतिविधियाँ दोपहर के भोजन पर अथवा काम के बाद किसी पब में अनौपचारिक रूप से हो सकती हैं। वरिष्ठ प्रबन्धन के हस्तक्षेप की आवश्यकता केवल तत्वों के बीच मतभेद सुलझाने के लिए होनी चाहिए।

अनुकूलन या नियंत्रण (सिस्टम 3) अनुकूलन या नियंत्रण से तात्पर्य वरिष्ठ प्रबन्धन द्वारा सिस्टम 1 के दैनिक नियंत्रण से है। इसके मुख्य कार्य दो हैं–सिस्टम 1 की गतिविधियों के भीतरी और अविलम्ब नियंत्रण का प्रबन्धन करना और सिस्टम 2 की

समन्वय गतिविधियों का निरीक्षण करना। सिस्टम 3 नियंत्रण के लिए मुख्य रूप से टेढ़े आरेख पर वर्टिकल कमांड चैनलों का प्रयोग करता है। हालाँकि, यह सुनिश्चित करने के लिए कि सिस्टम 1 प्रबन्धन दुर्घटनावश अथवा जानबूझकर सिस्टम 3 की आँखों में धूल झोंकने का प्रयास तो नहीं कर रहा । इसलिए सिस्टम 3 की अपेक्षित विविधता को प्रभावी ढंग से बनाए रखने के लिए उसे सिस्टम 1 के संचालन की सीधे निगरानी करने की आवश्यकता हो सकती है।

विकास (सिस्टम 4) इसका कार्य बाहर और भविष्य की ओर देखना है, ताकि संगठन में अंतर्निहित समूचे वातावरण को स्पष्ट करने में सहायता मिल सके। इसमें सभी प्रतिभागियों के लिए मुख्य प्रश्न यह है, कि क्या मैं इस लेन–देन के लिए वही करता हूँ जो मैं सदैव करता हूँ अथवा मैं कुछ नवीन करता हूँ?

मूल्यांकन या नीति (सिस्टम 5) सिस्टम 5, सिस्टम 3 और 4 के होमोस्टेट के क्रियाकलापों की निगरानी करके लोकाचार और संगठन की पहचान करता है। इसके उद्देश्यों और विशेषताओं को प्रभावी ढंग से परिभाषित करता है। सिस्टम 3, 4 और 5 की संयुक्त संरचना में एक अधितंत्र होता है, जो सिस्टम 1, 2 और 3 की संयुक्त संरचना से तार्किक रूप से बेहतर है। यह समग्र उत्पादन प्रणाली के प्रबन्धन से सम्बंधित है।

स्टैफोर्ड बीयर ने व्यवहार्य प्रणाली मॉडल (वीएसएम) की अवधारणा को तैयार करने के लिए विलियम रॉस एशबी (1964) और हेंज वॉन फॉस्टर (1981) के आवश्यक विविधता के नियम के दूसरे क्रम के साइबरनेटिक्स पर कार्य किया है। बीयर के अनुसार विविधता प्रणालीगत जटिलता की एक माप है और यह किसी प्रणाली में पहचाने जाने योग्य तत्वों की संख्या अथवा संभावित अवस्थाएँ हैं ।

अक्सर व्यवहार्य प्रणाली का प्रबन्धन जटिलता की समस्या उत्पन्न कर देता है, इससे प्रणाली के नियामक खतरे में पड़ जाते हैं। किसी भी प्रणाली के नियंत्रण का स्तर उपलब्ध सूचना की मात्रा के समानुपातिक होता है। यदि नियंत्रण फंक्शन में किसी स्थिति को प्रबंधित करने हेतु पर्याप्त विनियामक क्षमता है, तो माना जाता है कि इसमें अपेक्षित विविधता है। यदि विनियामक क्षमता नहीं है, तो ऐसे में स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाएगी जिससे सिस्टम व्यवहार्यता के लिए खतरा उत्पन्न हो जाएगा। अतः सिस्टम 1 और 2, सिस्टम 2 और 3, सिस्टम 3 और 4, सिस्टम 4 और 5 के साथ–साथ सिस्टम 1 और 3′ तथा सिस्टम 1 और 5 (एल्जेडोनिक लूप) के मध्य अनुकूलतम सूचना विविधता प्रबन्धन बनाए रखा जाना चाहिए।

4.2.4.2. स्टैफोर्ड बीयर के व्यवहार्य प्रणाली मॉडल का अनुप्रयोग (Application of Stafford Beer's Viable System Model)

स्टैफोर्ड बीयर के व्यवहार्य प्रणाली मॉडल(वीएसएम) का सभी तरह के संगठनों में विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त किया जा सकता है–

1) स्टैफोर्ड बीयर के व्यवहार्य प्रणाली मॉडल का सबसे पहले संगठनात्मक प्रबन्धन साइबरनेटिक्स के विश्लेषण के लिए प्रयोग किया जा सकता है–संगठनात्मक संरचना एवं कार्य पर ध्यान केंद्रित करने वाले व्यवहार्यता विश्लेषण में। ये संरचनात्मक विश्लेषण एक संगठन में बेहतर सूचना एवं ज्ञान प्रबन्धन परम्पराओं के माध्यम से सूचना सुरक्षा में सुधार करने का परामर्श देगा। वहीं कार्यात्मक विश्लेषण कार्यात्मक व्यवहार्यता में सुधार करने का परामर्श देगा।

2) उपरोक्त के अलावा स्टैफोर्ड बीयर के व्यवहार्य प्रणाली मॉडल को यो–यो तकनीक का प्रयोग करके एक नवीन व्यावसायिक इकाई के मॉडल के लिए भी लागू किया जा सकता है। पुनरावर्ती नियंत्रण अनुक्रम में पुनरावर्ती इकाइयों में व्यवस्थित व्यवहार मॉडल को टाइप करना नई व्यावसायिक इकाई पर मैप किया जा सकता है। वीएसएम को वरिष्ठ प्रबन्धन द्वारा रणनीतिक व्यवसाय विकास और प्रबन्धन में नई व्यावसायिक इकाइयों को मॉडल करने या शुरू से स्वायत्त संगठनों को डिजाइन करने के लिए लागू किया जा सकता है।

4.2.5. एकीकरण (Integration)

विशाल आधुनिक संगठनों के प्रबन्धन की सबसे विकट समस्याओं में से एक यह भी है, कि अनेक मुद्दे लघु समूहों के लिए भी अत्यंत जटिल होते हैं। संगठनों को अक्सर दो विकल्पों में से किसी एक को चुनना पड़ता है, पहला समूहों की बहुत महंगी और अधिक समय लेने वाली बैठकें अथवा दूसरा प्रासंगिक कारकों की अपर्याप्त समझ के आधार पर गलत निर्णय लेना। इसी पहेली को सुलझाने के लिए एक समूह विधि एकीकरण को डिजाइन किया गया है। एकीकरण, कई साइबरनेटिक सिद्धान्तों को टेन्सग्रिटी पर बकमिन्स्टर फुलर के विचारों के साथ जोड़ता है।

प्रारंभिक समूह समन्वयता प्रारूप में लगभग 30 लोगों को 12 व्यापक समूह में बाँटा गया था, इनका उद्देश्य आरंभ में अस्पष्ट और बड़े मुद्दों से निपटना था। विभिन्न समूहों और समूहों की भीतरी भूमिकाओं को पूरे समूह में सूचना की प्रतिध्वनि की गणितीय रूप से अनुकूलतम डिग्री प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित किया जाता है। व्यवहारिक तौर पर एकीकरण प्रारंभिक मुद्दे की साझा समझ की एक महत्त्वपूर्ण डिग्री प्राप्त करता है। वहीं कार्य योजना विकसित करने के उद्देश्य से किए गए एकीकरण में, प्रतिभागियों के बीच विकसित साझा समझ के कारण कार्यान्वयन चरण सामान्यतः त्वरित और अत्यन्त प्रभावी होता है।

4.2.6. अधिगम एवं विकास (Learning and Development)

प्रबन्धन साइबरनेटिक्स पर वर्तमान में काफी लेख मौजूद हैं। साइबरनेटिक्स सोसाइटी सीखने का समर्थन करती है और इसकी पत्रिका और अभिलेखागार में साइबरनेटिक्स से सम्बन्धित सामग्री होती है। अमेरिकन सोसायटी फॉर साइबरनेटिक्स ने सुझाई गई पाठ्य सामग्री प्रदान की है।

बीयर ने इस सम्बन्ध में अनेक शोधपत्र और छह प्रमुख पुस्तकें लिखीं हैं। बीयर के आग्रह से बैरी क्लेम्सन ने भी संगठनात्मक और प्रबन्धन साइबरनेटिक्स पर एक परिचय लिखा है। वहीं पैट्रिक होवरस्टैड ने जीवन के यथार्थ उदाहरणों के आधार पर एक परिचय लिखा। रेयेस और जे.डी. एस्पेजो ने एक प्रणालीगत सिद्धान्त के दृष्टिकोण से व्यवहार्य प्रणाली मॉडल का उपयोग करते हुए जटिलता के प्रबन्धन का वर्णन किया है।

स्टीवर्ट ने साइबरनेटिक त्रि–आयामी ऑन्कोलॉजी और प्रणाली निर्माण पर आधारित कार्य और कार्यशील संगठनों के त्रिगुणात्मक विश्लेषण का वर्णन किया है। फ्रेडमंड मलिक ने शासन एवं वित्तीय नियंत्रण तथा व्यावसायिक रणनीति में प्रबन्धन साइबरनेटिक्स को लागू करने वाली पुस्तकों की एक विस्तृत श्रृंखला की रचना की है। एंगस जेनकिंसन ने संगठन संरचना के साइबरनेटिक्स को वर्णित करते हुए साइबरनेटिक्स को पहचान, कायापलट के गोएथियन विज्ञान, सेवा–प्रधान तर्क और त्रिस्तरीय सिद्धान्त में विषमता से जोड़ा है।

4.2.7. संगठनात्मक साइबरनेटिक्स (Organisational Cybernetics)

संगठनात्मक साइबरनेटिक्स को कभी–कभी प्रबन्धन साइबरनेटिक्स से पृथक कर दिया जाता है। परन्तु दोनों ही कई समान शब्दों का प्रयोग करते हैं, साथ ही कुछ समान स्रोतों से जानकारी भी प्राप्त करते हैं। हाँलाकि कहा जाता है कि वे प्रणालीगत चिंतन के थोड़े अलग दर्शन के आधार पर उनकी व्याख्या करते हैं। संगठनात्मक साइबरनेटिक्स बीयर और साइबरनेटिक्स पर आधारित सिस्टम सिद्धान्त के नजरिए से संगठनात्मक डिजाइन तथा संगठनों के विनियमन और स्व–विनियमन का अध्ययन करता है। परन्तु सामाजिक आयाम को भी ध्यान में रखता है।

उच्च साइबरनेटिक आदेशों की पीढ़ी के लिए स्वायत्त एजेंसी सिद्धान्त (एएटी) के सिद्धान्तों का विस्तार करते हुए, सांस्कृतिक एजेंसी सिद्धान्त (सीएटी) तैयार किया गया है। अर्थशास्त्र, लोक प्रशासन और राजनीति विज्ञान के शोधकर्ता विभिन्न स्तरों (राज्यकीय, राष्ट्रीय, यूरोपीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय) तथा विभिन्न क्षेत्रों (निजी, सहकारी और सार्वजनिक) में सामाजिक संचालन के तंत्र, संगठन एवं संस्थाओं में परिवर्तन पर ध्यान केंद्रित करते हैं। ऑटोपोइसिस के माध्यम से साइबरनेटिक्स और सामान्य सिस्टम सिद्धान्त से भी एक व्यापक सम्बन्धित क्षेत्र विकसित हो रहा है। हम्बर्टो मटुराना और फ्रांसिस्को वरेला के जैविक सिद्धान्त ने निकोलस लुहमैन तथा जटिलता एवं प्रणाली सिद्धान्त के विद्वानों द्वारा किये गए शोध को भी प्रभावित किया है।

4.3. संगठन और विधियाँ (ORGANISATION AND METHODS)

4.3.1. संगठन एवं विधि या प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Organisation and Method)

वर्तमान समय में' संगठन एवं प्रणाली अथवा ओ. एण्ड. एम. का प्रशासन में वही महत्त्व है जो वैदिक साहित्य में 'ओऽम्' का है। प्रशासकीय व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए संगठन एवं प्रणाली विभाग' की स्थापना की जाती है। संगठन एवं प्रणाली शब्द और अर्थ की तरह एक–दूसरे से जुड़े हुए है। इन दोनों का सम्मिलित उद्देश्य प्रशासनिक कार्य कुशलता एवं दक्षता को बढ़ाना है। 'संगठन एवं प्रणाली संभाग' प्रशासनिक ढाँचे की समीक्षा एवं कार्य का सरलीकरण (Simplification) करता है । ओ. एण्ड. एम. इकाई विभिन्न विभागों की कार्य प्रणालियों का निरीक्षण व मूल्यांकन करती है तथा समस्याओं के निराकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

संगठन व प्रणाली अथवा ओ. एण्ड. एम. का प्रयोग दो अर्थों में होता है– व्यापक तथा संकुचित अर्थ में। संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापक अर्थ में इसका तात्पर्य 'संगठन' एवं 'प्रबन्ध' (Organization & Management) से है। इसमें प्रबन्ध की सभी प्रक्रियाएँ जैसे नियोजन, संगठन, संचालन, निदेशन, समन्वय आदि सभी सम्मिलित हैं। परन्तु संकुचित अर्थ में ओ. एण्ड एम. का अभिप्राय 'संगठन' एवं 'पद्धति' (Organisation & Method) से है। संकुचित अर्थ में यह केवल लोक निकायों के संगठन व उनकी कार्यप्रणालियों से सम्बन्धित है। ब्रिटेन व उसकी परम्परा का अनुसरण करने वाले भारत तथा अन्य राष्ट्रमण्डलीय देशों में 'संगठन व प्रणाली' का इसी संकुचित अर्थ में प्रयोग किया जाता है।

मिलवर्ड के अनुसार" ओ एण्ड. एम. के साधारण कार्य हैं–समीक्षाधीन संगठन के ढाँचे का परीक्षण करना और प्रशासनिक तथा लिपिक कार्यविधियों व रीतियों का, कार्यालय के यन्त्रीकरण तथा सज्जा का, कार्यालय की रूपरेखा तथा कार्य करने की दशाओं का अध्ययन करना।"

एल. डी. ह्वाइट ने "संगठन तथा प्रणाली की परिभाषा देते हुए कहा है– "संगठन तथा प्रणाली के कार्य की परिभाषा मोटे तौर पर की जा सकती है– कार्य–संचालन के सभी पहलुओं में सुधार, विशेषकर प्रक्रियाओं तथा सम्बन्धों में।"

ब्रिटिश प्रवर समिति, 1947 के अनुसार, "लोक सेवा में ओ एण्ड. एम. का उद्देश्य सरकारी शासन तन्त्र में अधिकतम कुशलता लाना और संगठन की वैज्ञानिक प्रणालियों के कुशल उपयोग द्वारा लागत तथा श्रम में कमी करना है।"

4.3.2. ओ तथा एम की प्रकृति (Nature of O and M)

ओ तथा एम की प्रकृत्ति को निम्नलिखित ढंग से समझा जा सकता है–

1) **ओ तथा एम एक सेवा कार्य है**–एक रिपोर्ट के अनुसार, ओ तथा एम एक सेवा कार्य है। सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों तथा कार्यालयों की कार्यक्षमता में यह इकाई वृद्धि हेतु सुझाव देकर उनकी मदद करती है। ओ तथा एम के सुझाव थोपे नहीं जा सकते। ओ तथा एम कार्यों को सरकारी मंत्रालयों और कार्यालयों के लिए एक सेवा के रूप में समझा जाना चाहिए न कि ऊपर से थोपे जाने के रूप में।

2) **ओ तथा एम एक परामर्श कार्य है**–ओ तथा एम की प्रकृति का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व यह है कि उसका कार्य परामर्श (सलाह) देना मात्र है, नीति निर्धारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। अतः उन्हें स्टाफ की भूमिका निभानी होगी, न कि सूत्र एजेंसी की। उसे केवल परामर्श देना चाहिए। यदि कोई विशेष विभाग यथोचित कारण के बिना इन इकाइयों से परामर्श नहीं करता है, तो सुझाव रूप में उच्च स्तर पर किसी कार्यवाही की व्यवस्था होनी चाहिए, किसी भी मामले में, यह किसी मुद्दे को मजबूर नहीं करता है या किसी विभाग पर उसकी इच्छा के विरुद्ध सुधार थोपता नहीं है।

3) **ओ तथा एम सकारात्मक कार्य है**–ओ तथा एम इकाइयों का कार्य सकारात्मक है, न कि नकारात्मक (Negative)। इनकी प्रकृति कार्य सुधार अध्ययन के रूप में माना जाना चाहिए न कि दोष खोजने वाले मिशन के रूप में। ओ तथा एम अधिकारी को एक मित्र और सहयोगी होना चाहिए जो समस्याओं को सुलझाने में मदद करने के लिए हमेशा तैयार रहे न कि आलोचक या दोष खोजने वाला। इसका कार्य आलोचना करना नहीं है। इस प्रकार साधारण अर्थों में ओ तथा एम निरीक्षण तथा लेखा परीक्षण से भिन्न है।

   डॉ. अवस्थी एवं माहेश्वरी के शब्दों में, "ओ तथा एम सम्बन्धी अधिकारी को एक दोषदृष्टा या आलोचक की स्थिति से बचना चाहिए अपितु उसका कार्य तो एक ऐसे मित्र तथा सहायक का होना चाहिए जो अभिकरणों को उनकी समस्याएँ हल करने में सहायता देने के लिए तत्पर तथा तैयार रहता है।"

4) **ओ तथा एम प्रशासन में सुधार के विभिन्न प्रयत्नों का अंग मात्र है**– ओ तथा एम सर्वांगीण प्रबन्धन का विकल्प नहीं है। यह नहीं समझना चाहिए कि ओ तथा एम संगठन सम्बन्धी सभी बीमारियों की रामबाण औषधि है केवल ओ तथा एम इकाई अकेले प्रशासन में सुधार लाने के लिए जिम्मेदार नहीं है। वस्तुतः ओ तथा एम इकाई

तो कार्य सुधार हेतु किए गए सरकार के सम्पूर्ण प्रयत्नों का केवल एक अंश मात्र है। प्रोफेसर एप्पलबी ने सही कहा, "दक्षता विशेषज्ञों का सरकार में महत्त्वपूर्ण स्थान है, लेकिन कोई भी दक्षता इंजीनियर कभी भी सरकार की मुख्य समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। अन्य विशेषज्ञ सरकार के सामान्य सुधार में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, लेकिन वे विशेषज्ञ समाज वैज्ञानिक और दक्षता इंजीनियर होंगे। सरकार की मुख्य समस्याओं को विद्वानों, विशेषज्ञों, प्रशासकों, राजनेताओं और जनता के संयुक्त प्रयासों से सापेक्षिक और क्रमिक रूप से हल किया जाना चाहिए।"

5) **अत्यधिक रहस्यमय और तकनीकी नहीं**–ओ तथा एम सुझाव को अत्यधिक रहस्यमय और तकनीकी बनाने की भूल नहीं करनी चाहिए। उसे कार्यों को करने के बेहतर तरीकों को समझने के लिए एक सामान्य मानवीय प्रयास के रूप में लिया जाना चाहिए। । उनका कार्य इतना अधिक तकनीकी न बन जाये कि केवल विशेषज्ञ ही उसे समझ सकें और वह आम आदमी की समझ से परे बहुत रहस्यमय हो जाए।

4.3.3. संगठन एवं विधि के उद्देश्य/कार्य (Aims/Functions of Organisation and Methods)

ओ तथा एम कार्यालय का उद्देश्य प्रबन्धन में सुधार लाने के लिए सम्बन्धित अधिकारियों की सहायता करना है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार है–

1) **शोध तथा विकास (Research and Development)**–संगठन व प्रणाली संभाग निषेधात्मक तथा सकारात्मक दो प्रकार की व्यवस्थाओं के साथ कार्य करता है। निषेधात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत यह संभाग प्रशासनिक दोषों की छानबीन करता है। सकारात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत यह उन दोषों को दूर करने की आवश्यकता पर जोर देता है। 'ओ तथा एम' कार्यालय उन कार्यविधियों के सुधार हेतु शोध करता है, जो पुरानी और अनुपयोगी हो गयी हैं तथा उन शोधों के आधार पर नयी तकनीकें एवं विचार प्रस्तुत करता है।

   ऐसे विचार संगठन, स्टाफिंग, बजट, लेखांकन, प्रत्यायोजन, समन्वय, पर्यवेक्षण आदि से सम्बन्धित हैं–कार्य प्रबन्धन, कार्य सरलीकरण, सांख्यिकीय विधि और गुणवत्ता नियंत्रण जैसी तकनीकों का प्रयोग, तथा कार्यालय मशीनों का प्रयोग करके कार्यालय प्रबन्धन में सुधार, सुदृढ़ अभिलेख प्रबन्धन, बेहतर लेआउट, मानकों की अच्छी प्रणाली, मापन और लागत नियंत्रण।

2) **प्रशिक्षण (Training)**–यह ओ तथा एम कर्मियों को प्रशिक्षण प्रदान करता है। इससे प्रशासन में ओ तथा एम इकाइयों के कर्मचारी वर्ग के लिए योग्य व्यक्ति तैयार होता है। इसके अलावा, प्रशिक्षण ओ तथा एम कार्यक्रमों में रुचि को बढ़ावा देने में मदद करता है। यह प्रशासनिक संगठन को मजबूत बनाता है।

3) **समन्वय (Coordination)**–ओवरलैपिंग को रोकने, संघर्षों से बचने और विरोधाभासों को दूर करने के लिए, ओ तथा एम सेंट्रल एक समन्वयक की भूमिका निभाता है। यह कार्यक्रम में रुचि को उत्तेजित करता है और सम्बन्धित अधिकारियों को उनके ओ तथा एम प्रयासों की योजना बनाने और उन्हें लागू करने में सहायता करता है।

4) **सूचना (Information)**–यह सरकार के सभी स्तरों पर किए जाने वाले संचालन और प्रबन्धन कार्यों के बारे में जानकारी के समाशोधन गृह के रूप में कार्य करता है। यह प्रासंगिक जानकारी एकत्र करके एक पुस्तकालय बनाता है और उन लोगों को जानकारी उपलब्ध कराता है जिन्हें इसकी जरूरत होती है।

5) **ई. प्रकाशन (e-Publication)**–इसका कार्य ओ और एम के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों से सम्बन्धित मार्गदर्शिकाएँ, मैनुअल, शोध सामग्री, पुस्तिकाएँ, बुलेटिन, पत्रिकाएँ और साहित्य प्रकाशित करना है।

6) **मितव्ययिता का सुझाव (Suggestions for Minimum Expenditure)**–यह संभाग संगठन में कार्यों के कुशल एवं दक्ष सम्पादन हेतु ऐसी विधियों का सुझाव देता है जिससे फिजूलखर्ची पर नियन्त्रण स्थापित होता है तथा मितव्ययिता बनी रहती है ।

7) **समय व श्रम की बचत (Saving of Time and Labour)**–यह संभाग धन की बचत से सम्बन्धित सुझाव के साथ–साथ ऐसी कार्यप्रणालियों को भी निर्दिष्ट करता है जिनका अनुकरण करके निश्चित रूप से समय व श्रम की भी बचत होती है ।

4.3.4. संगठन व प्रणाली की तकनीकें (Techniques of O&M)

ओ. एण्ड एम. की कार्यकुशलता अथवा तकनीके निम्न प्रकार से हैं–

1) **सर्वेक्षण (Survey)**–सर्वेक्षण सबसे महत्त्वपूर्ण तकनीक है जिसके द्वारा ओ तथा एम विश्लेषक संगठन, प्रक्रियाओं और विधियों में सुधार के लिए अपनी बुनियादी जिम्मेदारियों का निर्वहन करता है। सर्वेक्षण में सर्वप्रथम संगठन की वर्तमान स्थिति से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया जाता है। इसके बाद समस्याओं के कारणों व समाधानों का पता लगाया जाता है। प्रबन्धन सर्वेक्षण विभिन्न प्रकार के होते हैं– टोही सर्वेक्षण अथवा प्रारम्भिक सर्वेक्षण, समग्र सर्वेक्षण, कार्यात्मक सर्वेक्षण एवं कार्यविधि सर्वेक्षण हेतु निरीक्षण, साक्षात्कार एवं प्रश्नावली आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

2) **निरीक्षण (Observation)**–प्रबन्धन निरीक्षण ओ तथा एम इकाई का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। विश्लेषण विशेषज्ञ विभागीय अधिकारियों के कार्यालयों का निरीक्षण करते हैं कर्मचारियों के कार्यों की गुणवत्ता सुधारने के उपाय बताते हैं। ओ तथा एम अधिकारी इस तकनीक का उपयोग स्टाफिंग फ़ंक्शन के रूप में करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह ऑपरेटिंग हेड्स को यह पता लगाने में मदद करता है कि उन्होंने कहाँ गलती की है और वे अपने पिछले प्रदर्शन में किस तरह से सुधार कर सकते हैं। भारत सरकार के ओ तथा एम प्रभाग द्वारा दो प्रकार के निरीक्षण किए जाते हैं– आंतरिक और बाह्य। आंतरिक निरीक्षण विभाग में ही किए जाते हैं जबकि बाह्य निरीक्षण उप निदेशक, ओ तथा एम प्रभाग द्वारा किए जाते हैं।

3) **प्रपत्र नियन्त्रण (Form Control)**–वर्तमान समय में शासन संचालन हेतु प्रपत्रों की आवश्यकता होती है । इन प्रपत्रों को नियंत्रित करके, ओ और एम व्यक्ति आंतरिक संचार को बेहतर बनाने और प्रक्रियाओं को सरल बनाने में प्रबन्धन की मदद कर सकते हैं।

ओ. तथा एम. इन प्रपत्रों में सुधार लाने के लिए आवश्यक सुझाव देता है। अपने कार्यों को पर्याप्त रूप से पूरा करने के लिए, फॉर्म नियंत्रण कार्यक्रम कं निम्नलिखित व्यापक उद्देश्यों के साथ तैयार किया जाना चाहिए–

i) अनावश्यक फॉर्मों को हटा देना
ii) आवश्यक प्रपत्रों के डिजाइन में सुधार
iii) फॉर्मों के छापे जाने, वितरण और उपयोग की मितव्ययिता
iv) प्रक्रिया और विधि के सम्बन्ध में रूपों का विश्लेषण।

4) **कार्य–माप (Work and Measurement)**–इस विधि के द्वारा कार्यालय में सम्पन्न कार्यों एवं उन कार्यों को करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है । यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति अपना कार्य उचित विधि से एवं निश्चित अवधि में पूर्ण कर रहा है या नहीं । कार्य पद्धति में कार्य मापन सुधार की एक अच्छी तकनीक है। ऐसी तकनीक को यांत्रिक और लिपिक गतिविधियों पर आसानी से लागू किया जा सकता है जो दोहराव वाले प्रकार की होती हैं। इसका उपयोग अन्य प्रशासनिक गतिविधियों के लिए भी लाभदायक रूप से किया जा सकता है। हालाँकि, इस तकनीक को तब लागू किया जा सकता है जब कार्य–भार और मानव–घंटों का पूरा प्रामाणिक तथा विस्तृत रिपोर्ट रखा जाए। इन आंकड़ों की उपलब्धता के साथ, उपयोग की गई मानव–शक्ति की प्रति इकाई कार्य निष्पादन दर की गणना करना आसान है।

कार्य इकाई को मापने की तीन मुख्य पद्धतियाँ प्रचलित हैं–

i) **परीक्षण व त्रुटि विधि (Trail and Error Method)**–यह सबसे पुरानी विधि है। यह परीक्षण करने और गलती करके सीखने की पद्धति है।

ii) **सांख्यिकीय विधि (Statistical Method)**–इस विधि को कार्य या गतिविधि नमूनाकरण भी कहा जाता है क्योंकि मानक सांख्यिकीय विधियों के अनुसार कार्य का एक नमूना लिया जाता है और उसके बाद नमूना कार्य या गतिविधि का अवलोकन किया जाता है। यह विधि कार्यालय कार्य मापन के लिए प्रचलित है।

iii) **समय अध्ययन विधि (Time Study Method)**–यह विधि बड़े उत्पादन कार्यों से जुड़ी दोहरावदार और यांत्रिक गतिविधियों पर लागू होती है। कुल कार्य गतिविधि को स्टॉप–वॉच द्वारा मापा जाता है। बड़ी मात्रा में डेटा एकत्र करने के बाद, गतिविधि के मानव–घंटे का औसत निकाला जाता है। इस प्रकार, उस गतिविधि के माप का मानक ज्ञात होता है।

5) **कार्य सरलीकरण (Work Simplification)**–कार्य सरलीकरण का अर्थ है कार्य की कम थकाने वाली विधियों का विकास करना।

डॉ. अवस्थी व माहेश्वरी के अनुसार, "कार्य सरलीकरण ओ. तथा एम. का हृदय है।" लाल फीताशाही की समस्या का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कार्य सरलीकरण से है। वास्तव में यह विभिन्न तकनीकों का मिश्रण है, जैसे कार्य वितरण चार्ट और प्रक्रिया चार्ट। कार्य वितरण चार्ट लिपिकीय कार्य करने वाली कार्य इकाई में सभी गतिविधियों और उन गतिविधियों में प्रत्येक कर्मचारी के योगदान को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। प्रक्रिया चार्ट कार्य की किसी विशेष प्रक्रिया में क्रमिक चरणों का विस्तृत रिकॉर्ड प्रस्तुत करता है। कार्यों के अनुक्रम को दर्शाने के लिए प्रतीकों का उपयोग किया जाता है।

6) **स्वचालन (Automation)**–स्वचालन के द्वारा विलम्ब सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किया जाता है। इसमें अधिकांश कार्य मशीनों की सहायता से किये जाते हैं। स्वचालन की प्रक्रिया में विद्युत संगणक (Electronic Computers) काम में लाये जाते हैं। लेखांकन, फाइलिंग, सारणीबद्ध करना, छिद्रण, छंटाई, मुद्रांकन और विभिन्न प्रकार के गणना कार्यों में मशीनीकरण का उपयोग किया जा रहा है। नियमित और दोहराव वाले काम का मशीनीकरण पैसे और मानव शक्ति दोनों के दृष्टिकोण से किफायती है। यह गणना और ऐसे अन्य कार्यों में मानवीय त्रुटि की संभावनाओं को भी समाप्त करता है।

7) **फाइलों की व्यवस्था (Filing System)**–इसमें अभिलेखों को व्यवस्थित रूप में किया जाता है। किसी फाइल में किसी विशेष रिकॉर्ड को आसानी से ढूँढ़ने के लिए ऐसी प्रणालियाँ जरूरी होती हैं। व्यवस्थित रूप में होने पर किसी भी अभिलेख या फाइल को खोजने में कठिनाई का अनुभव नहीं होता है। आवश्यकता के समय अभिलेख तुरन्त मिल जाते हैं तथा कार्यवाही में विलम्ब नहीं होता है। दिन–प्रतिदिन के कार्यों की गति और दक्षता फाइलों के प्रबन्धन पर निर्भर करती है। अपर्याप्त फाइलिंग निर्णय लेने तथा संचालन में बाधा डालती है।

4.3.5. ओ. तथा एम. के लाभ (Advantages of O & M)

ओ. तथा एम. से होने वाले प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं–

1) **प्रशासन में सुधार के लिए एक उपकरण**–ओ. तथा एम. प्रशासनिक सुधार का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। ओ तथा एम प्रशासन को बेहतर बनाने के लिए मशीनरी प्रदान करता है, क्योंकि यह अपनी विभिन्न शाखाओं के संगठन और उनमें अपनाई जाने वाली कार्य पद्धतियों की आलोचनात्मक समीक्षा करता है। सबसे अच्छे से संगठित कार्यालयों में भी ऐसी समीक्षा की नितान्त आवश्यकता होती है।

2) **कार्यालय की संरचना एवं उसकी कार्यप्रणाली को अनुकूल बनाना**–चूंकि यह सरकारी संगठन और कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए एक तंत्र का प्रावधान करता है, इसलिए यह सरकारी कार्यालय की संरचना और उसके द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को आधुनिक बनाता है जिससे वह बदलते परिप्रेक्ष्य में कदम मिलाकर चल सके।

3) **अनुभव का भण्डार**–'ओ तथा एम' इकाइयाँ प्रबन्धन अनुसंधान के केंद्रों के रूप में कार्य करती हैं, इसलिए इसके पास पर्याप्त अनुभव संचित होता है। अनुभव का यह कोष संगठन और विधियों से सम्बन्धित समस्याओं के सम्बन्ध में कार्यालयों और संस्थानों के लिए अनुकूल सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त यह नई गतिविधियों को शुरू करने वाले नए संगठन के लिए योजनाएँ तैयार करने के लिए उपयोगी साबित होता है।

4.3.6. ओ. तथा एम. की हानियाँ (Disadvantages of O & M)

ओ. तथा एम से होने वाली हानियाँ निम्नलिखित हैं–

1) **छिन्द्रान्वेषण (दोष खोजक) प्रवृत्ति**–यह तर्क दिया जाता है कि यह व्यवस्था एक तरह की आंतरिक पुलिसिंग में बदल जाती है। यदि ओ तथा एम विशेषज्ञ लाइन एजेंसी के लिए स्टाफ एजेंसियों के रूप में कार्य करने के बजाय आलोचक और दोष खोजने वाले के रूप में व्यवहार करते हैं, तो संगठन का मूल उद्देश्य विफल हो जाता है।

2) **सूत्र अभिकरण के कार्य का सम्पादन**– ओ तथा एम सलाहकार की अपनी भूमिका से बाहर निकल जाते हैं। वे प्रशासकों और प्रबंधकों की शक्तियों का अतिक्रमण करते हैं। वे विभागाध्यक्ष के सहयोगी एवं मित्र बनने के बजाय, वे उसके संभावित प्रतिद्वन्द्वी बन जाते हैं। वे परिचालन प्रमुखों पर एक विचार थोपने की कोशिश करते हैं। वे अपने दृष्टिकोण की औचित्य के बारे में परिचालन प्रमुख को समझाने में विफल रहते हैं।

3) **तकनीकी प्रभाव से बचा नहीं जा सका**–ओ तथा एम के लोग तकनीकी प्रभाव से बच नहीं पाते। उनका काम जितना ज्यादा तकनीकी से जुड़ता जाता है, वे ऑपरेशनल हेड से उतने ही दूर होते जाते हैं। वे प्रबन्धन और पर्यवेक्षण से जितने दूर होते जाते हैं, वास्तविक व्यवहार में उनकी उपयोगिता उतनी ही कम होती जाती है।

4.3.7. भारत में ओ. तथा एम. (O & M in India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत निरन्तर प्रयासरत रहा है कि प्रशासनिक दक्षता किस प्रकार से प्राप्त की जाए तथा शासन को मितव्ययी बनाने के साथ–साथ अन्य सुधार किये जाए। इन्हीं प्रयासों के अन्तर्गत सन् 1949 में सबसे पहले गोपालास्वामी आयंगर ने तथा इसके बाद सन् 1951 में प्रो. ए. डी. गोरवाला ने प्रशासकीय संगठनों में 'ओ. तथा एम संभाग' स्थापित करने की सिफारिश की तत्पश्चात् सन् 1952 में पॉल एच. एप्पलबी ने भी इसी प्रकार की सिफारिश की। इन सभी सिफारिशों के परिणामतः मार्च 1954 में केन्द्रीय सरकार के अधीन 'संगठन व प्रणाली संभाग' की स्थापना की गयी। केबिनेट सचिवालय में स्थित इस संभाग का कार्य प्रधानमन्त्री के अधीन विभिन्न मन्त्रालयों एवं विभागों में आवश्यक प्रशासनिक सुधार करना है।

सन् 1964 में जब गृह मन्त्रालय में प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना हुई तो 'संगठन व प्रणाली संभाग' को इसमें स्थानान्तरित कर दिया गया। वर्तमान भारतीय प्रशासकीय व्यवस्था में 'संगठन व प्रणाली संभाग' पर प्रत्येक विभाग में प्रशासकीय व्यवस्था का दायित्व होता है। विभाग में इस संभाग पर नियन्त्रण रखने का कार्य उपसचिव स्तर का अधिकारी करता है। विभिन्न विभागों में स्थित इस संभाग की इकाइयों पर 'केन्द्रीय संगठन व प्रणाली संभाग' द्वारा नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। संभाग की इन इकाइयों के अधिकारियों के बीच आपसी सम्पर्क बना रहता है। प्रत्येक संभाग का एक निदेशक होता है। निदेशक भारत सरकार के 'संयुक्त सचिव' के स्तर का होता है। उसकी सहायता के लिए उप–संचालक व सहायक संचालक होते हैं। भारत में 'संगठन व प्रणाली संभाग' सफलतापूर्वक कार्यरत है। मंत्रालयों एवं विभागों में अल्पाधिक स्वच्छ वातावरण बनाये रखने के लिए ओ. तथा एम. ने 2005–06 के दौरान एक पुरस्कार योजना की भी शुरूआत की है।

4.4. प्रबन्ध सूचना प्रणाली और स्वोट विश्लेषण (MANAGEMENT INFORMATION SYSTEM AND SWOT ANALYSIS)

4.4.1. प्रबन्ध सूचना प्रणाली (Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली, जिसे सामान्यतः MIS के नाम से जाना जाता है, एक कंप्यूटर आधारित प्रणाली है। MIS वास्तव में संगठन, विशेष रूप से प्रबंधकों को सूचना देने, डेटा को व्यवस्थित और मूल्यांकन करने तथा कुशल तरीके से समय पर जानकारी प्रदान करने में मदद करता है। यह प्रबंधकों को MIS द्वारा प्रदान की गई जानकारी और विश्लेषण के आधार पर निर्णय लेने में भी मदद करता है। संगठन में सूचना प्रणाली की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे प्रबंधकों को आवश्यक सूचना नियमित रूप से एवं तीव्र गति से प्राप्त होती रहे। प्रबंध सूचना प्रणाली संगठन के भीतर प्रबंध के उपयोग के लिए योग्यता (Skill) हस्तान्तरित करने की एक नियोजित संगठित विचारधारा है। हाँलाकि यह स्वयं सूचनाओं का निर्माण नहीं करती है, बल्कि उनको एक निश्चित पैकेज के रूप में प्रदान करती है। इस प्रकार प्रबंध सूचना प्रणाली सूचनाओं को प्रतिवेदन के रूप में तैयार करने की एक व्यवस्थित विचारधारा है ताकि उनका उचित ढंग से उपयोग किया जा सके। प्रशासन में यदि महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को प्राप्त करना है, तो प्रबंध सूचना प्रणाली को प्रभावी बनाया जा सकता है। प्रबन्ध सूचना प्रणाली सम्प्रेषण की वह प्रणाली है जिसमें

सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं, रखी जाती हैं तथा एक संगठन में नियोजन, संचालन तथा नियंत्रण से सम्बद्ध निर्णयन के लिए पुनः उपलब्ध की जाती हैं।यह वह प्रणाली है जो प्रबन्धकों को प्रशासन के सफल संचालन के लिए निर्णय लेने में सहयोग प्रदान करती है। प्रबन्ध सूचना प्रणाली संगठन का मूल उद्देश्य प्रशासन के प्रबन्धकों को उनके विभिन्न स्तरों (शीर्ष, मध्य, निम्न) पर सूचना उपलब्ध कराना है।

जी.बी. डेविस के अनुसार, प्रबन्ध सूचना प्रणाली किसी संगठन के संचालन, प्रबन्ध और निर्णय निर्धारण के कार्यों में सूचना सहयोग प्रदान करने हेतु एकीकृत उपयोक्ता मशीन प्रणाली है। यह प्रणाली कम्प्यूटरीकृत कार्यों, मानवीकृत प्रक्रियाओं, तंत्रों का विश्लेषण, नियोजन, नियंत्रण, निर्णय निर्धारण एवं डेटाबेस का प्रयोग आदि करती है।

जेरोम काण्टर के अनुसार, "प्रबन्ध सूचना प्रणाली वह प्रणाली है जो प्रबन्ध को निर्णय लेने में उनके क्रियान्वयन में तथा नियन्त्रित करने में सहायता करती है।"

4.4.1.1. प्रबन्ध सूचना प्रणाली की प्रकृति (Nature of Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली के द्वारा किसी संगठन को प्रदान किया जाने वाला मूलभूत सहयोग उस प्रबन्ध सूचना प्रणाली की मूल प्रकृति पर निर्भर करता है। एक प्रबन्ध सूचना प्रणाली की प्रकृति की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1) रिपोर्ट उन्मुखी
2) कार्यवाही / कार्योन्मुखी
3) उम्मीद / अपेक्षा उन्मुखी
4) डेटाबेस उन्मुखी
5) अन्तिम–उपयोगकर्ता (End user) उन्मुखी।

4.4.1.2. प्रबन्ध सूचना प्रणाली के तत्व (Elements of Management Information System)

सूचना के साथ प्रबन्ध में आवश्यक डेटा (रॉ इनपुट) एकत्रित करना और इन डेटा को सार्थक जानकारी में प्रमाणित करना शामिल है। प्रबन्ध सूचना प्रणाली के तीन प्रमुख तत्त्व हैं। MIS को स्पष्ट रूप से समझने के लिए, इन तीन प्रमुख तत्त्वों प्रबन्ध, सूचना और प्रणाली को परिभाषित करना बहुत आवश्यक है।

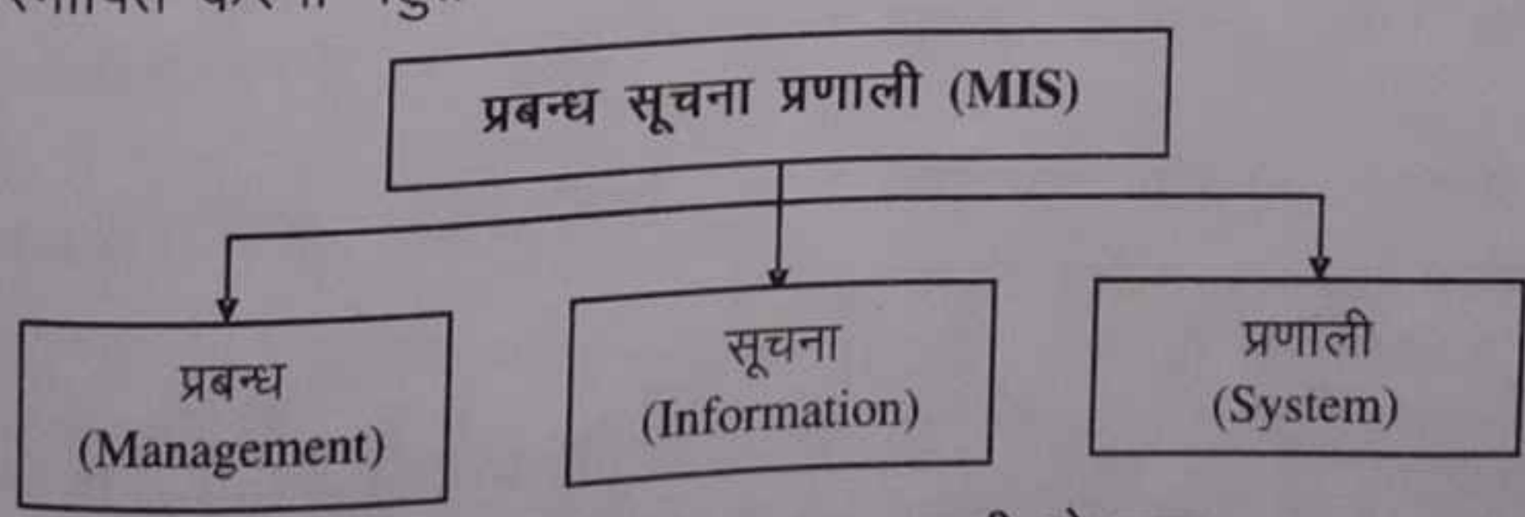

चित्र 4.3– प्रबन्ध सूचना प्रणाली के तत्व
(Figure 4.3: Components of Management Information System)

1) **प्रबन्ध**–यह प्रणाली वस्तुतः प्रबन्ध के सभी स्तरों पर वांछित सूचनाएँ उपलब्ध करती है जिससे कि वे समय पर उपयुक्त निर्णय ले सकें।
2) **सूचना**–इस प्रणाली का दूसरा प्रमुख तत्त्व सूचनाएँ है। प्राविधिक समंक सूचना कहलाते हैं। जिस प्रकार कच्चा माल उत्पादन की विभिन्न प्रविधियों (या चरणों) से

गुजरने के बाद वस्तु या उत्पादन में बदलते है, उसी प्रकार अनेक प्रकार की जानकारी, समाचार, आंकड़े, तथ्य आदि कागजी कार्यवाही की प्रविधियों से गुजरने के बाद 'सूचना' में परिवर्तित हो जाते हैं।

3) **प्रणाली**'–अन्तिम महत्त्वपूर्ण तत्त्व 'प्रणाली' है। प्रणाली के चार अंग होते हैं–
   i) इनपुट,
   ii) प्रविधियन या प्रोसेसिंग,
   iii) आउटपुट और
   iv) फीडबैक या नियन्त्रण।

4.4.1.3. प्रबन्ध सूचना प्रणाली के उद्देश्य/कार्य (Functions of Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली के कार्य निम्नलिखित है–

1) प्रबन्ध सूचना प्रणाली नियमित और गैर नियमित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किये जाने वाले विभिन्न कार्यो के लिए रिपोर्ट तैयार करने का कार्य करती है।
2) प्रबन्ध के कार्य में संलिप्त प्रबंधकों द्वारा पूछे गये (What..... if.....) प्रश्नों के उत्तर देने में सहयोग प्रदान करने का कार्य करती है।
3) निर्णय निर्धारण में सहायता प्रदान करती है।
4) योजना, आयोजन और नियंत्रण के प्रयोजनों के लिए जानकारी प्रदान करने का कार्य करती है।
5) प्रबन्ध सूचना प्रणाली आंतरिक अनुसंधान के उद्देश्य से डेटा एकत्रित करने, संग्रहीत करने तथा एकत्रित आंकड़ों को संसोधित करने और उनसे जानकारी प्राप्त करने का कार्य करती है।
6) आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र सूचना उपलब्ध कराना प्रबन्ध सूचना प्रणाली का कार्य है।
7) प्रबन्ध सूचना प्रणाली के कार्य के अंतर्गत प्रबंधकीय निर्णय लेने में जोखिम और अनिश्चितताओं को कम करना।
8) प्रबंधकीय समस्याओं की पहचान करना और उनके समाधान में सहायता करना आता है।
9) उपलब्ध विश्वसनीय आंकड़ों के साथ परिणामों के क्रियान्वयन में तेजी लाना।
10) संगठन के विभिन्न स्तरों के माध्यम से डेटा के प्रवाह को सुचारू बनाना।

4.4.1.4. प्रबन्ध सूचना प्रणाली की विशेषताएँ (Characteristics of Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1) **प्रबन्ध उन्मुख**–प्रबन्ध–उन्मुख का तात्पर्य है कि प्रणाली का विकास आवश्यकताओं को निर्धारित करने और प्रशासनिक लक्ष्यों को समायोजित करके शुरू करना चाहिए। किसी भी संगठन में यह प्रणाली ऊपर (शीर्ष प्रबन्ध) से नीचे की तरफ कार्य करती है। यह प्रबंधन के सभी स्तरों पर प्रासंगिक सूचनाएं देती है।
2) **एकीकरण**–एकीकरण शब्द का तात्पर्य संगठन के मूल उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु, उस संगठन के विभिन्न क्षेत्रों से आवश्यक सूचनाओं को एकत्रित कर संगठन के उपयोग के लिए सार्थक प्रबन्ध सूचना का उत्पादन करने से है।

3) **दीर्घकालिक योजना**–प्रबन्ध सूचना प्रणाली को स्थापित करने का कार्य एक जटिल प्रक्रिया है। किसी संगठन में इसे सफलतापूर्वक लागू करने के लिए कम से कम 2 से 4 वर्षों का समय लग जाता है।

4) **लचीला एवं आसान प्रयोग**–एम.आई.एस. के स्थापित होने के बाद इसे सरलतापूर्वक संगठन के किसी भी तरह के निर्णय निर्धारण में प्रयुक्त किया जा सकता है। MIS को इस तरह से डिजाइन किया जाना चाहिए कि भविष्य में उचित बदलाव की अनुमति मिल सके, अगर MIS किसी भी संशोधन की अनुमति नहीं देता है, तो यह बहुत जल्द अप्रचलित हो जाएगा।

5) **कम्प्यूटरीकृत**–वर्तमान समय में, MIS की सभी गतिविधियाँ जैसे डेटा संग्रह, डेटा प्रोसेसिंग और डेटा पुनर्प्राप्ति इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से पूरी की जाती हैं। कंप्यूटर का उपयोग डेटा प्रोसेसिंग में सटीकता और स्थिरता सुनिश्चित करता है और सूचना के प्रसार को गति देता है।

4.4.1.5. प्रबन्ध सूचना प्रणाली के प्रकार (Types of Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली के मुख्यतः पाँच प्रकार होते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1) **लेखा प्रबन्ध सूचना प्रणाली**–लेखा प्रबन्ध सूचना प्रणाली विशेषकर लेखा से सम्बन्धित विभिन्न कार्यों में सहायता करती है। यह लेखा प्रबंधकों के लिए विभिन्न प्रकार की लेखा रिपोर्ट तैयार करती है और उनका लेखा प्रबंधकों के सभी स्तरों पर साझा करना सुनिश्चित करती है।

2) **वित्तीय प्रबन्ध सूचना प्रणाली**–किसी भी संगठन के संचालन में वित्त को नियंत्रित करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण और आवश्यक कार्य है। वित्तीय प्रबन्ध सूचना प्रणाली के द्वारा इस कार्य को सम्पादित किया जाता है। इसमें संगठन का मुख्य वित्तीय अधिकारी अपने संगठन के वित्त की पहले एवं वर्तमान की विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण कर भविष्य की परियोजनाओं के लिए वित्तीय आवश्यकता, सदुपयोग एवं नियंत्रण को सुनिश्चित करता है।

3) **विनिर्माण प्रबन्ध सूचना**–प्रणाली प्रौद्योगिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तनों के कारण निर्माण कार्य लगातार प्रभावित हुए है। विनिर्माण प्रबन्ध सूचना प्रणाली इन सभी परिवर्तनों को ध्यान केन्द्रित करते हुए संगठन पर पर्याप्त नियंत्रण सुनिश्चित करती है।

4) **विपणन प्रबन्ध सूचना प्रणाली**–विपणन प्रबन्ध सूचना प्रणाली उत्पाद के विकास, मूल्य निर्धारण, वितरण, बिक्री पूर्वानुमान, निर्णय निर्धारण आदि क्षेत्रों में प्रबंधकीय गतिविधियों को सहयोग देती है।

5) **मानव संसाधन प्रबन्ध सूचना प्रणाली**–यह प्रणाली श्रमिकों, प्रबंधकों तथा संगठन द्वारा नियुक्त अन्य व्यक्तियों से सम्बन्धित गतिविधियों से जुड़ी है। इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से सम्पादित किये जाने वाले कार्यों में मुख्यतः कार्य–बल विश्लेषण, नियोजन, भर्ती, प्रशिक्षण तथा कार्य निर्धारण सम्मिलित हैं।

4.4.1.6. प्रबन्ध सूचना प्रणाली के विकास के चरण (Stage of Development of Management Information System)

किसी भी प्रणाली के विकास में मुख्यतः चार चरण आवश्यक होते है। प्रबन्ध सूचना प्रणाली के विकास के प्रमुख चरण इस प्रकार हैं–

1) **प्रथम चरण–प्रणाली नियोजन**–किसी प्रणाली का प्रथम चरण उसके नियोजन से सम्बन्धित होता है। जिसके अन्तर्गत प्रारम्भिक समस्याओं का अन्वेषण किया जाता है।
2) **द्वितीय चरण–आधारभूत आवश्यकता**–इसमें प्रणाली की मूलभूत जरूरतों की पहचान की जाती है। जैसे– आवश्यक हार्डवेयर और सहायक साफ्टवेयर ।
3) **तृतीय चरण–प्रणाली का विकास**–इसके अन्तर्गत प्रणाली की रूपरेखा तैयार करके उसकी जाँच की जाती है।
4) **चतुर्थ चरण–प्रणाली अनुप्रयोग**–इस चरण में योजना के अनुसार तैयार नई प्रणाली का क्रियान्वयन उसके प्रत्याशित प्रयोग के लिए किया जाता है। इस चरण में नवनिर्मित प्रणाली का निरूपण एवं अनुरक्षण भी किया जाता है।

4.4.1.7. प्रबन्ध सूचना प्रणाली का नियोजन (Planning of Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली एक ऐसी व्यवस्थित प्रणाली है जिसमें विभिन्न स्तरों पर कार्यों को सम्पादित किया जाता है। इसमें नियोजन से सम्बन्धित प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं–

1) प्रणाली आवश्यकताओं की पहचान।
2) प्रबन्ध सूचना प्रणाली के प्रारुप निर्धारण।
3) आवश्यक सामाग्री का संग्रहण।
4) प्रणाली की स्थापना।
5) संचालन और निरीक्षण करना।

4.4.1.8. प्रबन्ध सूचना प्रणाली के लाभ/महत्त्व (Benefits of Management Information System)

प्रबन्ध सूचना प्रणाली एक संगठन की व्यवसायिक, परिचालन एवं प्रबंधकीय गतिशीलता को बढ़ाने के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला एकीकृत समाधान है। एमआईएस के अनेक महत्त्व हैं जिनमें से कुछ महत्त्व यहाँ दिए गए है–

1) यह प्रतिस्पर्धा वृद्धि में सहायक होता है एम. आई. एस. के माध्यम से प्रदत्त विभिन्न सहयोगों के द्वारा किसी उद्यम (Enterprise) एवं उसके उद्देश्यों को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। जिससे न केवल संगटन की क्रियाशीलता बढ़ती है बल्कि कार्यों में परस्पर प्रतिस्पर्धा की भावना में वृद्धि होती है।
2) एमआईएस प्रबन्ध की कुशल और प्रभावी योजना और नियंत्रण कार्यों के लिए उपयोगी है।
3) बेहतरीन आपूर्ति श्रृंखला प्रबन्ध प्रबन्ध सूचना प्रणाली के सहयोग से प्रदान की गयी बेहतर रिपोर्टिंग मूलतः उत्पाद के विनिर्माण से लेकर वितरण एवं आपूर्ति के मध्य की श्रृंखला के प्रबन्ध में सुधार सुनिश्चित करती है।
4) एमआईएस विभिन्न विभागों की गतिविधियों को सूचना नेटवर्क के माध्यम से आपस में जोड़कर समन्वय करने में मदद करता है।
5) त्वरित परिणाम एम. आई. एस. प्रणाली के सहयोग से विभिन्न उद्यमों (Enterprises) में प्रतिस्पर्धा के वातावरण में तत्काल उत्कृष्ट निर्णय लेने की सामर्थ्य प्राप्त होती है, जो उद्यम (Enterprise) को त्वरित परिणाम प्रदान करती है।
6) एमआईएस विभिन्न संसाधनों जैसे मानव, सामग्री, मशीनरी आदि के प्रदर्शन के बारे में जानकारी देने वाली रिपोर्ट प्रदान करता है।

7) एमआईएस निष्क्रिय समय, बर्बादी, हानि, अधिशेष क्षमता आदि के बारे में जानकारी देकर लागत को नियंत्रित करने में मदद करता है।
8) एमआईएस मानकों से वास्तविक प्रदर्शन के विचलन या कमियों के बारे में भी जानकारी देता है। प्रबन्ध इस बारे में समय पर कार्रवाई कर सकता है।
9) मजबूत एमआईएस प्रणाली से विभिन्न विभागों में गलतफहमी की संभावना कम हो जाती है।

4.4.2. स्वोट विश्लेषण (SWOT Analysis)

स्वोट विश्लेषण एक प्रकल्प या एक व्यावसायिक उद्यम में शामिल शक्तियों, कमजोरियों, अवसरों एवं खतरों का एक ढाँचा या इस्तेमाल की गई युक्ति है जिसका उपयोग किसी संस्था या कम्पनी की प्रतिस्पर्धी स्थिति का मूल्यांकन करने एवं रणनीतिक योजना विकसित करने के लिए किया जाता है। यह आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के साथ–साथ वर्तमान एवं भविष्य की सम्भावनाओं का आंकलन करता है। 'स्वोट' विश्लेषण किसी भी कम्पनी या संस्था का किया जा सकता है साथ ही व्यक्ति स्वयं का भी स्वोट विश्लेषण कर सकता है। इस प्रकार किसी बिजनेस, स्टार्टअप, व्यापार, उद्योग, निजी/व्यक्तिगत जीवन आदि में अपनी क्षमताओं का आंकलन करने के लिए 'स्वोट' विश्लेषण किया जाता है। यह एक लाभकारी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति या संस्था अपने गुणों, अवगुणों की पहचान सरलता से कर सकते हैं। इसका उपयोग बेहतर परिणाम प्राप्ति के लिए प्रत्येक क्षेत्र में करना चाहिए। 'स्वोट' (SWOT) एक संक्षिप्त शब्द है जिसके प्रत्येक अक्षर का अपना अर्थ है।

स्वोट शक्ति, कमजोरियों, अवसरों तथा समस्याओं से मिलकर बना है।

S – शक्तियाँ/ताकत (Strengths)

W – कमजोरियाँ/अवगुण (Weaknesses)

O – अवसर/मौका (Opportunities)

T – संकट/समस्याएँ/खतरा (Threats)

'स्वोट' विश्लेषण के चार आवश्यक तत्त्वों पर चर्चा की गई है–

1) **शक्तियाँ (Strengths)**–स्वोट विश्लेषण में शक्तियों का तात्पर्य किसी कम्पनी या व्यक्ति के गुणों से है। स्वोट विश्लेषण में सबसे पहले यह जाना जाता है कि कंपनी/संस्था में ऐसी क्या विशेषताएँ हैं, जिससे वह सफल हो सकता है या किसी व्यक्ति में कौन–कौन से गुण हैं जिससे वह आगे बढ़ सकता है, सर्वप्रथम इसके बारे में जानना आवश्यक है। एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण के इस तत्व में, व्यक्ति या संस्था अपने कौशल एवं उपलब्धियों की पहचान करते हैं जो उसके द्वारा कुछ समय में हासिल की गई हैं।

इसके अतिरिक्त, वह अपने व्यक्तित्व के अन्य गुणों जैसे गणितीय क्षमता, संचार कौशल, महत्त्वपूर्ण सोच, नेतृत्व एवं समय प्रबन्धन कौशल पर ध्यान केंद्रित करें साथ ही अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक लक्ष्यों की सूची तैयार करें जिन्हें एक निश्चित समय सीमा के भीतर प्राप्त किया जा सकता हो। अपनी शक्तियों को पहचानने के लिए अपने माता–पिता, शिक्षकों या अनुभवी करियर काउंसलर की सहायता भी ले सकते हैं। शक्तियों के उदाहरण में एक सकारात्मक दृष्टिकोण, ध्यान केन्द्रण, नवीन तथ्यों को सीखने की क्षमता, समय प्रबन्धन, भावुक होना आदि शामिल हैं।

2) **कमजोरियां (Weaknesses)**–यह तो सर्वविदित है कि यदि किसी व्यक्ति, संस्था या कम्पनी में कोई गुण या शक्तियाँ हैं तो उसमे कमजोरियां भी अवश्य होंगी। कमजोरियां होना गलत नहीं है परन्तु इसकी खबर ना रखना बिल्कुल गलत है। अपनी कमजोरियों को जानना भी आवश्यक है। एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण का यह तत्व उन डोमेन या पक्षों की पहचान करता है जहां व्यक्ति को उन क्षेत्रों को अपग्रेड करने या नोट करने की आवश्यकता होती है जहां सुधार की गुंजाइश हो सकती है। कमजोरियों का पता लगाना तथा उसपर काम करना एक बेहतर रणनीति है जिससे आप अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं। खराब समय, प्रबन्धन, टालमटोल, गैर जिम्मेदाराना रवैया, लक्ष्यों में स्पष्टता की कमी आदि इसके उदाहरण हो सकते हैं।

3) **अवसर (Opportunities)**–व्यक्ति अपनी ताकत एवं कमजोरियों की पहचान करने के बाद, उन क्षेत्रों की पहचान कर सकते हैं जहां वह अपने कौशल का उपयोग करके उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकते हैं। अवसर स्वोट विश्लेषण का एक अन्य तत्व है साथ ही यह एक आउटपुट का तरीका भी है। अवसर को हम इस प्रकार देख सकते हैं कि किसी व्यक्ति या कम्पनी में जो गुण है उसके लिए कितने मौके उपस्थित हैं। हजारों अवसरों में से, वह उस अवसर का चुनाव करें जो उसके लिए सबसे अच्छा हो एवं उसे भीड़ से ऊपर रखे तथा उसके करियर के लक्ष्यों को प्राप्त करने में उसकी सहायता करे। अवसरों के कुछ उदाहरण के लिए एक अच्छे विश्वविद्यालय, छात्रवृत्ति, कैंपस प्लेसमेंट, अच्छे संरक्षक आदि को लक्षित कर सकते हैं।

4) **खतरा (Threats)**–स्वोट विश्लेषण में खतरे का तात्पर्य व्यक्ति, संस्था या कम्पनी के कॉम्पटीटर से है। खतरे ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनका सामना व्यक्ति, संस्था या कम्पनी को अपनी करियर यात्रा के दौरान करना पड़ सकता है, जैसे प्रवेश परीक्षा देना या सीमित सीटों वाले विश्वविद्यालय में प्रवेश लेना आदि। खतरों के कुछ उदाहरण स्वास्थ्य समस्याएँ, मंदी, गैर–सहायक परिवार, आर्थिक तंगी, नकारात्मक वातावरण आदि हो सकते हैं। एसडब्ल्यूओटी विश्लेषण का यह तत्व, अगर ठीक से निपटाया जाए तो यह आपको मजबूत बना देगा और आपको अपने करियर के लक्ष्यों को प्रभावी ढंग से और कुशलता से हासिल करने में मदद करेगा।

4.4.2.1. स्वोट विश्लेषण का इतिहास (History of SWOT Analysis)

ऐसा माना जाता है कि स्वोट विश्लेषण की शुरूआत सन् 1960 से हुई थी। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग अमेरिका के एक व्यवसायी एवं प्रबंधक सलाहकार अल्बर्ट हम्फ्री (Albert Humphrey) द्वारा किया गया था। यद्यपि स्वोट विश्लेषण का उपयोग संस्थाओं, कंपनियों एवं व्यवसायों में अपनी क्षमता, कमजोरियों, अवसरों व कठिनाइयों का पता लगाने के लिए किया जाता है। परन्तु यह व्यक्तियों पर भी लागू होता है, क्योंकि जिस प्रकार प्रत्येक संस्था, उद्यम या कंपनी में शक्तियों के साथ–साथ कमजोरियां, संकट एवं अवसर होते हैं ठीक उसी प्रकार मानव जीवन में भी यह क्रिया होती है। यदि हम इन चारों पहलुओं का पता लगा लेते हैं तब हमारा काम सरल हो जाता है, और सफल होना भी सुनिश्चित हो जाता है।

4.4.2.2. स्वोट विश्लेषण के कारक (Factors of SWOT Analysis)

स्वोट विश्लेषण का उद्देश्य ऐसे आंतरिक व बाह्य कारकों की पहचान करना होता है जो लक्ष्य प्राप्ति के दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। स्वोट विश्लेषण के लिए दो प्रमुख कारक होते हैं–

1) आन्तरिक कारक
2) बाह्य कारक

स्वोट के चार पक्ष होते हैं। इन चारों पक्षों में से दो पक्ष शक्तियाँ एवं कमजोरियाँ आन्तरिक कारक हैं और अवसर एवं चुनौतियाँ बाह्य कारक हैं, जबकि प्रशासनिक प्रबन्धन एवं नियोजन की रणनीतियों में स्वोट विश्लेषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

	लाभदायक (Helpful) उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए (To achieving the objective)	हानिकारक (Harmful) उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए (To achieving the objective)
आंतरिक उत्पत्ति (Internal origin) संगठन के गुण (Attributes of the organisation)	S शक्ति (Strengths)	W कमजोरी (Weaknesses)
बाह्य उत्पत्ति (External origin) पर्यावरण के गुण (Attributes of the environment)	O अवसर (Opportunities)	T संकट (Threats)

चित्र 4.4– स्वॉट विश्लेषण (Figure 4.4: SWOT Analysis)

किसी भी संगठन के समुचित विकास के लिए नियमित/सतत् मूल्यांकन (continuous evaluation) आवश्यक है। वस्तुतः मूल्यांकन समग्र प्रबन्धन प्रक्रिया का अविभाज्य अंग है। समुचित, वैध एवं विश्वसनीय मूल्यांकन किसी भी संगठन का सुदृढ़ आधार है, जिस पर किसी भी संगठन का भावी विकास निर्भर करता है।

4.4.2.3. स्वोट विश्लेषण के उद्देश्य (Purpose of SWOT Analysis)

स्वोट विश्लेषण के उद्देश्य में स्वयं को पहचानना शामिल है। इसके कुछ अन्य उद्देश्यों का उल्लेख निम्नवत् है–

1) व्यवसाय में या व्यक्तिगत जीवन में सफलता और असफलता के प्रमुख कारणों का पता लगाना एवं सुधार करना।
2) स्वॉट विश्लेषण के माध्यम से आसानी से निर्णय लेना।
3) कम्पनी/संस्था के प्रगति के कारकों को समझना।
4) अपने निर्णय सम्बन्धी समस्याओं का आंकलन करना।
5) कम्पनी/संस्था या स्वयं की कमजोरियों एवं ताकत का पता लगाने के लिए।
6) अवसर एवं खतरों की पहचान करना।
7) कमजोर पड़ रहे व्यवसाय व निजी जीवन में कारकों का पता लगाना एवं सफलता एवं विफलता से जुड़े महत्त्वपूर्ण कारकों को व्यवस्थित करना।
8) निर्णय लेने में सहायता करना।

4.4.2.4. स्वोट विश्लेषण के लाभ (Advantages of SWOT Analysis)

स्वोट विश्लेषण के विभिन्न लाभ निम्नलिखित हैं–

1) स्वोट विश्लेषण द्वारा बाह्य कारकों एवं आन्तरिक क्षमताओं को समझने के लिए आकड़े उपलब्ध कराए जाते हैं।
2) यह रणनीतिक योजना के चयन में सहायता करता है।
3) यह बाह्य अवसरों एवं चुनौतियों का मूल्यांकन करने में अवसर प्रदान करता है। साथ ही इनका मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करता है।
4) यह सुधार हेतु नवीन तकनीकों का प्रयोग करता है एवं कार्यक्रम नियोजित करता है।
5) इससे किसी व्यक्ति, संस्था या कंपनी के कमजोरियों का पता चलता है।
6) इससे कमजोरियों को पता कर उसे समाप्त करने के लिए प्रयास किए जाते हैं।
7) आंकलन करने के पश्चात योजना रणनीति बनाने में सहायक है।
8) यह परेशानी को सुलझाने या समस्याओं के समाधान के लिए उपयोगी है।
9) स्वयं को या अपनी टीम को ताकतवर बनाने के लिए भी यह फायदेमंद है।

4.4.2.5. स्वोट विश्लेषण की सीमाएँ (Limitations of SWOT Analysis)

स्वोट विश्लेषण की कुछ सीमाएँ हैं जो प्रबन्धन के नियन्त्रण में नहीं होती हैं। ये सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1) इस विश्लेषण के लिए समय एवं धन दोनों की आवश्यकता होती है क्योंकि इस प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लगता है।
2) यह कभी–कभी बहुत लम्बी एवं जटिल प्रक्रिया बन जाती है।
3) अपर्याप्त अनुसंधान एवं विकास सुविधाएँ स्वोट विश्लेषण को बाधित करती हैं।
4) यह व्यक्तिपरक उपकरण है।
5) कुशल सदस्यों के अभाव में विश्लेषण विश्वसनीय नहीं हो पाता है।
6) स्वोट विश्लेषण कुछ पक्षों पर ही जोर देता है लेकिन यह नहीं बताता कि इसकी पहचान कैसे की जाए।
7) प्रत्येक प्रकार की समस्या का निदान इस विश्लेषण द्वारा नहीं किया जा सकता है।
8) पुराने आकड़े उपलब्ध होने के कारण सही परिणाम नहीं निकलते। हालांकि ऐसा बहुत कम होता है।
9) स्वोट प्रक्रिया में विभिन्न मतों के चलते विभेदकारिता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
10) यह आंकलन का एक तकनीक है इसलिए इस पर 100% विश्वास नहीं किया जा सकता।

4.5. सुशासन (GOOD GOVERNANCE)

4.5.1. सुशासन की अवधारणा (Concept of Good Governance)

सुशासन से पहले संक्षिप्त में शासन का अर्थ समझ लेना चाहिए। **'शासन'** में सत्ताधारियों द्वारा जनसामान्य की स्थिति को बेहतर बनाने हेतु वस्तुएँ व सेवाएँ उपलब्ध करायी जाती है और उनकी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अधिकार व शक्तियों का प्रयोग किया जाता है। शासन शक्ति, नीतियों, योजनाओं तथा परियोजनाओं से

संबंधित है, जो जीवन की परिस्थितियों को बेहतर बनाता है। इसमें सरकार से लोग यह आशा करते हैं कि वह इस तरीके से कार्य करे कि कम से कम लागत पर परिणाम अधिक से अधिक प्राप्त हो सके।

सुशासन (Good Governance) की अवधारणा 1990 के बाद विकसित हुई और इसने शासन (Governance) को समावेशी स्वरूप प्रदान किया है। यह गुणवत्ता और स्वयं में एक उचित मूल्य व्यवस्था को अपनाता है। इस (सुशासन) शब्द का प्रयोग, विकास की दिशा में प्रयासरत कई वैश्विक संस्थाओं और संयक्त राष्ट्र ने भी किया है। इसके पश्चात अन्य देशों की सरकारों द्वारा भी शासन की गुणवत्ता को सुधारने हेतु इसे अपनाया गया। भारतीय दृष्टिकोण से कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' में उल्लिखित है कि राजा की उन्नति प्रजा की उन्नति में ही है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी सुशासन के रूप में "सुराज" की अवधारणा दी है। इसके अतिरिक्त भारतीय सन्दर्भ में सुशासन को 'रामराज्य' की कल्पना ही इंगित या व्यक्त करती है। सुशासन में सरकार के निर्णय और कार्य का आधार लोगों की सहमति, वैधता एवं उत्तरदायित्व होते हैं।

इस प्रकार, सुशासन प्रक्रिया में उच्च गुणवत्ता से संबद्ध होता है। इस प्रकार के शासन के तरीके में अत्यधिक कुशलता विकसित होती है और उनकी वैधानिकता और साख बढ़ती है। इसके आधारभूत तत्वों में स्वतंत्रता की उपलब्धता, राजनीतिक उत्तरदायित्व, सूचना की उपलब्धता, कानूनी बाध्यता, पारदर्शिता, दक्षता, प्रभावकारिता आदि को शामिल किया जाता है। **अतः सुशासन** शासन से पृथक है।

पहले क्रूर राज्य ही सुशासन का प्रभावशाली माध्यम माना जाता था। प्राचीन व मध्य भारत में एक सर्वसत्तावादी राजा ही सामान्य लोगों की आवश्यकताओं हेतु कर्तव्यनिष्ठ एवं उत्तरदायी समझा जाता था। वर्तमान में एक सुशासन, उत्तरदायी व संवैधानिक सरकार तथा जागरूक नागरिकता की ओर इंगित करता है। सुशासन आज विकास का मुख्य संप्रत्यय है। यह अपनी प्रकृति में विस्तृत एवं सकारात्मक है। विस्तृत इसीलिए क्योंकि इसकी विकास प्रक्रिया में लोगों की सहभागिता की विशेषता है। अतः विकास जन स्थापित के साथ जनकेन्द्रित भी होता है।

यह प्रभावी एवं न्यायसंगत भी है और विधि के शासन को बढ़ावा देता है। सुशासन के अनुसार समाज में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्राथमिकताएँ व्यापक सहमति पर आधारित होनी चाहिए और विकास संसाधनों के वितरण हेतु निर्णय लेने में निम्न और कमजोर वर्ग का भी ध्यान रखना चाहिए । विश्व बैंक ने सुशासन के एक प्रभावी विकास प्रबन्धन के रूप में चार मुख्य आयाम स्पष्ट किए हैं– सार्वजनिक क्षेत्र प्रबन्धन, उत्तरदायित्व, विकास का वैधानिक ढांचा तथा पारदर्शिता।

4.5.2. सुशासन का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Good Governance)

सुशासन या अच्छा शासन अंग्रेजी शब्द Good तथा Governance का हिन्दी रूपान्तरण है। Good शब्द God से उत्पन्न हुआ है जबकि Governance शब्द Govern से उत्पन्न हुआ है, जो किसी को निर्देशित करने, आधिपत्य जताने और नियम बनाने से सम्बन्धित है। विश्व बैंक ने ही सर्वप्रथम 1992 ई. में सुशासन को परिभाषित किया था। **विश्व बैंक** के अनुसार, "किसी देश के विकास हेतु आर्थिक एवं सामाजिक संसाधनों के प्रबन्धन के सम्बन्ध में प्रयुक्त शक्ति का आशय सुशासन अर्थात् गुड गवर्नेंस से है।"

यूएनडीपी के अनुसार, "सुशासन, अन्य बातों के अलावा, सहभागी, पारदर्शी और जवाबदेह है।"

मिनोचा के अनुसार, "सुशासन वह है जहाँ राजनीतिक उत्तरदायित्व, स्वतन्त्रता की उपलब्धि, कानूनपालन, नौकरशाही उत्तरदायित्व, सूचना में पारदर्शिता, प्रभावी एवं कुशल सरकार तथा समाज में सहयोग मौजूद हो।"

पानन्दीकरण के शब्दों में, "सुशासन का आशय उस राष्ट्र राज्य से है जो जनता को शान्तिपूर्ण, व्यवस्थित, समृद्ध, उचित, सहभागितापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए निर्देशित करता है।"

4.5.3. सुशासन के सिद्धान्त (Principles of Good Governance)

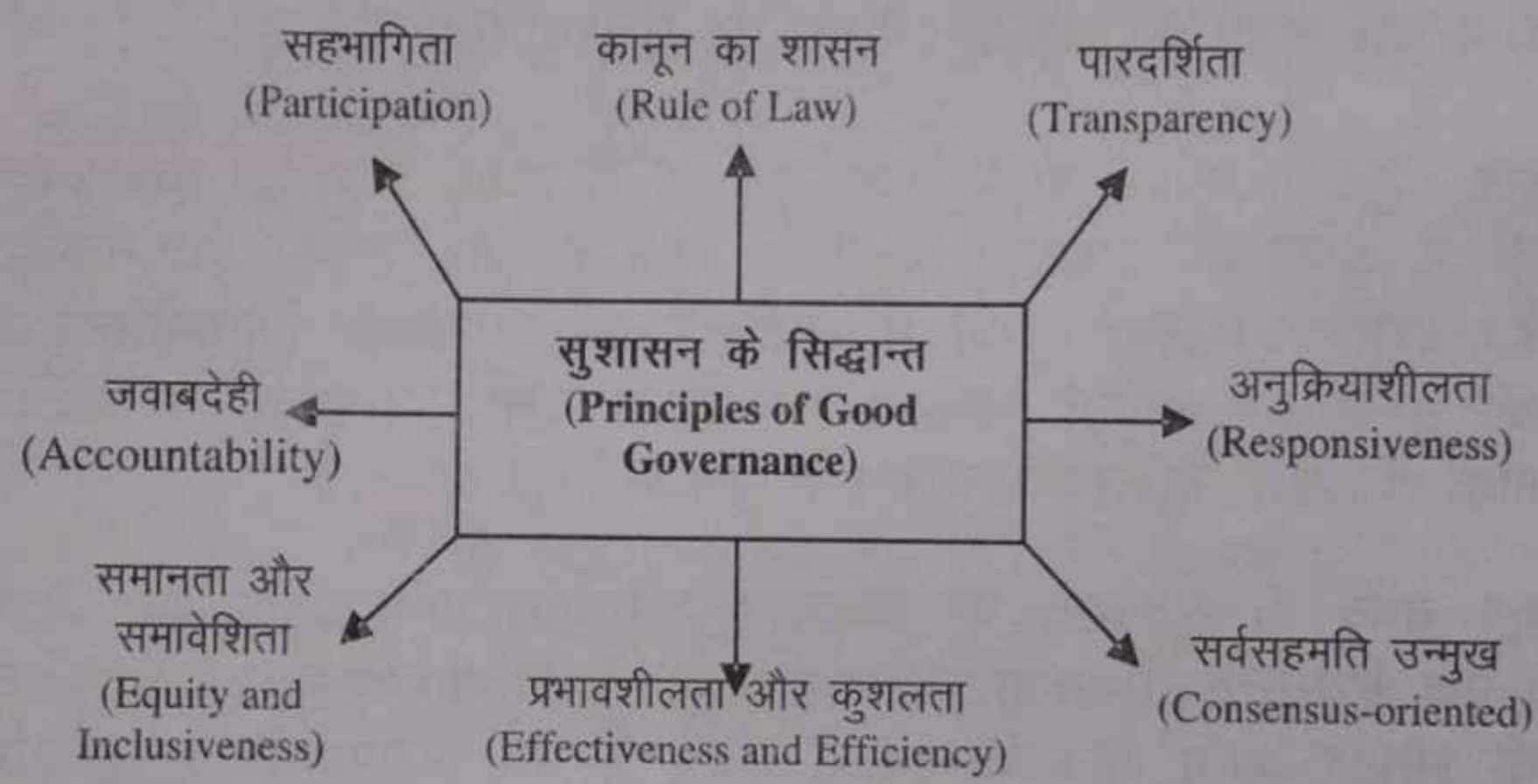

1) **सहभागिता (Participation)**–सुशासन की प्रमुख विशेषता नागरिकों की शासन की प्रक्रिया में सहभागिता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों को संगठित करने के लिए उनका सहभागी होना एक महत्त्वपूर्ण कदम है। सहभागिता का स्वरूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हो सकता है परन्तु सहभागिता को सूचित और व्यवस्थित करने की आवश्यकता रहती है। राजनीतिक अधिकारों के लक्ष्य एवं उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकती हैं जब समाज में लोगों की अधिक सहभागिता हो।

2) **कानून/विधि का शासन (Rule of Law)**–कानूनी शासन और स्वतंत्र न्यायपालिका प्रणाली सुशासन हेतु अनिवार्य है। समाज में कानून का शासन स्थापित करने हेतु एक समुचित वैधानिक या निष्पक्ष कानूनी ढांचे की आवश्यकता होती है। कानून का शासन मानवाधिकारों की रक्षा करने में मदद करता है, विशेषतः समाज में हाशिये पर रहने वाले लोगों के अधिकारों की रक्षा करने में सहायक होता है।

3) **पारदर्शिता (Transparency)**–नागरिकों की सेवाओं के निष्पक्ष निष्पादन के लिए सुशासन में पारदर्शिता की आवश्यकता होती है। सुशासन में परम्परागत शासन की तरह प्रायः गोपनीयता का व्यवहार नही किया जाता है। यह उचित नियमों और विनियमों का पालन करते हुए नीति निर्माण और उसके कार्यान्वयन के बीच संतुलन सुनिश्चित रखता है। यह विभिन्न नीतियों और उनके कार्यान्वयन सम्बन्धी सरकारी जानकारी तक नागरिकों की स्वतंत्र पहुँच को सक्षम बनाता है। इस जानकारी को मीडिया के माध्यम से आसानी से समझाया जा सकता है। इससे पारदर्शिता बढ़ी है और शासन पर सही निर्णय लेने का दबाव बढ़ा है।

4) **अनुक्रियाशीलता (Responsiveness)**–यह प्रशासन की मूल आवश्यकता है। जो लोगों और संस्थानों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को प्रेरित कर सकती है। इस कार्य हेतु संस्थानों और प्रक्रियाओं द्वारा एक निश्चित समय के भीतर लोगों को पर्याप्त सेवाएँ प्रदान करना आवश्यक है।

5) **सर्वसहमति उन्मुख (Consensus-Oriented)**–सुशासन बनाने के लिए समाज में सभी लोगों की सहमति आवश्यक होती है क्योंकि यह लोगों के साथ–साथ समुदाय सम्बन्धित हितों को भी पूर्ण कर सकता है। इसके द्वारा किसी की भी सामान्य न्यूनतम आवश्यकताएँ पूर्ण की जा सकती है। इसके द्वारा मानव विकास के दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

6) **समानता और समावेशिता (Equity and Inclusiveness)**–सुशासन में संरचनाओं व तन्त्रों का लक्ष्य सहभागिता होती है और इसके लिए समतामूलक न्यायपूर्ण समाज की स्थापना करनी चाहिए। किसी भी समाज का सर्वांगीण विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उसके सदस्य इसके बारे में कैसा महसूस करते हैं। समाज के प्रत्येक सदस्य को यह महसूस होना चाहिए कि इसमें उनकी हिस्सेदारी है और उन्हें शासन की मुख्यधारा से पृथक नहीं रखा गया है।

7) **प्रभावशीलता और कुशलता (Effectiveness and Efficiency)**–समाज की जरूरतों को पूरा करने के लिए संस्थानों के परिणामों को प्रभावशीलता और दक्षता सुनिश्चित करती है। समाज के संसाधनों का समुचित उपयोग सुशासन की कुंजी है। यह प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोग को भी सुनिश्चित करता है ताकि पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। सुशासन के लिए यह अनिवार्य है कि वह संसाधनों के उचित प्रयोग को सुनिश्चित करें। इस कार्य हेतु उसे परिणामोन्मुखी कार्यकुशलता का बढ़ावा देना चहिए।

8) **जवाबदेही (Accountability)**–सुशासन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक जवाबदेही भी है। इसका सुशासन की धारणा में केन्द्रीय स्थान है। जवाबदेही से तात्पर्य शासन को स्वयं के कार्यों के प्रति उत्तरदायी बनाना। इसमें सरकारी एवं निजी क्षेत्र तथा नागरिक समाज संगठन को अपने लोगों के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। जवाबदेही की स्थापना पारदर्शिता और विधि शासन के बिना नहीं की जा सकती।

4.5.4. सुशासन के सूचक (Indicators of Good Governance)

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' को एल. एन. शर्मा तथा सुस्मिता शर्मा सुशासन के क्षेत्र में सर्वोपरि ग्रन्थ मानते है। इस ग्रन्थ से उन्होंने सुशासन के दस निम्नलिखित सूचकों का चयन किया हैं–

1) राजा द्वारा वैयक्तिक हित का त्याग
2) सार्वजनिक प्रतिबद्धता
3) अनुशासित आचरण
4) लक्ष्य की उपेक्षा न करना
5) कानून व्यवस्था की स्थापना
6) निश्चित वेतन
7) कठोर दण्ड व्यवस्था
8) लेखपाल व लेखकों का महत्त्व
9) योग्यता को प्राथमिकता
10) नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधान

1) **राजा द्वारा वैयक्तिक हित का त्याग (Sacrifice of Personal Interest by the King)**–राजा को जनता के प्रति स्वयं के कर्तव्यों को सर्वोपरि मानना चाहिए और उसे स्वयं के हितों का जनता के लिए त्याग करने में संकोच नहीं करना चाहिए। कौटिल्य का राजा सम्भवतः निरंकुश न होकर 'सप्तांग' की सलाह पर कार्य करता है। वह जनता के हित में सहयोगियों के साथ मिलकर सामूहिक निर्णय लेता है। कौटिल्य ने कठोर दण्डनीति का प्रावधान किया है ताकि राजनीति व सरकार के साथ–साथ समाज पर भी प्रतिबन्ध लगाया जा सके।

2) **सार्वजनिक प्रतिबद्धता (Public Commitment)**–सुशासन को सही दिशा अर्थात् जन कल्याण की ओर निर्देशित किया जाना चाहिए और इसमें सार्वजनिक या सामूहिक प्रतिबद्धता को सर्वोपरि स्थान दिया जाना चाहिए। हालांकि वर्तमान में इसके विपरीत स्थिति दृष्टिगत होती है।

3) **अनुशासित आचरण (Disciplined Behaviour)**–कौटिल्य द्वारा अनुशासित जीवन तथा आचरण–संहिता की व्यवस्था राजा व मन्त्रीगणों के लिए की गयी थी। प्रायः सभी भारतीय धर्म–ग्रन्थों का यही मूल है। आज इतने अधिक प्रयास जिस सुशासन की स्थापना हेतु किये जा रहे हैं, उसमें यह तथ्य आश्चर्यजनक है कि यह सुशासन प्राचीन भारतीय समाज में सहज रूप में ही विद्यमान था। यह इसीलिए क्योंकि उस समय शासक व शासित दोनों का ही जीवन अनुशासित एवं उन्नत चरित्र का था। वर्तमान में इसके विपरीत स्थिति है, आज दोनों का ही अभाव है।

4) **लक्ष्य की उपेक्षा न करना (Not Neglecting the Goal)**–शासन व राज्य को प्रत्येक अनुचित दबावों से बचकर जनकल्याण की ओर लक्ष्योन्मुख होना चाहिए। किसी भी प्रकार से अर्थात् व्यक्तिगत हित, अन्तर्राष्ट्रीय दबाव एवं स्वार्थपरकता के तहत लोगों के हित या लोक सेवा के परम लक्ष्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी तथ्य को भारत ने ध्यान में रखकर उदारीकरण के विरुद्ध आवाज उठाई।

5) **कानून व्यवस्था की स्थापना (Establishment of Law and Order)**–कौटिल्य के अनुसार "राजा को जनता की सेवा के लिए वेतन मिलता है और उसका मुख्य कर्त्तव्य कानून और व्यवस्था बनाये रखना और लोगों के जीवन तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करना है।" कौटिल्य का मानना है कि किसी नागरिक की सम्पत्ति चोरी होने पर राजा को स्वयं की ओर से भुगतान करना चाहिए।

6) **निश्चित वेतन (Fixed Salary)**–राजा के लिए कौटिल्य द्वारा निश्चित वेतन का प्रावधान किया गया। राज परिवार के लोगों को निश्चित भत्ता दिया जाता था। इसके अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद की स्वीकृति भी भत्ते में वृद्धि करने हेतु आवश्यक थी। वर्तमान में भारतीय स्थिति अत्यन्त दयनीय है जहाँ पर प्रधानमन्त्री, मुख्यमन्त्रियों सांसदों एवं विधायकों आदि के वेतन–भत्तों में विधायिका की स्वीकृति के बिना ही निरन्तर वृद्धि होती रहती है। जबकि इसके विपरीत जनता का एक बड़ा भाग भुखमरी में जीवन व्यतीत करता है।

7) **कठोर दण्ड व्यवस्था (Harsh Punishment System)**–कौटिल्य द्वारा कठोर दण्डात्मक कार्यवाही का भी प्रावधान किया गया है ताकि भ्रष्ट अधिकारियों एवं प्रशासकीय कर्मचारियों को दण्ड दिया जा सके। इसमें नियन्त्रण व निरीक्षण भी आवश्यक होता है जिससे भ्रष्ट अधिकारियों को अनुशासित रखा जाता है।

8) **लेखपाल व लेखकों का महत्त्व (Importance of Accountants and Writers)**–कौटिल्य ने समाज में लेखकों एवं लेखपालों को अत्यन्त उच्च स्थान प्रदान किया। इनके चयन में भी अत्यधिक सावधानी रखी जाती थी। क्योंकि शाही

आदेश, विज्ञप्ति आदि के लेखन की उनमें क्षमता होना अनिवार्य था। वर्तमान में दोनों अर्थात् लेखकों व लेखपालों की विशिष्ट योग्यता और उनके सम्मान का अभाव दृष्टिगोचर होता है।

9) **योग्यता को प्राथमिकता (Priority to Qualification)**–कौटिल्य ने सुशासन हेतु राजा के लिए बुद्धिसम्पन्न, कर्मठ, नैतिक आचरण, योग्य मन्त्रियों के चयन की क्षमता, नेतृत्व की क्षमता, प्रशासनिक एकरूपता, शीघ्र निर्णय करने की क्षमता आदि योग्यताओं का निर्धारण किया हैं।

10) **नियुक्ति सम्बन्धी प्रावधान (Appointment Related Provisions)**–कौटिल्य के अनुसार समय–समय पर पुराने मन्त्रियों के स्थान पर अधिक योग्य व सक्षम तथा उत्तरदायित्व की भावना से पूर्ण मन्त्रियों की नियुक्ति की जानी चाहिए। क्योंकि लम्बे समय तक पद पर एक ही व्यक्ति का बने रहने से भी अनुशासनहीनता आने की सम्भावना बनी रहती है। अतः कौटिल्य द्वारा स्थापित ये सूचक वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी सार्थक प्रतीत होते हैं।

4.5.5. भारत में सुशासन से सम्बन्धित कठिनाइयाँ (Difficulties Related to Good Governance in India)

भारत में सुशासन से सम्बन्धित अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, जिनमें प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नवत् हैं–

1) **राजनीति का अपराधीकरण (Criminalisation of Politics)**–भारतीय लोकतांत्रिक शासन हेतु सबसे बड़ी चुनौती अपराधियों से उत्पन्न होती है यह कानून निर्माणक संस्थाओं में तीव्रता से प्रवेश कर रहे हैं। इसके साथ ही राजनेताओं, नागरिक अधिकारियों और आर्थिक हितों के अनुचित सम्बन्ध/गठबन्धन ने सार्वजनिक नीति निर्माण और शासन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। अतः राजनीतिक अभिजात वर्ग स्वयं की विश्वसनीयता खो रहा है।

2) **जनसंख्या वृद्धि (Population Growth)**–सुशासन न केवल प्रभावी कानूनों, प्रविधियों और उनके क्रियान्वयन से सम्बन्धित है, बल्कि वह देश के सामाजिक और आर्थिक संसाधनों की गतिशीलता और उपयोगिता से भी सम्बन्धित है, ताकि समाज के प्रत्येक सदस्य को उसका लाभ प्राप्त हो सके। अतः ज्ञात होता है कि विकास के प्रयास गरीबी व बेरोजगारी को समाप्त करने तथा साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने और प्रत्येक नागरिक को स्वास्थ्य, खाद्य, पेयजल तथा प्राथमिक शिक्षा एवं आवास उपलब्ध कराने में सफल नहीं रहे हैं। इसका मुख्य कारण जनसंख्या वृद्धि है। जनसंख्या में कुछ भारतीय राज्य स्थिरता प्राप्त कर रहे जैसे– केरल, गोवा, तमिलनाडु और मणिपुर। परन्तु कुछ राज्य जनसंख्या के स्थिरीकरण में अभी भी अधिक समय ले रहे जैसे, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार। ऐसी बढ़ती हुयी जनसंख्या को संतुष्ट करने हेतु संसाधन आवश्यक होते हैं। भूमि, जल और वायु जैसे संसाधनों में वृद्धि की आवश्यकता होती है। भारत में किसी भी सरकार के लिए यह कार्य चुनौतीपूर्ण रहेगा कि वह सभी को उचित शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, खाद्य, आवास एवं रोजगार उपलब्ध करा सके। **उदाहरण के लिए**– भारत के किसी भी महानगर को ले सकते हैं जहाँ पर अधिकतम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में स्वास्थ्य एवं साफ–सफाई, पेय–जल आपूर्ति, सड़कें और विद्युत की समस्याएँ मौजूद हैं। वास्तविकता में अब अनेक अच्छे शहरों जैसे, कोलकाता, मुंबई और दिल्ली में शासन का कार्य कठिन होता जा रहा है। इस प्रकार वास्तव में सुशासन में जनसंख्या वृद्धि एक बड़ी बाधा बन रही है

3) **नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूकता का निम्न स्तर (Low Level of Awareness of the Rights and Duties of Citizens)**–प्रभावी सरकार के लिए जागरूकता का निम्न स्तर बाधक होता है। जब नागरिक स्वयं के दायित्वों से जागरूक नही होते हैं, तो वे दूसरे नागरिकों की स्वतंत्रता एवं अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं। अतः, नागरिकों के कर्तव्यों एवं अधिकारों के बारे में अनभिज्ञता या जागरूकता की कमी का स्तर कुशासन की ओर ले जाता है।

4) **हिंसा की संस्कृति (Culture of Violence)**–वर्तमान कानून–व्यवस्था की समस्या बल का अवैध प्रयोग है परन्तु यदि इसे कोई सुशासन के सन्दर्भ से देखे तो यह समझा जा सकता है कि विकास के लिए शान्ति और कानून व्यवस्था प्रथम सोपान हैं। हिंसा की संस्कृति के कुछ हानिकारक तत्व होते हैं जैसे–हड़तालें, दंगे, आतंकवादी हमले आदि। सरकार जान–माल की सुरक्षा आदि की ओर से तब निश्चित हो सकती है जब वह आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास का उचित ध्यान रखती है। कानून–व्यवस्था पर आतंकवाद का भी प्रभाव पड़ता है। यह विकास के लिए बाधक है। उन क्षेत्रों पर कोई भी निवेशक पूँजी नहीं लगाना चाहता जो आतंकवादी गतिविधियों से प्रभावित होते हैं। इसका वहाँ के रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य सेवाओं पर अधिक समय तक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। वहाँ का सामाजिक जीवन रुक जाता है। जब सरकार इस आतंकवाद को दबाने हेतु कठोरता से शासन करती है, तो जन साधारण के अधिकारों का राज्य पुलिस के द्वारा हनन हो जाता है। हालांकि ऐसे कार्यों के लिए स्पष्ट दृष्टिकोण, साहस एवं समझ की आवश्यकता होती है जिससे एक–दूसरे से बातचीत के द्वारा इस मुद्दे को सुलझाया जा सके। इसके लिए पड़ोसियों की सहभागिता, आतंकवाद के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और उपयुक्त जन शिकायतों का निवारण भी होना आवश्यक हैं।

5) **भ्रष्टाचार (Corruption)**–अधिकारों का अवैध प्रयोग करना ही भ्रष्टाचार है और यह व्यक्तिगत लाभ हेतु किया जाता है। लगभग सम्पूर्ण विश्व में भ्रष्टाचार सार्वभौमिक रूप में दिखाई देता है, इससे सरकार और जनता दोनों को हानि होती है। यह भारत जैसे देशों में कैंसर की तरह फैल चुका है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्रवाई करने की माँग प्रतिदिन बढ़ती जा रही है परन्तु जब तक कि सभी प्रकार के भ्रष्टाचार (राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक और प्रशासनिक) से कठोर इच्छाशक्ति से नहीं लड़ा जाएगा, तब तक इसके लिए कोई भी योजना सफल सिद्ध नहीं होगी। अतः भ्रष्टाचार से मुक्त होना सुशासन के लिए आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित आवश्यक कार्य किए जाने चाहिए–

i) राजनीतिज्ञों, अफसरों और अधिकारियों के मध्य गठबंधन नहीं होना चाहिए।
ii) अदालतों का गठन देश, राज्य एवं स्थानीय स्तर पर जनहित याचिकाओं के लिए करना चाहिए।
iii) सूचना के अधिकार को और अधिक प्रभावी बनाना चाहिए।
iv) न्याय को सस्ता रखना चाहिए। ताकि जन सामान्य की आसान पहुँच हो सके।
v) उन संस्थाओं को शक्तिशाली बनाना चाहिए जो कानून लागू करती हैं।
vi) जब भ्रष्टाचारियों की सम्पत्ति पर अभियोग लगता है उसके पश्चात् बिना किसी विलंब के उस सम्पत्ति को जब्त कर लेना चाहिए। यह सम्पत्ति, जब वह निर्दोष सिद्ध हो जाए तभी वापस की जानी चाहिए।
vii) नियमों, उपनियमों और कार्यप्रणाली को सरल बनाना चाहिए जो नौकरशाही की कार्यशैली में सुधार से जुड़े हों।
viii) भाई–भतीजावाद को सरकारी संगठनों में समाप्त करना चाहिए।

6) **उत्तरदायित्व की कमी (Lack of Accountability)**–सिविल सेवाओं को उनकी कार्यप्रणाली हेतु उत्तरदायी ठहराने की प्रणाली का पर्याप्त न होना भी शासन में अक्षमता के कारण बनी हुई है। क्योंकि सरकार और उसके संस्थानों की ओर से शक्तियों और उत्तरदायित्व के पृथक्करण की विशेष कमी है। इसके अतिरिक्त, सरकार का प्रदर्शन मूल्यांकन प्रक्रियाओं में जवाबदेही की कमी भी सुशासन में बाधा उत्पन्न करता है।

7) **कानूनों का अप्रभावी कार्यान्वयन (Ineffective Implementation of Laws)**–कानूनों और नीतियों के अतिशीघ्रता और अप्रभावी कार्यान्वयन के कारण सामान्य जनता को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और इससे सरकार के प्रति विश्वास में कमी भी हुई है।

8) **लालफीताशाही (Red Tapism)**–भारत में सुशासन की प्राप्ति सहज न होने का एक मुख्य कारण यह भी है कि यहाँ कुत्सित और कठोर नियम–प्रक्रियाएं हैं। कठोर नियम साध्य का साधन बनने के बजाय अपने आप में साध्य बन गए हैं।

9) **राजनीतिक दलों में वृद्धि (Increase in Number of Political Parties)**–भारत में वर्तमान राष्ट्रीय दलों की संख्या 6 है। इसके अतिरिक्त राज्य स्तरीय दल लगभग 54 दल हैं और 2597 गैर मान्यता प्राप्त दल है। कई दल या पार्टियों में स्वयं का कोई सिद्धान्त नहीं है। निष्ठा परिवर्तन भी राजनीतिक दलों में सामान्य कार्य है।

4.5.6. भारत में सुशासन प्राप्त करने के लिए लागू की गयी नीतियाँ (Policies Implemented to Achieve Good Governance in India)

सुशासन प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा कार्यान्वित नीतियाँ इस प्रकार हैं–

1) **सूचना का अधिकार (आरटीआई) [Right to Information (RTI)]**–अनुच्छेद 19 के द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्र अभिव्यक्ति के मूल अधिकार से सूचना का अधिकार विकसित हुआ है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) के अनुसार, "सभी नागरिकों को भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा।" एक व्यक्ति इस अधिनियम के द्वारा सरकारी गतिविधियों और निर्णयों का निरीक्षण, लेखा परीक्षा, मूल्यांकन और विश्लेषण करके यह सत्यापित कर सकता है कि वे सार्वजनिक हित, अखंडता और न्याय के सिद्धान्तों के अनुसार हैं।

यह सरकार की समुदायिक आवश्यकताओं के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करता है। अतः यह अधिकार सार्वजनिक जाँच हेतु सरकार को स्वतन्त्र करके प्रशासन में खुलेपन, पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देता है।

2) **एमसीए 21 (MCA 21)**–यह एक ऑनलाइन पोर्टल है जो कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय द्वारा व्यवसायों की प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने के लिए शुरू किया गया है। यह सिंगल विंडो प्लेटफॉर्म के रूप में कार्य करता है क्योंकि इसमें विभिन्न सूचनाओं तक पहुँच के साथ–साथ विभिन्न दस्तावेजों की इलेक्ट्रॉनिक फाइलिंग की जाती है।

3) **सिटीजन चार्टर (Citizen Charter)**–नागरिक चार्टर एक स्वैच्छिक घोषणा है जो सेवा प्रदाताओं द्वारा दी गई सेवाओं और उनके मानकों, पसंद, पहुँच, गैर–भेदभावपूर्ण, खुलेपन और जवाबदेही से सम्बन्धित रहता है। यह एक ऐसा सार्वजनिक उपकरण है जो सेवा प्रदाताओं और इसके उपयोगकर्ताओं के बीच विश्वास को सुनिश्चित करता है।

4) **कानूनी सुधार (Legal Reforms)**–केंद्र सरकार द्वारा पारदर्शिता लाने और दक्षता में सुधार करने के उद्देश्य से लगभग 1,500 अप्रचलित नियमों और कानूनों को समाप्त कर दिया गया है। संस्था–पूर्व मध्यस्थता पर ध्यान केंद्रित करते हुए आपराधिक न्याय और प्रक्रियात्मक कानूनों में सुधार किया गया है।

5) **पुलिस सुधार (Police Reforms)**–इसके अन्तर्गत पुलिस बलों का आधुनिकीकरण और 2015 के मॉडल पुलिस अधिनियम को लागू किया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज करने की व्यवस्था में सुधार में छोटे अपराधों के लिए ई–एफआईआर दाखिल करना शामिल है।

4.5.7. सुशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Good Governance)

सुशासन की आवश्यकता निम्नलिखित बिन्दुओं में समझ सकते हैं–

1) **आर्थिक न्याय (Economic Justice)**–सामाजिक असमानताओं को कम करने हेतु सुशासन मुख्य साधन है। इसके अतिरिक्त कमजोर प्रशासन के साथ विकसित अर्थव्यवस्था को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः, समाज में सुशासन के द्वारा आर्थिक न्याय को सुनिश्चित किया जा सकता है।

2) **राजनीतिक न्याय (Political Justice)**–समाज हेतु सुशासन की प्रभावशीलता राजनेताओं की ईमानदारी और व्यवस्था के कानूनों एवं नियमों के प्रति आज्ञाकारिता पर निर्भर होती है। सुशासन की प्राप्ति स्थापित संस्थानों और प्रक्रियाओं में पारदर्शिता और जवाबदेही के माध्यम से की जा सकती है। समाज के हितधारकों के बीच रचनात्मक सहयोग सुनिश्चित करने हेतु सुशासन आवश्यक है और समाज में राजनीतिक न्याय की प्राप्ति को सक्षम बनाने में सहायक हो सकता है। लोगों के कल्याण के लिए सरकार एवं राजनीतिक दलों को नीतियाँ विकसित करनी चाहिए और स्वस्थ प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने हेतु प्रभावी ढंग से सहयोग करना चाहिए।

3) **सामाजिक न्याय (Social Justice)**–विभिन्न धार्मिक परंपराओं, सामाजिक वर्गों और जातियों के लोग सभ्यताओं में एक–दूसरे के साथ रहते हैं। हालाँकि, यदि आय का असमान विभाजन होता है, तो आय का अनुचित आवंटन होता है जो सामाजिक अस्थिरता उत्पन्न करता है। सामाजिक न्याय प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित अवसरों की माँग करता है और एक समावेशी समाज सुनिश्चित करता है। सुशासन प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार उपलब्ध कराता है और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने में मुख्य भूमिका निभाता है। इस प्रकार समाज की समृद्धि होती है। अतः सुशासन की सामाजिक न्याय हेतु आवश्यकता रहती है।

4.6. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी [INFORMATION AND COMMUNICATION TECHNOLOGY (ICT)]

4.6.1. आई.सी.टी. की अवधारणा (Concept of I.C.T.)

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने वर्तमान में सूचना के आदान–प्रदान करने में एक क्रान्तिकारी भूमिका का निर्वहन किया हैं। इसके द्वारा सम्पूर्ण सूचनाएँ जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित होती है उन्हें एक स्थान पर बैठे–बैठे प्राप्त किया जा सकता है। यह श्रम,

समय एवं कागजी कार्य में बचत करता है। आई.सी.टी. स्थानीय संस्कृति और विशेष रूप से इसके प्रबन्धन एवं आकार के आधार पर कार्य करता है। आई.सी.टी. की अवधारणा, समझ, प्रबन्धन और उपलब्ध विन्यास तकनीकी के आधार पर भिन्न हो सकती हैं। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी किसी कार्य को करने में प्रयुक्त उपकरणों एवं यन्त्रों का एक संग्रह है। **उदाहरण के लिए** प्रकाशन, लेन–देन प्रक्रिया एवं वस्तुओं का वितरण आदि। सूचना एवं सम्प्रेषण पर कार्य करने के लिए संगठित उपकरणों (कार्यशाला) की आवश्यकता होती है। जहाँ पर इससे सम्बन्धित कार्य सम्पादित किए जाते हैं।

उपकरणों के एकीकृत प्रबन्धन के तत्त्वों, यंत्रों, सेवाओं एवं व्यवहारों का प्रयोग सूचनाओं के संग्रह उसकी प्रक्रिया तथा साझा करने के लिए किया जाता है। सूचना सम्प्रेषण तकनीकी उपकरण का उपयोग सीखने को सक्षम बनाने, समस्या–समाधान करने तथा उच्च सहयोगी चिन्तन में विस्तृत रुप से किया जाता है। इस प्रकार सूचना सम्प्रेषण तकनीकी का प्रयोग तकनीकों के माध्यम से सूचनाओं का आदान–प्रदान करने तथा उसका उपयोग करने में प्रयुक्त होता है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं–

प्रो. एस.के. दुबे के अनुसार, "सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का आशय संचार साधनों की व्यवस्था के कुशलतम संचालन से है जो सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित करने में सहायता करती है।"

आर.के. शर्मा के अनुसार, "सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का आशय उन समस्त संचार साधनों के व्यावहारिक प्रयोग की ओर संकेत करता है, जो मानव के कल्याण तथा आवश्यकता पूर्ति हेतु सूचनाओं का आदान–प्रदान करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी एक दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि सूचना के अभाव में सम्प्रेषण का कोई महत्त्व नहीं रह जाता और सम्प्रेषण के बिना सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक तीव्र गति से नहीं पहुँचाया जा सकता है। अतः यह स्पष्ट है कि सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी को इस प्रकार भी समझाया जा सकता है, "औजारों, उपकरणों तथा अनुप्रयोग आधार से युक्त एक ऐसी तकनीक है जो सूचना के संग्रहण, भण्डारण, पुनः प्रस्तुतीकरण, उपयोग, स्थानान्तरण, संश्लेषण एवं विश्लेषण, आत्मसातीकरण आदि के विश्वसनीय एवं यथार्थ सम्पादन में सहायक सिद्ध होते हुए उपयोगकर्ता को अपना ज्ञानवर्द्धन करने तथा उसके सम्प्रेषण और उसके द्वारा अपनी निर्णय और समस्या समाधान योग्यता में वृद्धि करने में यथेष्ट सहायक सिद्ध होती है।"

4.6.2. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उद्‌गम एवं विकास (Origin and Growth of Information and Communication Technology)

प्राचीन समय में जब सूचनाओं को भेजने के तकनीकी साधन नहीं थे लेकिन फिर भी सूचनाओं का आदान–प्रदान होता था। उस समय सूचनाएँ मौखिक रूप से इकट्ठी की जाती थीं। मस्तिष्क में स्मृति के रूप में इन्हें इकट्ठा किया जाता था और मौखिक रूप से सूचना का हस्तान्तरण व उपयोग किया जाता था। इसके पश्चात् लिखने की कला का आविष्कार हुआ। इस लिखने की कला से सूचना सम्प्रेषण का कार्य कुछ हद तक आसान

हो गया। इसके पश्चात् **1438** में जर्मनी में **गुटेनबर्ग (Gutenberg)** द्वारा छापने (Print) की मशीन का आविष्कार माना जाता है। तत्पश्चात् प्रिन्टिंग साधनों ने सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में विशेष योगदान दिया है। सूचना एवं सम्प्रेषण की दिशा में निम्नलिखित प्रयास किए गए जो कि सूचनाओं को एक दूसरे तक शीघ्रता से पहुँचाने में सहायक हुए–

1) 1849 में फ्रांस के निवासी **एल.जी.एम. डेगूरे** तथा इंग्लैण्ड निवासी **डब्ल्यू.एच.एफ. तालबोट** द्वारा **फोटोग्राफी** का आविष्कार।
2) सन् 1900 में फ्रांस के प्रोफेसर **ऐबी रेने ग्राफीन** द्वारा **फोटोस्टेट** तकनीक का आविष्कार।
3) 1938 में अमेरिकन प्रोफेसर **एफ. कार्लसन** द्वारा **जीरोग्राफी (Xerography)** का आविष्कार।
4) 1940 में इंग्लैण्ड निवासी **जे.बी. डेंसर** तथा फ्रांस निवासी **रेने डेग्रेन** द्वारा माइक्रोग्राफी का आविष्कार। माइक्रोग्राफी द्वारा रिकार्ड की हुई सामग्री को बहुत छोटे रूप में कॉपी (Copy) किया जा सकता है।
5) 1960 में अमेरिका निवासी **थियोडोर मेमन** ने प्रिन्ट के लिए **लेजर** तकनीकी का आविष्कार किया।
6) 20वीं सदी में चुम्बकीय वीडियो कैमरा, वीडियो डिस्क एवं कम्प्यूटरों का विकास।

इन आविष्कारों के माध्यम से मनुष्य को अपनी सूचना शीघ्रतापूर्वक पहुँचाने में काफी सहायता हुई परन्तु सेटेलाइट संचार (Satellite Communication) ने सूचना पहुँचाने के स्तर को और अधिक बढ़ा दिया।

इसी प्रकार सूचना एवं सम्प्रेषण में अन्य निम्नलिखित आविष्कार हुए–

1) 1837 में अमेरिका निवासी **एस.पी.बी. मोर्स** द्वारा **टेलीग्राफ** का आविष्कार।
2) 1876 में **अलेक्जेन्डर ग्राहम बेल**, जो कि स्कॉटलैण्ड के निवासी थे उन्होंने **टेलीफोन** का आविष्कार किया।
3) 1895 में इटली निवासी **जी. मारकोनी** ने **रेडियो** का आविष्कार किया।
4) 1925 में स्काटलैण्ड निवासी **जे.एल. बेयर्ड** द्वारा **टेलीविजन** का आविष्कार किया गया।
5) संचार उपग्रहों का विकास।
6) 20वीं शताब्दी में ही **केबल** व **फैक्स** तकनीकी का आविष्कार।

इस प्रकार सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का निरन्तर विकास होता रहा। सन् 1950 में U.S.A. में सूचना विज्ञान (Information Science) का प्रचलन हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य सूचनाओं के संचार को अधिक प्रभावशाली बनाकर सूचना की प्राप्ति के लिए नई विधियों व नई विकसित तकनीकी के लिए प्रोग्राम को बनाना था। अब धीरे–धीरे सूचना सम्प्रेषण विज्ञान के दायरे में वृद्धि होती गई और 1960 में औद्योगिक क्षेत्र में भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। इसी समय कम्प्यूटर एवं संचार उपग्रह सेवाओं का विकास होने पर सूचना एवं सम्प्रेषण का दायरा बढ़कर सभी क्षेत्रों– बैंकिंग, मैनेजमेण्ट, शिक्षण, शोध, चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवाएँ, पुलिस एवं सेना, कानूनी सेवाएँ, इत्यादि में प्रसारित हो चुका था। आज के समय में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचा हो जो किसी न किसी रूप में सूचना एवं संचार तकनीकी के प्रभाव से न जुड़ा हो।

4.6.3. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के घटक (Components of ICT)

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी अवयवों/घटकों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

1) **कम्प्यूटर तकनीकी**–मानव प्रयास के हर क्षेत्र में सूचना प्रसारण प्रक्रिया में नाटकीय विकास कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के व्यापक उपयोग द्वारा किया गया है, जिसे निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–
   i) **कार्यस्थल**–ये महंगे और शक्तिशाली कम्प्यूटर हैं जिनका उपयोग मुख्य रूप से परिष्कृत उद्देश्यों के लिए इंजीनियरों और वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं–
      a) सुपर कम्प्यूटर b) मिनी कम्प्यूटर c) पर्सनल कम्प्यूटर

2) **माइक्रोचिप तकनीकी**–एक माइक्रोचिप सिलिकॉन का एक छोटा सा टुकड़ा होता है जिसमें हजारों सूक्ष्म लघु इलेक्ट्रॉनिक सर्किट घटक होते हैं, जिनमें मुख्य रूप से ट्रांजिस्टर होते हैं। **उदा.**–आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस

3) **सॉफ्टवेयर तकनीकी**–सॉफ्टवेयर चरणों में निर्देश होते हैं जो कम्प्यूटर को बताते हैं कि क्या करना है। उपलब्ध पुस्तकालय के कुछ महत्त्वपूर्ण पैकेज निम्नलिखित हैं–
   i) **BOOKS**–वह सॉफ्टवेयर प्रणाली जो सभी प्रमुख पुस्तकालय कार्यों का समर्थन करती है जिसमें परिसंचरण नियंत्रण, अधिग्रहण, धारावाहिक नियंत्रण आदि शामिल हैं। यह सॉफ्टवेयर COBOL भाषा में है।
   ii) **Minisis**–यह सॉफ्टवेयर लाइब्रेरी और सूचना डेटाबेस को बनाने, बनाए रखने और खोज करने में उपयोग के लिए है।
   iii) **Libsys**–यह सबसे व्यापक पुस्तकालय सॉफ्टवेयर है। यह अधिग्रहण, कैटलॉगिंग, सर्कुलेशन, धारावाहिकों और लेखों से सम्बन्धित लगभग सभी गतिविधियों का समर्थन करता है।

4) **CD-ROM तकनीक**–CD-ROM एक संक्षिप्त रूप है जो कॉम्पैक्ट डिस्क रीड ओनली मेमोरी के लिए है। CD-ROM का उपयोग पूर्व पाठ, ग्राफिक्स और ध्वनि को रखने के लिए किया जाता है।

5) **संचार तकनीकी**–संचार या दूरसंचार तकनीकियों का उपयोग दूरस्थ स्थानों के बीच संकेतों के रूप में सूचना प्रसारित करने के लिए किया जाता है। **उदाहरण**– ऑडियो तकनीक, ऑडियो विजुअल तकनीक, मोशन पिक्चर, टीवी, CATV (केबल टेलीविजन) प्रणाली, वीडियो डिस्क, वीडियोटेक्स्ट, टेलेक्सटैक्स, टेलीफोन, मोबाइल फोन, फैक्स, ई–मेल, वॉइस मेल आदि।
   i) **ऑडियो तकनीक**–आधुनिक एएम तथा एफएम का उपयोग पुस्तकालय और सूचना केंद्रों में कई प्रकार के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है।
   ii) **ऑडियो विजुअल तकनीक**–इनके द्वारा चीजों को देखने के साथ–साथ सुनने से भी समझा जा सकता है।
   iii) **मोशन पिक्चर**–इसे लाइब्रेरी में मास मीडिया कम्युनिकेशन के उपकरणों में प्रयोग किया जा सकता है। यह सूचना, शिक्षा और मनोरंजन का गतिशील स्रोत है।
   iv) **टीवी**–टेलीविजन पारंपरिक और पुरानी सूचना और संचार तकनीकों में से एक है।

v) **CATV (केबल टेलीविजन) प्रणाली**–यह उच्च क्षमता की एक वायर्ड संचार प्रणाली है जो एक केंद्रीय वितरण स्रोत से एक प्रमुख वितरण केबल के माध्यम से पड़ोसी लाइनों तक और अंत में घरों की लाइन में प्रवाहित होती है।

vi) **वीडियो डिस्क**–वीडियो कोड का उपयोग कम्प्यूटर प्रोग्राम, डिजिटल डेटाबेस, शैक्षिक वीडियो प्रोग्राम और इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशनों की एक श्रृंखला को प्रसारित करने के लिए किया जा सकता है।

vii) **वीडियोटेक्स्ट**–वीडियोटेक्स्ट एक नई तकनीक है, लेकिन ऑन–लाइन सूचना पुनप्राप्ति में, सूचना को कम्प्यूटर फाइलों में संग्रहीत किया जाता है और एक दूरसंचार लिंक के माध्यम से एक्सेस किया जाता है।

viii) **टेलेक्सटैक्स**–टेलीटेक्स्ट एक साथ उपयोगकर्ताओं की एक बड़ी संख्या के लिए एक तरह से सेवा है, जहाँ एक केंद्रीय डेटाबेस से जानकारी का भुगतान नियमित टेलीविजन सिग्नल के हिस्से के रूप में प्रसारित किया जाता है।

ix) **फैक्स (फेसिमाइल ट्रांसमिशन)**–यह एक छवि को इलेक्ट्रॉनिक संकेतों में परिवर्तित करने की एक विधि है जिसे संचार लिंक पर प्रेषित किया जा सकता है और प्राप्त संकेतों को अंत में एक छवि में वापस परिवर्तित किया जा सकता है।

x) **वॉइस मेल**–वॉइस मेल आने वाले वॉयरस मैसेज को डिजिटाइज करता है और बाद में रिट्रीवल के लिए स्टोर हो जाता है।

6) **उपग्रह तकनीकी**–उपग्रह, उन उपग्रहों में माइक्रोवेव संचरण का गठन होता है, जो पृथ्वी से लगभग 22,300 मील ऊपर अंतरिक्ष में स्थित होते हैं, पृथ्वी गोल संचार के लिए रिले स्टेशनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसमें इंटरनेट का प्रयोग करते हैं।

7) **नेटवर्क तकनीकी**–नेटवर्क का महत्त्वपूर्ण कार्य कम्प्यूटर और अन्य संचार उपकरणों को आपस में जोड़ना है ताकि डेटा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर तुरंत स्थानांतरित किया जा सके। साधारणतया कम्प्यूटर नेटवर्क तीन प्रकार के होते हैं–

   i) **WAN (वाइड एरिया नेटवर्क)**–यह किसी देश या राज्य, यानी इंटरनेट जैसे विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र को कवर करता है।

   ii) **LAN (लोकल एरिया नेटवर्क)**–यह सीमित भौगोलिक क्षेत्र जैसे परिसर या भवन को कवर करता है।

   iii) **MAN (मेट्रोपॉलिटन एरिया नेटवर्क)**–यह एक शहर और उसके वातावरण के भीतर साइटों को एक साथ जोड़ने के लिए डिजाइन किया गया है।

8) **प्रजनन प्रौद्योगिकी**–

   i) **रिप्रोग्राफिक तकनीकी**–यह दस्तावेजों के प्रजनन के लिए प्रौद्योगिकियों और उपकरणों से सम्बन्धित है।

   ii) **प्रिंटिंग तकनीकी**–प्रिंटर एक उपकरण है जो कम्प्यूटर आउटपुट को प्रिंटिंग इमेज में परिवर्तित करता है।

4.6.4. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियों का वर्गीकरण (Classification of ICTs)

सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियों का अस्तित्व प्राचीन काल से निरन्तर विकसित होता आया है।

अतः सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकों को इस आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1) परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकीयाँ (Traditional ICT)
2) आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकीयाँ (Modern ICT)

4.6.4.1. परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी (Traditional I.C.T.)

परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में निम्न प्रकार की सामग्री, उपकरण एवं साधनों का प्रयोग किया जाता है–

1) इसके अन्तर्गत मुद्रित साधन आते हैं। **जैसे**– पाठ्यपुस्तकें, सन्दर्भग्रन्थ पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ, विद्यालयी एवं सार्वजनिक पुस्तकालयों में उपलब्ध पठन सामग्री।
2) औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में प्राप्त मौखिक सूचनाएँ एवं ज्ञान भी परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में आता है।
3) चित्रात्मक शिक्षण सहायक साधन भी परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के अन्तर्गत आते हैं। **जैसे**– चार्ट, मानचित्र, चित्र, आरेख आदि।
4) त्रिआयामी शिक्षण सहायक साधन परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में आते हैं। **जैसे**– मॉडल, कठपुतलियाँ आदि।
5) दृश्य–श्रव्य शिक्षण सामग्री भी परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी है। **जैसे**– रेडियो, टेलीविजन, स्लाइड प्रोजेक्टर, ओवरहेड प्रोजेक्टर, चलचित्र आदि।

4.6.4.2. आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी (Modern I.C.T.)

आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर मीडिया तथा सम्प्रेषण प्रणालियों का मिश्रण है। इनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1) डिजिटल वीडियो कैमरा।
2) मल्टीमीडिया पर्सनल कम्प्यूटर।
3) वीडियो कार्ड तथा वेब कैमरे के साथ लैपटाप।
4) CD ROM एवं DVD।
5) एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर–वर्ड प्रोसेसर, स्प्रेडशीट।
6) L.C.D. प्रोजेक्टर अथवा D.L.P.।
7) कम्प्यूटर डेटाबेस।
8) पॉवर प्वाइन्ट प्रजेंटेशन।
9) डिजिटल लाइब्रेरी।
10) ई–मेल, इंटरनेट एवं (WWW) वर्ल्ड वाइड वेब।
11) हाईपरमीडिया तथा हाइपरटेक्स्ट स्रोत।
12) वीडियो टेक्स्ट, टेली टेक्स्ट, इण्टरएक्टिव वीडियो टैक्स्ट, इंटरएक्टिव रिमोट इन्स्ट्रक्शन।
13) दृश्य व श्रव्य कान्फ्रेन्सिंग (Audio-Video Conferencing)।
14) अंतःक्रियात्मक रिमोट अनुदेशन (Interactive Remote Instruction)।
15) आभासी कक्षा–कक्ष (Virtual Classroom)–E-learning, M-learning एवं Virtual Reality।

4.6.5. सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में नवीन प्रवृत्तियाँ (New Trends in Information and Communication Technology)

आई.सी.टी. को विकसित करने तथा इसको क्रान्ति का रूप देने में बहुत अधिक समय लगा। इसके विद्युतीकरण तथा विकास में **डेविड और राइट (David and Wright)** ने 1920 के दशक में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी उद्योग क्षेत्रों में विस्तृत परिवर्तन का सामना कर रहा है। आई.सी.टी. की वर्तमान प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1) **सार्वभौमिक रूप से उपयोग (Universal Use)**–आई.सी.टी. से सार्वभौमिक रूप से किसी भी समय, कहीं भी, किसी भी उपकरण को सूचना के लिए प्रयोग कर सकते हैं। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को एक स्थान पर सुरक्षित रखता है जिसे उपभोक्ता कहीं भी तथा किसी भी समय पर उपयोग में ला सकता है।

2) **गैर–मानव सम्प्रेषण पर बल (Emphasis on Non-Human Communication)**–सम्पूर्ण वस्तुओं के आदान–प्रदान में मानव की अहम् भूमिका होती है। मानव द्वारा ही प्रारम्भ में वस्तुओं एवं सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का कार्य होता था। वर्तमान सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी की प्रवृत्ति गैर मानव के द्वारा सम्प्रेषण पर बल देना है। सम्प्रेषण हेतु तकनीकी यन्त्रों पर पूर्ण रूप से निर्भर होना तथा मानव श्रम एवं समय का कम से कम प्रयोग ही इसकी प्रवृत्ति है।

3) **फाइबर नेटवर्क का प्रयोग (Use of Fibre Network)**–2014 से फाइबर नेटवर्क का प्रचलन है 3 जी/4 जी स्ट्रीमिंग, पॉडकास्ट एवं अन्य ब्राडबैण्ड सेवाओं में इसकी मांग बढ़ी है। यह सम्प्रेषण अवसंरचना के क्षेत्रों में एक नई सुविधा को प्रदान कर सेवाओं एवं उसकी गति में वृद्धि की।

4) **संज्ञानात्मक नेटवर्क, बड़ा डेटा (Cognitive Network, Big Data)**–संचार प्रणालियां एम्बडेड उपकरणों द्वारा उत्पन्न डेटा के द्वारा मोबाइल प्रयोगकर्ता, उद्यमों आदि को प्रासंगिक जानकारी प्रदान करता है। यह एक बड़ी मात्रा में सूचनाओं को ग्रहण करता है। एक वैश्विक आई.पी. प्रतिदिन 20 अरब अभिलेख को उत्पन्न कर सकता है अथवा दिखा सकता है। संचार प्रणाली में यह एक सकारात्मक विकास है। इसके द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में डेटा का आदान–प्रदान सम्भव हुआ है।

5) **साइबर सुरक्षा (Cyber Security)**–2014 में इंटरनेट के प्रयोग से सम्बन्धित घटना को प्रदर्शित किया गया। इसमें यह दिखाया गया कि इंटरनेट से कनेक्ट प्रत्येक सूचना, एप्लीकेशन को हैक (Hack) करके प्राप्त किया जा सकता है अथवा चुराया जा सकता है। दैनिक आधार पर वित्तीय संस्थाएँ सरकारी दस्तावेज, ऑनलाइन शॉपिंग के हैक करने तथा सूचना प्राप्त करने के सम्बन्ध में उसकी सुरक्षा हेतु साइबर सुरक्षा हेतु कानून बने हैं तथा ऐसा करने वाले के खिलाफ दण्ड का प्रावधान किया गया। इसके द्वारा साइबर अपराध को रोकने का प्रयास किया गया है।

6) **हरित सम्प्रेषण (Green Communication)**–मानव क्रियाओं के द्वारा सम्प्रेषण तकनीकियाँ 2 से 4 प्रतिशत कार्बन फुटप्रिन्ट (Carbon Footprint) उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं। इन सम्प्रेषण तकनीकियों के उत्सर्जित प्रतिशत पर ध्यान दिया गया तथा इसे हरित सम्प्रेषण में परिवर्तित करने पर बल दिया गया है। पर्यावरण के अनुकूल बैटरी अक्षय ऊर्जा स्रोत और ऊर्जा प्रणालियों को बुद्धिमत्तापूर्ण प्रबन्धन एवं निर्माण के द्वारा पर्यावरण संरक्षण एवं उसकी हानि से सुरक्षा का समाधान किया गया है।

7) **स्मार्टर स्मार्टफोन, कनेक्टेड सेन्सर्स (Smarter Smartphone, Connected Sensors)**–प्रारम्भ में स्मार्टफोन का प्रचलन, निर्माण एवं प्रयोग सीमित मात्रा में था। परन्तु आज दिन–प्रतिदिन इनका प्रयोग, सुधार और प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। इनमें विभिन्न प्रकार की विशेषताओं को सम्मिलित किया गया है तथा वर्तमान सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी को सरल तथा सर्वसुलभ बनाया गया है।

8) **हस्तान्तरण (Transmission)**–हस्तान्तरण से अभिप्राय सूचनाओं के सम्प्रेषण में प्रयुक्त तकनीकी से है। एक्सेस तकनीकी, हस्तान्तरण तकनीकी, स्विचिंग तकनीकी इत्यादि इसमें आते हैं। प्रसारण तकनीकी की वर्तमान प्रवृत्ति सूचनाओं को त्वरित गति से प्रदान करना, कम लागत तथा बेतार तकनीकी है।

9) **बेतार तकनीकी (Wireless Technologies)**–बेतार तकनीकी की प्रौद्योगिकी ने उच्च आवृत्तियों के उपयोग को सम्भव बनाया है। अति उच्च आवृत्ति **जैसे**– 26 GHz स्थानीय वायरलेस आवृत्ति लूप्स, 60 GHz कम दूरी के नेटवर्क तथा विभिन्न कठिन इंटरफेस की समस्याओं को हल किया गया है।

10) **नेटवर्क (Network)**–नेटवर्क तकनीकी में नेक्स्ट जेनरेशन नेटवर्क के प्रचलन की प्रवृत्ति है। एन.जी.एन. (Next Generation Networks) आवाज, वीडियो और डेटा एकल एकीकृत, ब्राडबैंड को नेटवर्किंग के प्रसारण का प्रतिनिधित्व करता है। मल्टीपल इंटरनेट की प्रवृत्ति ने कार्यक्रमों के प्रसारण आदि को सम्भव बनाया गया है।

उपर्युक्त सूचना एवं सम्प्रेषण की प्रवृत्तियाँ है जो आज के प्रचलन द्वारा सूचना एवं सम्प्रेषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहीं हैं।

4.7. प्रशासन में नवाचार के रूप में ई–गवर्नेंस (E-GOVERNANCE AS INNOVATION IN ADMINISTRATION)

4.7.1. परिचय (Introduction)

ई–गवर्नेंस या इलेक्ट्रॉनिक शासन का तात्पर्य है सरकारी सेवाओं और प्रक्रियाओं का सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का उपयोग करके प्रबन्धन करना है। सार्वजनिक प्रणाली प्रबन्धन हेतु आईसीटी के अनुप्रयोग को ई–गवर्नेंस कहा जाता है। यह शासन का एक रूप है जिसमें जनता के लिए इलेक्ट्रॉनिक सेवाओं के वितरण में शामिल प्रक्रियाओं और संरचनाओं का समावेश किया जाता है।

इसका उद्देश्य सरकारी कार्यों को अधिक पारदर्शी, प्रभावी और नागरिकों के लिए सुगम बनाना है। यह उद्देश्य, अंतः, प्रक्रियाओं को सरल बनाना, लोगों की भागीदारी को सक्षम करना तथा मेल, दूरसंचार एवं इंटरनेट के द्वारा शासन को सम्पूर्ण करता है। ई–गवर्नेंस की पहल की अलग–अलग अभिव्यक्तियाँ आईटी उपकरणों का उपयोग कर रही है। **जैसे**–

1) ई मेल,
2) इंटरनेट वेबसाइटों का प्रकाशन
3) ऑनलाइन परस्पर संवादात्मक कार्य विवरण
4) तार रहित अनुप्रयोग संलेख

5) लघु सन्देश सेवा (एम एम एस) संयोजकता
6) इंटरनेट विकास और उपयोग
7) नागरिक की पहुँच को बढ़ावा देना

ई–गवर्नेस के अन्तर्गत सरकारी कार्यों में पारदर्शिता को बढ़ाना, जिससे भ्रष्टाचार में कमी हो सके। यह एक आई टी संचालित सार्वजनिक एवं विकास प्रशासनिक प्रणाली है। आईसीटी के उपयोग के साथ–साथ ई–गवर्नेस परियोजनाओं में एक सहयोगात्मक और कुशल प्रशासनिक वातावरण तथा सरकारी सेवाओं के बेहतर वितरण की सुविधा हेतु सरकारी एजेंसियों, नागरिकों और व्यवसाय के लिए मल्टीमीडिया नेटवर्क तैयार किया जाता है।

ई.–शासन सार्वजनिक प्रणालियों के सन्दर्भ में है प्रोद्यौगिकी का उपयोग विशेष रूप से वेब आधारित इंटरनेट का अनुप्रयोग जनता, कर्मचारियों और सार्वजनिक संस्थाओं तथा हितधारकों की सार्वजनिक सेवाओं तक पहुँचाना और वितरण को बढ़ाने के लिए किया जाता है। यह प्रतिबद्धता–नागरिक और सहयोग के लिए कौशल एवं उच्च गुणवत्ता वाली प्रशासनिक सेवा सुनिश्चित करेगी, लागत कम करने, सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार, एवं सार्वजनिक प्रणाली प्रबन्धन में जनता की भागीदारी बढ़ाने के लिए सरकार की आन्तरिक प्रक्रियाओं को सरल और उपयोगी बना देगी।

ई–गवर्नेस का उपयोग करने से प्रशासनिक प्रणाली में आईसीटी कार्यान्वयन का निम्न प्रकार से विस्तार होता है–

1) ई–गवर्नेस के द्वारा प्रशासनिक प्रणाली में इसके सेवाओं के वितरण के साथ–साथ सरकार के गतिविधि कार्यों की प्रभावशीलता एवं दक्षता में पदोन्नति होती है।
2) सरकारी प्रक्रियाएँ स्पष्ट एवं खुली होती है, जिससे जनता का विश्वास बढता है एवं बेहतर जानकारी प्राप्त होती है। जनता और व्यापार हेतु सरकार की अधिक पारदर्शिता, सरकार द्वारा उत्पन्न किया जाता है।
3) लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को मजबूत करने के लिए नागरिकों एवं राज्य के मध्य सम्बन्धों में मौलिक परिवर्तन और सुधार करना आवश्यक होता है।
4) जिनकी सरकारें वेब–सक्षम होती है, उन देशों के मध्य, एक देश के अन्दर, एक ही सरकार एवं राज्य या स्थानीय सरकारों के अलग–अलग भागों के मध्य बेहतरीन बातचीत एवं सम्बन्ध शामिल है।

ई–गवर्नेस जनता और सरकार के मध्य उचित संचार को प्रोत्साहित करता है। ई–गवर्नेस के माध्यम से सरकारी कार्यालयों में अकेले पीछे खड़े कार्यालय संचालन के सरल कंप्यूटरीकरण से कहीं आगे निकल जाता है, अर्थात् ये सरकारी कार्यों जैसे–कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका हेतु उत्तरदायित्वों का एक नया और क्रमबद्ध तरीके से सुव्यवस्थित करता है।

प्रारम्भिक समय में, ई–गवर्नेस कार्यकारी सरकारी विभागों के माध्याम से राज्य वेबसाइटों के वर्णित प्रसंग में जनता को सूचना सेवाएँ प्रदान करने के साथ प्ररम्भ होती है, इन वेबसाइटों से सम्बन्धित विभाग एवं उसके उद्देश्यों, लक्ष्यों, (चार्टर्स), संगठनात्मक विवरण, नागरिकों के घोषणा पत्र, उपलब्ध सुविधाएँ एवं सेवाओं के साथ–साथ नागरिकों को प्रदान की जाने वाली फीस, आदि के बारे में अभिज्ञता प्रदान करती हैं।

4.7.2. ई–गवर्नेस के चरण (Stages of e-Governance)

ई–गवर्नेस मुख्य रूप से संचार प्रौद्योगिकी एवं कम्प्यूटर नेटवर्किंग प्रणाली के विकास से सम्बन्धित है। विकासशील देशों में ये प्रणाली विकसित देशों की अपेक्षा देर से उपलब्ध हुई है। हालाँकि भारत के मामले में 1980 के बाद अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से लेकर ई–गवर्नेस के क्षेत्र में आधुनिक प्रौद्योगिकियों एवं अवसरों की उपलब्धता के सम्बन्ध में आधार ग्रहण किया गया है। अर्थात् सामान्य तौर पर कहा जाए तो भारतीय अनुभव यह दर्शाता है, कि ई–गवर्नेस की शुरूआत निम्न चरणों के माध्यम से आगे बढ़कर हुई है–

1) **कम्प्यूटरीकरण**–पहले चरण में पर्सनल कम्प्यूटरों के विकास से बड़ी संख्या में सरकारी कार्यालयों में कम्प्यूटरों की उपलब्धता हुयी है। कम्प्यूटरों का प्रयोग शब्द संसाधन और उसके बाद शीघ्रतापूर्वक आंकड़ा संसाधन से प्रारम्भ हुआ है।

2) **नेटवर्किंग**–इस चरण में ई–गवर्नेस के अन्तर्गत कुछ सरकारी संगठनों के मध्य आंकड़ों के प्रवाह से हब के द्वारा कुछ यूनिटों को सूचना की भागीदारी से जोड़ा गया है।

3) **ऑनलाइन उपस्थिति**–बढ़ते हुए इण्टरनेट सम्पर्क से वेब पर उपस्थिति बनाए रखने की जरूरत महसूस हुई। इससे सरकारी विभागों एवं अन्य संगठनों द्वारा वेबसाइट का अनुरक्षण किया गया। सामान्यतः इन वेबसाइट/वेब पेज में संगठनात्मक संरचना, रिपोर्ट और प्रकाशन, उद्देश्य, सम्पर्क के ब्यौरे तथा सम्बन्धित सरकारी संगठनों के कल्पनादृष्टि विवरण से सम्बन्धित सूचनाएँ दी गई थी।

4) **ऑनलाइन परस्पर सम्पर्क**–इस चरण में मुख्य उद्देश्यों को डाउनलोड करने योग्य नियमों, प्रपत्रों, अधिनियम एवं अनुदेश आदि को प्रदान करने के साथ–साथ सरकारी संगठनों के द्वारा वैयक्तिक अन्तरापृष्ठ की सम्भावना को कम करना था। इसके माध्यम से ऑनलाइन उपस्थिति का स्वाभाविक परिणाम जनता एवं सरकारी संगठन, नागरिक समाज संगठन आदि के मध्य संचार के मार्ग खुलने के समय था। इससे प्रपत्रों की ऑनलाइन प्रस्तुति एवं अधिकांश जनता–सरकार लेन–देनों में ई–गवर्नेस मार्ग पर रखे जाने की क्षमता होती है।

4.7.3. ई–गवर्नेस के प्रमुख स्तम्भ (Major Pillars of e-Governance)

जनता को सरकारी सेवाओं एवं सूचनाओं को आसानी से पहुँच प्रदान करने हेतु ई–गवर्नेस का प्रयोग किया जाता है। ई–गवर्नेस नागरिकों की शासन भागीदारी बढ़ाने के लिए सरकार एवं सार्वजनिक क्षेत्र के अलग–अलग स्तरों पर सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (ICT) का उपयोग किया जाता है। ई–गवर्नेस के चार प्रमुख स्तम्भ हैं–

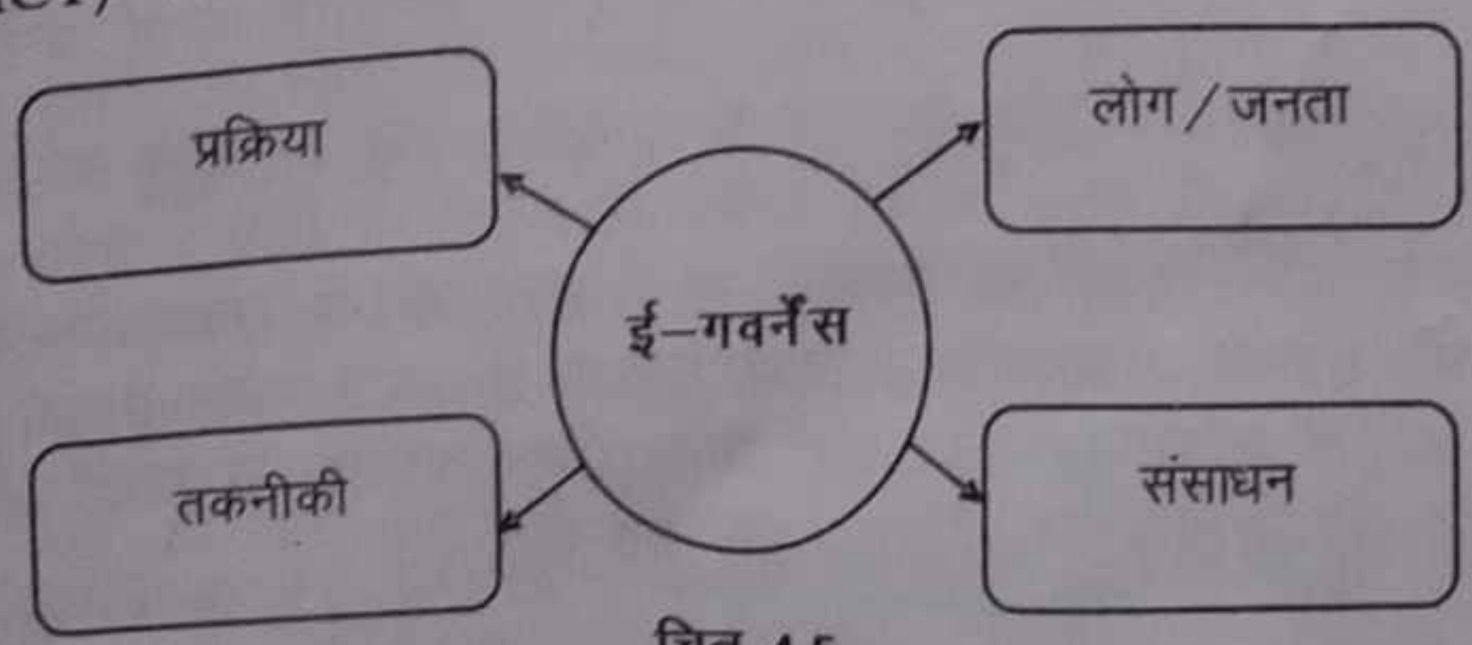

चित्र 4.5

4.7.4. ई–गवर्नेस में आईसीटी का उपयोग (Use of ICT in e-Governance)

'ई.–गवर्नेस', शासन में पदोन्नति के उद्देश्य से सरकार एवं सार्वजनिक क्षेत्र के अलग–अलग स्तरों पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों (ICT) (जैसे– इंटरनेट, वाइड एरिया नेटवर्क एवं मोबाइल कम्प्यूटिंग) का उपयोग करना है। वर्तमान समय में, नागरिक सरकार से अधिक उत्तरदायीएवं कुशल सेवाओं की मांग कर रहे हैं। जिससे सम्पूर्ण विश्व की सरकारें सार्वजनिक सेवाओं को पहुँचाने हेतु स्वयं को मजबूत करने तथा अभिनव समाधान तैयार करने का प्रयास कर रही है। सेवा वितरण जनता के लिए किसी भी सरकार के उत्तरदायित्व के प्रमुख्य घटक होते है परम्परागत रूप से, कुछ सेवाएँ सरकार के माध्यम से बूथ और काउंटर स्थापित करके प्रदान की जाती हैं, साथ ही उपयोगिता बिलों और अन्य के भुगतान हेतु पोस्ट ऑफिस जैसे चैनल भी प्रदान किए गए हैं। आईसीटी के आने के साथ, सरकारों को जनता के लिए अधिक कुशल एवं उत्तरदायी सेवाएँ प्रदान करने के लिए अब इन तन्त्रों को आकर्षित करने की अधिक आवश्यकता है। सरकारों में आईसीटी के प्रयोग के माध्यम से सेवा वितरण में सुधार करने का उद्देश्य सामान्यतः मुख्य चार आयामों पर इस प्रकार से है–

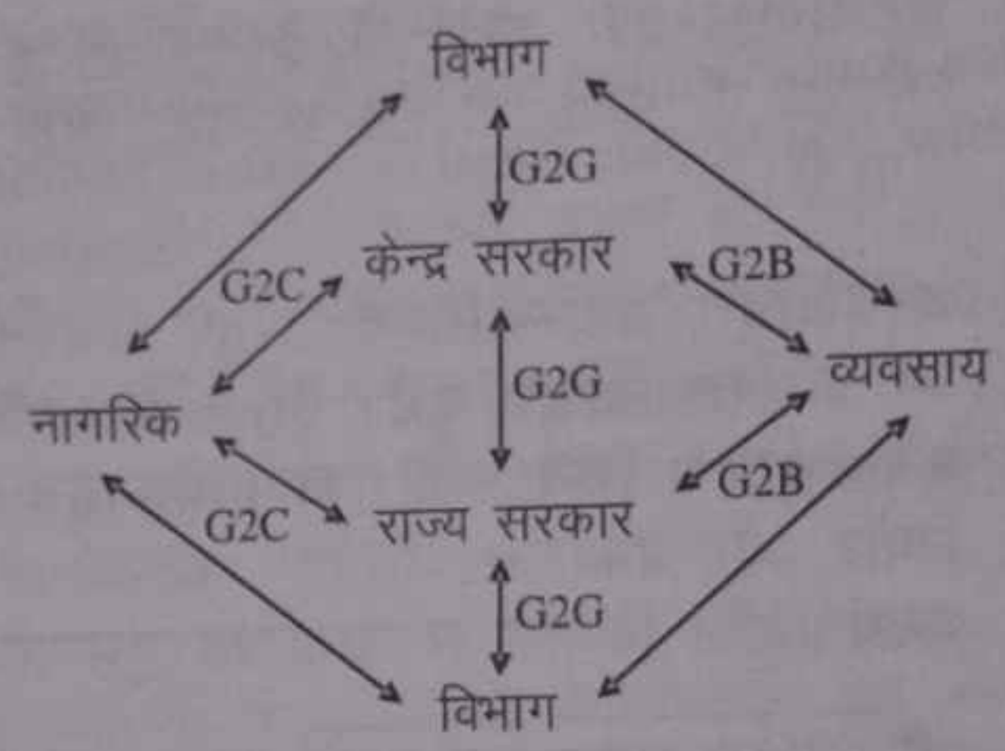

1) **सरकार से नागरिक (Government to Citizen-G2C)**– सूचना संचार प्रौद्योगिकी आईसीटी का उपयोग करके जनता को सीधे सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। ई–गवर्नेस मुख्यतः उच्च गुणवत्ता वाली सरकारों की सेवाओं और सूचनाओं को जनता तक सरल तरीके से पहुँचाने हेतु उनके अनुकूल वन स्टॉप केन्द्रों (One Stop Centres) को विकसित करने पर आधारित है। अतः तकनीकी का प्रयोग करते हुए सरकार एवं नागरिक के मध्य एक सशक्त सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है G2C गवर्नेस के कुछ प्रमुख उदाहरण कर भुगतान आधार कार्ड व अन्य सेवाओं के लिए आवेदन, टीकाकरण एवं पंजीकरण आदि हैं।

2) **सरकार से व्यापार सम्बन्ध (Government to Business-G2B)**– इस व्यवस्था के अंतर्गत केन्द्र सरकार या राज्य सरकार तथा वाणिज्यिक व्यापार क्षेत्र के बीच ऑनलाइन गैर–व्यावसायिक सम्पर्क आते हैं। इसका उद्देश्य व्यावसायिक संस्थानों को ई–व्यवसाय के सर्वोत्तम तरीकों पर जानकारी और परामर्श देना है। इस व्यवस्था के माध्यम से व्यापार में आने वाली कठिनाईयों का समाधान किया जाता है।

नवीन जानकारियाँ दी जाती हैं तथा ई–व्यवसाय हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ बनाई जाती हैं। व्यवसाय में सफलता की संभावनाएँ बढ़ाने के लिए सरकार विभिन्न प्रकार के आवश्यक आर्थिक जनसांख्यिकीय और अन्य आँकड़े एकत्र करके व्यवसायिक संस्थानों को इसकी जानकारी उपलब्ध कराती है। इस व्यवस्था का उद्देश्य कम लागत में अधिक उत्पादकता है। यह व्यवस्था व्यावसायिक संस्थाओं और सरकार के बीच सम्पर्क को आसान एवं सुविधाजनक बना देती है।

3) **सरकार से सरकार सम्बन्ध (Government to Government-G2G)**– यह व्यवस्था केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों अथवा दो या दो से अधिक राज्य

सरकारों, एक राज्य के सरकारी संगठनों विभागों और प्राधिकरणों के मध्य ऑनलाइन सम्पर्क स्थापित करने का कार्य करता है। इससे प्रत्येक स्तर होता है, शासकीय कार्यों में तीव्रता आती है और समय की बचत होती है।

4) **शासन से कर्मचारी सम्बन्ध (Government to Employee-G2E)**–ई–गवर्नेंस के डिलीवरी मॉडल के चार प्रमुख तत्त्वों में से एक शासन और कर्मचारी की साझेदारी है। नई तकनीक (ऑनलाइन) के माध्यम से कम्प्यूटर का प्रयोग करते हुए कर्मचारियों के साथ ई–गवर्नेंस सम्बन्ध बनाया जाता है। ई–गवर्नेंस के द्वारा कर्मचारी सभी कार्य कागज रहित, किसी दस्तावेज को प्रिंट किए बिना, फैक्स के बजाय ऑनलाइन (इण्टरनेट के माध्यम से) साझा (share) करके दुनिया भर के सहयोगियों को भेजा जा सकता है।

उपरोक्त आयामों में ई–गवर्नेंस का उद्देश्य सरकारी प्रक्रियाओं को अधिक पारदर्शी, प्रभावी एवं जनता के लिए सरल बनाना है। यह उपयोगकर्ताओं के समूहों तक पहुँचाने हेतु ई–गवर्नेंस द्वारा सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों के उपयोग से कई सरकारों को प्रमुख परिवर्तन प्रक्रियाओं पर ले जाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

4.7.5. डिजिटल शासन (Digital Governance)

डिजिटल शासन ई–गवर्नेंस का एक मॉडल है। डिजिटल गवर्नेंस सिस्टम लोगों और सरकारों को आपस में जोड़ने के लिए इंटरनेट का एक साधन के रूप में उपयोग करता है। विकासशील देशों में यह मॉडल अभी प्रारंभिक स्तर पर है। यह प्रमुख रूप से सरकारी प्रक्रियाओं के संदर्भ में है इसमें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी और सार्वजनिक सेवाओं तक उनकी पहुँच सुनिश्चित करता है। ये ई–गवर्नेंस मॉडल स्थानीय परिस्थितियों और इनके माध्यम से किए गए शासन कार्यों पर आधारित अनेक भिन्नताओं का प्रदर्शन करते हैं। ये मॉडल नागरिक शासन संबंधों की प्रकृति को बदल कर शासन के वर्तमान स्वरूपों में मौलिक परिवर्तन लाते हैं, और शासन प्रक्रियाओं को प्रभावित करने के लिए नए तंत्रों को विकसित करते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के अभिनव अनुप्रयोगों पर वर्तमान रुझान निम्नवत है–

1) शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक सेवाओं के लिए गतिशील तकनीकों का व्यापक स्तर पर उपयोग।
2) समाज के अशक्त समूहों जैसे विकलांग, महिलाओं, बुजुर्गों तथा युवाओं के मध्य डिजिटल विभाजन को कम करने वाले अनुप्रयोगों को विकसित करने एवं अपनाने के प्रयासों में वृद्धि डाटा और सार्वजनिक नीति संवाद दोनों में सभी क्षेत्रों द्वारा व्यापक सरकारी दृष्टिकोण को अपनाना।

सुशासन प्राप्त करने के लिए भारत सहित विश्व के अनेक विकासशील देशों ने बेहतर सार्वजनिक सेवा प्रबंधन के हित में नई तकनीकों की शुरुआत की है। सुशासन के प्रमुख दो लक्ष्य निम्न हैं।

1) प्रशासन को उत्तरदायी एवं नागरिकों के अनुकूल बनाना है।
2) सूचना के अधिकार और पारदर्शिता को सुनिश्चित करना।

सुशासन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करती है। भारत में सुशासन स्थापित करने के साथ–साथ शासन की प्रक्रियाओं के सभी स्तरों पर सुधार करने की कार्यनीति के रूप में इसका व्यापक उपयोग किया जा रहा है।

4.7.6. भारत में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के तहत ई–गवर्नेंस के नवीन प्रयास (Innovative Approaches to E-Governance under ICT in India)

भारत में बढ़ता इंटरनेट का प्रयोग तीव्रगति से तकनीक एवं प्रौद्योगिकी को अपनाने और उच्च विक्रय के विभिन्न तकनीकी उपकरणों जैसे–स्मार्ट फोन, टेबलेट आदि से समाज के सामाजिक–आर्थिक मानकों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। 2006 में भारत सरकार द्वारा लागू की गई राष्ट्रीय ई–शासन योजना (NeGP) का मुख्य उद्देश्य सभी सरकारी सेवाओं को सस्ती कीमत पर नागरिकों तक पहुँचाना और पारदर्शिता, दक्षता एवं विश्वसनीयता सुनिश्चित करना करना है। NeGP ने कई ई–शासन पहलों को सक्षम बनाया है, जिनकी चर्चा निम्न बिंदुओं में की गई है–

1) भारत के लिए ई–गवर्नेंस अपेक्षाकृत एक नई अवधारणा है। सर्वप्रथम 1977 में देश के सभी जिला कार्यालयों को कम्प्यूटरीकृत करने के लिए राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (NIC) ने जिला सूचना प्रणाली कार्यक्रम शुरू किया था।
2) वर्ष 1987 में भारत में पहली बार राष्ट्रीय उपग्रह–आधारित कंप्यूटर नेटवर्क (NICENET) लॉन्च किया गया था।
3) राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना (NeGP) देश भर में ई–गवर्नेंस पहलों पर एक व्यापक दृष्टि रखती है और उन्हें सामूहिक रूप से एकीकृत करती है।
4) भारत में ई–गवर्नेंस की अवधारणा के आसपास, एक वृहद राष्ट्रीय बुनियादी ढाँचा विकसित हो रहा है जो सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचता है। इसके अन्तर्गत इंटरनेट तक पहुँच को सरल एवं सुनिश्चित करने के लिए व्यापक डिजिटलीकरण हो रहा है।
5) राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना (NeGP) का अंतिम लक्ष्य सार्वजनिक सेवाओं को सभी नागरिकों के लिए सुलभ कराना है।

वर्तमान में राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना (NeGP) ने भारत में अनेक ई–गवर्नेंस पहलों को सफल बनाया है, जिनमें शामिल हैं–

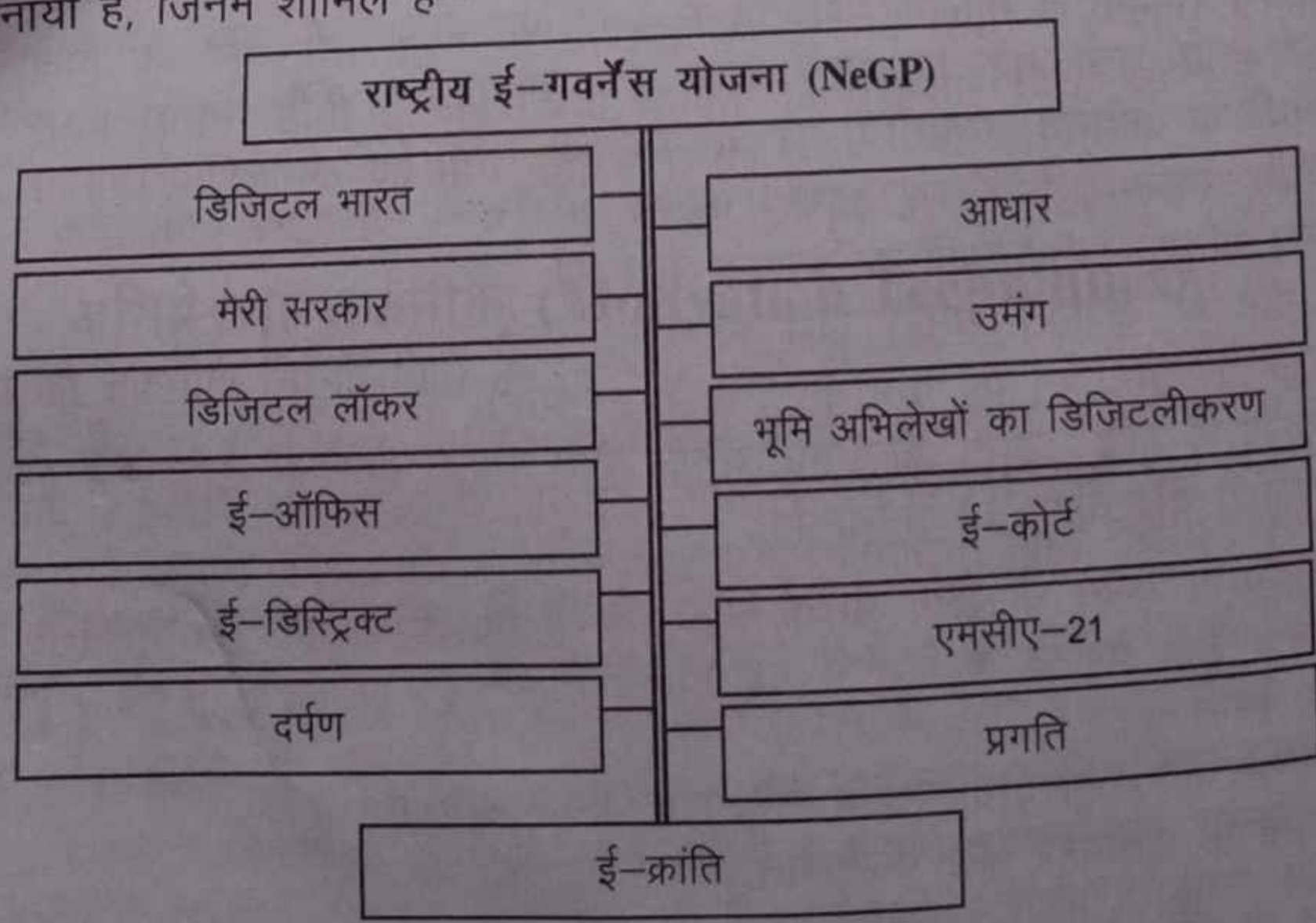

4.7.6.1. डिजिटल भारत (Digital India)

यह भारत सरकार द्वारा वर्ष 2015 में शुरू किया गया एक फ्लैगशिप कार्यक्रम है, जिसका प्रमुख उद्देश्य है– इंटरनेट संयोजकता को बढ़ाना, बेहतर ऑनलाइन

आधारिक संरचना के माध्यम से नागरिकों तक सरकारी सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना और तकनीकी क्षेत्र में देश को डिजिटल रूप से सशक्त बनाना है। डिजिटल भारत पहल का लक्ष्य समूचे देश के नागरिकों के जीवन में सकारात्मक बदलाव लाना है। इसके दो मुख्य घटक हैं–स्थायी एवं सुरक्षित डिजिटल आधारित संरचना का विकास एवं सभी सरकारी सेवाओं को सार्वभौमिक डिजिटल साक्षरता प्रदान करना। डिजिटल भारत कार्यक्रम के तहत निम्नलिखित तीन मुख्य दृष्टि क्षेत्रों को प्राप्त करने की परिकल्पना की गई है–

1) **प्रत्येक नागरिक के लिए उपयोगिता के रूप में बुनियादी ढाँचा**–इस पहल से आशय स्थाई तौर पर ब्रॉडबैंड, मोबाइल नेटवर्क अथवा वाई–फाई हॉटस्पॉट के माध्यम से संयोजकता प्रदान करने के उद्देश्य से है। आजीवन वैधता के साथ प्रत्येक नागरिक को एक विशिष्ट पहचान प्रदान की जाएगी, जिसे डिजिटल बैंकिंग को सक्षम बनाने के लिए मोबाइल नंबर और बैंक खाते के साथ जोड़ा जा सकता है। इसके साथ ही सामान्य सेवा केंद्रों (CSCs) तक पहुँच आसान की जाएगी और सार्वजनिक क्लाउड सर्वर (PCS) पर साझा करने योग्य क्लाउड स्पेस प्रदान किया जाएगा।

2) **माँग पर शासन एवं सेवाएँ**–इस पहल का उद्देश्य विभिन्न सरकारी विभागों और न्यायालयों में निर्बाध एकीकरण को सक्षम बनाना तथा ऑनलाइन और मोबाइल प्लेटफार्म पर सेवाएँ उपलब्ध कराना है। इसके माध्यम से वित्तीय लेनदेन को कैशलेस व डिजिटल बनाया जाएगा, और क्लाउड पर पात्रता (अधिकार) उपलब्ध होगी। इससे भारत में व्यवसाय करने में सरलता होगी और स्थिति में सुधार आएगा।

3) **नागरिक का डिजिटल सशक्तीकरण**–इस पहल के माध्यम से डिजिटल प्लेटफॉर्म उपकरणों का उपयोग करने के लिए नागरिकों को सार्वभौमिक डिजिटल साक्षरता प्रदान की जाएगी। डिजिटल संसाधनों तक उनकी पहुँच सुनिश्चित की जाएगी, जहाँ सभी दस्तावेज डिजिटल रूप में क्लाउड पर उपलब्ध होंगे। विभिन्न सरकारी सेवाएँ स्थानीय भाषाओं में प्रदान की जाऐंगी तथा नागरिकों को शासन द्वारा भागीदारी के लिए एक मंच उपलब्ध कराया जाएगा। डिजिटल भारत का उद्देश्य वस्तुतः भारत के सभी नागरिकों को सुविधापूर्वक एवं सरलता से सरकार के साथ सहभागिता करने के लिए सशक्त बनाना है।

Digital India
Power to Empower

4.7.6.2. आधार (Aadhaar)

आधार भारत के नागरिकों को यूआईडीएआई (UIDAI) द्वारा जारी विशिष्ट पहचान संख्या है। जो व्यक्ति के बायोमेट्रिक डेटा के आधार पर पहचान एवं निवास के प्रमाण के रूप में कार्य करता है। आधार प्रणाली देश के सभी नागरिकों के लिए ऑनलाइन और ऑफलाइन पहचान सत्यापन के लिए एकल बिंदु के रूप में कार्य करती है।

AADHAAR

4.7.6.3. मेरी सरकार (Mygov.in)

MyGov.in , एक नागरिक पोर्टल है, जिसके कार्य और उद्देश्य निम्नवत हैं–

1) भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने "अच्छी सरकार" प्रयास (सूरज) से जनता को जोड़ने के लिए mygov.nic.in नामक एक इंटरनेट प्लेटफार्म की शुरूआत की थी।

2) MyGov.in एक प्रौद्योगिकी आधारित मंच है जो सभी को सुशासन में भाग लेने की अनुमति देता है।
3) जुलाई 2014 में भारत सरकार ने नागरिक जुड़ाव के लिए MyGov.in प्लेटफॉर्म की शुरुआत भारतीय नागरिकों को अपने राष्ट्र के शासन और विकास में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए की थी।

4.7.6.4. उमंग (Umang)

UMANG प्लेटफॉर्म को भारत सरकार द्वारा नवंबर 2017 में लॉन्च किया गया था, ताकि सभी भारतीय नागरिकों को पैन–इंडिया ई–गवर्नेंस सेवाओं का उपयोग करने के लिए केंद्र से लेकर स्थानीय सरकारी निकायों तक एक मंच प्रदान किया जा सके।

4.7.6.5. डिजिटल लॉकर (Digital Locker)

जुलाई 2015 में लॉन्च किया गया डिजिलॉकर डिजिटल इंडिया की एक प्रमुख पहल है, इसका उद्देश्य नागरिकों को आधार, पैन, मार्कशीट, और डिग्री सर्टिफिकेट जैसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने की सुविधा प्रदान कर भारत को डिजिटल रूप से सशक्त समाज में परिवर्तित करना है।

4.7.6.6. भूमि अभिलेखों का डिजिटलीकरण (Digitisation of Land Records)

भू–अभिलेखों का डिजिटलीकरण यह सुनिश्चित करता है, कि भूस्वामियों को उनकी संपत्ति से सम्बन्धित दस्तावेजों की डिजिटल एवं अद्यतित प्रतियाँ प्राप्त हो सकें।

4.7.6.7. ई–ऑफिस (e-Office)

ई–ऑफिस पोर्टल का कार्य अधिक कुशल एवं पारदर्शी अंतर–सरकारी प्रक्रियाओं को सुगम बनाकर शासन का सहयोग करना है। इसका लक्ष्य सभी सरकारी कार्यालयों को कुशल, प्रभावी, उत्तरदायी एवं पारदर्शी बनाना है।

4.7.6.8. ई–कोर्ट (e-Courts)

ई–कोर्ट पहल की शुरूआत न्याय विभाग तथा कानून और न्याय मंत्रालय ने की थी। ई–कोर्ट मिशन मोड प्रोजेक्ट एक राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस प्रोजेक्ट है, इसका उद्देश्य देश की विभिन्न जिला एवं अधीनस्थ अदालतों की सूचना और संचार प्रौद्योगिकी क्षमताओं में सुधार करना है। ई–कोर्ट परियोजना के तहत देश की 18,735 जिला और अधीनस्थ अदालतों को पहले ही डिजिटलाइज किया जा चुका है।

4.7.6.9. ई–डिस्ट्रिक्ट (e-District)

ई–डिस्ट्रिक्ट राष्ट्रीय ई–गवर्नेंस योजना के अर्न्तगत राज्य की मिशन मोड परियोजनाओं एवं सरकार–से–उपभोक्ता पहलों में से एक है, इसका उद्देश्य नागरिकों को सामान्य सेवा केंद्रों के माध्यम से इलेक्ट्रॉनिक रूप से पहचान की गई नागरिक–केंद्रित सेवाओं को प्रदान करना है। इसके लिए एंड्रॉइड प्लेटफॉर्म पर एक मोबाइल ऐप नेशनल ई–डिस्ट्रिक्ट सर्विस ट्रैकर, बनाया गया है, जो सभी नागरिकों को ई–डिस्ट्रिक्ट एप्लिकेशन के साथ मोबाइल व टैबलेट जैसे उपकरणों के माध्यम से बातचीत करने की सेवा प्रदान करेगा।

4.7.6.10. एमसीए–21 (MCA-21)

भारत सरकार के कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय (MCA) ने जनता, कॉर्पोरेट संस्थाओं, और पेशेवरों को MCA सेवाओं तक आसान और सुरक्षित पहुँच प्रदान करने के लिए MCA21 प्रोजेक्ट लॉन्च किया है। MCA-21 परियोजना के हिस्से के रूप में कंपनी अधिनियम 1956 के तहत कानूनी आवश्यकताओं के अनुपालन और प्रवर्तन से सम्बन्धित सभी प्रक्रियाएँ स्वचालित होंगी।

4.7.6.11. दर्पण (DARPAN)

दर्पण को समूचे देश में परियोजनाओं की विश्लेषणात्मक समीक्षा के लिए डैशबोर्ड के रूप में बनाया गया है, यह जटिल सरकारी डेटा को आकर्षक दृश्यों में परिवर्तित कर देता है। यह वेब सेवाओं के माध्यम से प्रोग्रामिंग के बिना आवश्यक उपकरण के साथ वास्तविक समय, गतिशील परियोजना निगरानी प्रदान करने के लिए तकनीकी प्रशासन प्रदान करता है। जिला स्तर की परियोजनाओं की बेहतर समझ बनाने के लिए यह रुझानों की पहचान करके डेटा में ड्रिल करता है। दर्पण विभिन्न डेटा स्रोतों को एक केंद्रीकृत एवं उपयोगकर्ता के अनुकूल प्लेटफॉर्म पर समेकित करके विश्लेषणात्मक क्षमताओं में वृद्धि करता है।

4.7.6.12. प्रगति (PRAGATI)

भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 25 मार्च 2015 को महत्वाकांक्षी बहुउद्देश्यीय और बहु–मॉडल मंच "प्रो–एक्टिव गवर्नेंस एंड टाइमली इम्प्लीमेंटेशन" (प्रगति) का शुभारंभ डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के हिस्से के रूप में किया था। यह प्रमुख हितधारकों के लिए वास्तविक समय उपस्थिति और विनिमय के माध्यम से ई–पारदर्शिता और ई–जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत प्रणाली है। प्रगति पहल अंतर–विभागीय संचार अंतराल तथा योजना एवं परियोजना कार्यान्वयन के लिए आवश्यक समय को कम करके मुद्दों को संबोधित और हल करने में प्रभावी साबित हुई है।

4.7.6.13. ई–क्रांति (e-Kranti)

भारत सरकार देश को डिजिटल रूप से सशक्त समाज और ज्ञान अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने के लिए एक व्यापक भूमिका निभाने वाले डिजिटल इंडिया कार्यक्रम को विशेष प्राथमिकता देती है। ई–क्रांति को लागू करना डिजिटल इंडिया और देश में ई–गवर्नेंस, और गुड गवर्नेंस के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। ई–क्रांति सीधे तौर पर डिजिटल इंडिया कार्यक्रम के स्तंभ 4 और 5 से जुड़ी हुई है, जिसे 'ई–गवर्नेंस–रिफॉर्मिंग गवर्नमेंट थ्रू टेक्नोलॉजी' और 'ई–क्रांति इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी ऑफ सर्विसेज' कहते हैं। राष्ट्रीय ई–सरकार योजना 2.0– "ट्रांसफॉर्मिंग ई–गवर्नेंस फॉर ट्रांसफॉर्मिंग गवर्नेंस" ई–क्रांति का उद्देश्य है। राज्य स्तर पर डिजिटलीकरण के लिए की गई कुछ प्रमुख ई–गवर्नेंस पहलें इस प्रकार हैं–

1) **ई–सेवा (e-Seva)**
   i) ई–सेवा आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा की गई एक पहल है, जो विकास और शासन के सभी पहलुओं में सूचना प्रौद्योगिकी को शामिल करके राज्य को एक ज्ञानी समाज में परिवर्तित कर रही है।
   ii) ई–सेवा पोर्टल "सरकार से नागरिक" तथा "ई–व्यवसाय से नागरिक" दोनों सेवाएँ प्रदान करता है, यह उपयोगिता बिलों के भुगतान के अतिरिक्त लाइसेंस, प्रमाण पत्र और परमिट जारी करने की सेवाएँ भी देता है।

2) **खजाने (Khajane)**
   i) खजाने कर्नाटक राज्य सरकार द्वारा राज्य की ट्रेजरी प्रणाली को डिजिटल बनाने के लिए की गई एक प्रमुख ई–गवर्नेंस पहल है।
   ii) यह सरकार–से–सरकार (G2G) की ई–गवर्नेंस पहल है इसका उद्देश्य राज्य के वित्तीय प्रबंधन में सुधार करना है।

3) **भूमि (Bhoomi)**–यह कर्नाटक के किसानों के लिए ग्रामीण भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकृत वितरण के लिए एक आत्मनिर्भर सिंगल विंडो ई– गवर्नेंस पोर्टल है।

4.7.7. राजस्थान में ई–गवर्नेंस (e-Governance in Rajasthan)

राजस्थान ई–गवर्नेंस में सरकारी सेवाओं को सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ITC) का उपयोग करके सामान्य नागरिकों तक पहुँचाया गया है। ई–गवर्नेंस राजस्थान के प्रशासन एवं प्रशासनिक सुधार कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। राजस्थान में ई–गवर्नेंस के प्रमुख कार्यक्रम एवं सेवाएँ निम्नवत् हैं–

तालिका 4.1– राजस्थान में ई–गवर्नेंस सेवाएँ

क्र.सं. (S.No.)	कार्यक्रम (Program Name)	संक्षिप्त विवरण (Summary)
1)	प्रत्येक नागरिक के लिए ई–गवर्नेंस (e-Governance)	नागरिकों के लिए स्वचालित सेवाएँ (ई–मित्र / राजसंपर्क), सरकारी अधिकारियों के लिए (HRMS/e-Office/IFMS/ Procurement)
2)	राजस्थान स्टेट डाटा एवं नेटवर्क ऑपरेटिंग सेंटर (RSDNOC)	200 से अधिक वेबसाइट्स, पोर्टल और एप्लीकेशन की होस्टिंग, 100mbps डेडिकेटेड कनेक्टिविटी
3)	राज मेघ– द राजस्थान क्लाउड (Raj Megh– The Rajasthan Cloud)	सॉफ्टवेयर के रूप में (Software as a Service) प्लेटफार्म एक सेवा के रूप में (Platform as a Service enablement)
4)	राज नेट– द राजस्थान नेटवर्क (Raj Net– The Rajasthan Network)	राज्य से लेकर ग्राम पंचायत स्तर तक LAN/SWAN/Broadband/Over-the-air/ Satellite के माध्यम से सहज सम्पर्क
5)	राजधारा–द राजस्थान जीआईएसएस– डीएसएस (Raj Dhara– The Rajasthan GISS-DSS)	सभी सरकारी विभागों एवं संगठनों द्वारा शेयर की गई, राजस्थान के लिए एक भौगोलिक सूचना प्रणाली व्यवस्था
6)	राज सेवा द्वार– राजस्थान सेवा वितरण गेटवे (Raj Seva Dwaar– The Rajasthan Service Delivery Gateway)	सभी राज्यों से सम्पर्क स्थापित करने वाला– सभी राष्ट्रीय, राज्यकीय और निजी सिस्टम को एक साथ integrate करने वाला गेटवे

7)	राजस्थान एकल साइन ऑन और राज्य पोर्टल (Rajasthan Single Sign On (SSO) and State Protal)	एक व्यक्ति, एक पहचान – राज्य के प्रत्येक नागरिक के लिए सेट किए गए डेटा और दस्तावेज के साथ मैप (Map)
8)	राज ई–वॉल्ट– एंड टू एंड डॉक्यूमेंट मैनेजमेंट सिस्टम (Raj e-Vault– End to End Document Management System)	राज ई–वॉल्ट का उपयोग करने अथवा सेवा लेने पर दस्तावेजों और हलफनामाओं की कोई आवश्यकता नहीं होती।
9)	राज ई–साइन (Raj e-Sign)	कस्टमाइज्ड क्यूआर (QR) और फोटो सक्षम (Photo Enabled) डिजिटल हस्ताक्षर प्रणाली
10)	राज एईएम (Raj AEM)	उपक्रम वेब कंटेंट प्रबन्धन प्लेटफार्म (Web Content Management Platform)
11)	आरएएएस (RAAS)	बॉयोमिट्रिक और जीपीएस (GPS) मॉनिटरिंग उपस्थिति प्रणाली

4.7.8. ई–गवर्नेंस के लाभ (Benefits of e-Governance)

ई–गवर्नेंस सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के रचनात्मक उपयोग द्वारा सुगम शासन में सुधार से सम्बन्धित है। ई–गवर्नेंस से प्रत्याशित लाभ निम्नलिखित हैं–

1) **नागरिकों के लिए सूचना और गुणवत्तापूर्ण सेवाओं तक बेहतर पहुँच**–शासन के विभिन्न पहलुओं पर आईसीटी समय पर और विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध कराएगा। शुरुआती चरण में शासन के सरल पहलुओं जैसे कि फॉर्म, कानून, नियम, प्रक्रिया आदि के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी, बाद में रिपोर्ट (प्रदर्शन रिपोर्ट सहित), सार्वजनिक डेटाबेस, निर्णय लेने की प्रक्रिया आदि सहित विस्तृत जानकारी तक दी जाएगी। ई–गवर्नेंस का अंतिम उद्देश्य जीवन–चक्र दृष्टिकोण अपनाकर नागरिकों तक पहुँचना है, अर्थात् नागरिकों को जन्म से मृत्यु तक आवश्यक सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करना।

2) **शासन की विस्तारित पहुँच**–ई–गवर्नेंस की बदौलत सार्वजनिक क्षेत्र के संगठन और नागरिक सरकारी सूचना कार्यक्रमों और सेवाओं तक अधिक आसानी से पहुँच सकते हैं। टेलीफोन नेटवर्क का विस्तार, मोबाइल टेलीफोनी में तेजी से प्रगति, इंटरनेट का प्रसार और अन्य संचार बुनियादी ढांचे को मजबूत करने से लोग इंटरनेट के माध्यम से देश भर में सरकारी कर्मचारियों और राजनेताओं से संवाद कर सकते हैं और अपनी बात कह सकते हैं। यह विकास स्थानिक और जनसांख्यिकीय दोनों– शासन की प्रक्रिया में नागरिकों की बेहतर भागीदारी को भी सक्षम बनाएगी।

3) **सरकार में सरलता एवं कार्यकुशलता**–विस्तृत व्यवसाय प्रक्रिया पुनः इंजीनियरिंग के साथ शासन में आईसीटी के अनुप्रयोग से जटिल प्रक्रियाएँ सरल हो जाएंगी। वर्तमान कागज–आधारित प्रणाली की प्रभावशीलता को बढ़ाना ई–गवर्नमेंट का एक लाभ है। यह कागज–आधारित अधिकांश कार्यों को संभालने के लिए आवश्यक श्रम की मात्रा को कम करता है जिससे निरर्थक प्रक्रियाएं समाप्त हो जाएंगी, संरचनाओं में सरलीकरण होगा तथा कानूनों और विनियमों में परिवर्तन होगा।

अंतिम परिणाम यह होगा कि सरकार के कामकाज का सरलीकरण होगा, निर्णय लेने की क्षमताएँ बढ़ जाएगी और सरकार की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी– ये सभी एक अधिक जवाबदेह सरकारी मशीनरी के समग्र वातावरण में योगदान देंगे। जिसके फलस्वरूप सभी क्षेत्रों में उत्पादकता और दक्षता में वृद्धि होगी।

4) **पारदर्शिता**–पारदर्शिता को मुख्यतः सुशासन के एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। ई–गवर्नेंस के इस्तेमाल से शासन के सभी काम पारदर्शी हो जाते हैं। सभी सरकारी जानकारी इंटरनेट पर अपलोड की जा सकती है। नागरिक जब चाहें, जो भी जानकारी चाहते हैं, उसे माउस के क्लिक या उंगली के स्पर्श से प्राप्त कर सकते हैं। हालाँकि, इसके लिए सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी डेटा सार्वजनिक किए जाएं तथा इंटरनेट पर सरकारी सूचना मंचों पर अपलोड की जाए।

5) **जवाबदेही**– पारदर्शिता सीधे जवाबदेही से जुड़ी होती है।एक बार जब शासन प्रक्रिया पारदर्शी हो जाती है तो सरकार स्वतः ही जवाबदेह बन जाती है। एक जवाबदेह सरकार एक जिम्मेदार सरकार होती है।

6) **भ्रष्टाचार में कमी**–ई–गवर्नेंस सूचना प्रदर्शन और बेहतर सेवा वितरण के माध्यम से भ्रष्टाचार के खतरे से निपटने में मदद कर सकता है क्योकि ई–गवर्नेंस में जानकारी तक त्वरित पहुँच, जवाबदेही और पारदर्शिता होने के कारण नागरिकों को अधिकारियों से सवाल करने और स्पष्टीकरण मांगने का अधिकार सुदृढ़ हुआ है। इस प्रकार ई–गवर्नेंस के उपयोग से उत्पन्न पारदर्शिता से भ्रष्टाचार में कमी आ सकती है।

7) **लागत बचत**–सरकारी खर्च का एक बड़ा हिस्सा सरकारी कामों के लिए स्टेशनरी खरीदने में खर्च हो जाता है। पत्र और लिखित अभिलेखों में बहुत अधिक स्टेशनरी खर्च होती है। ई–गवर्नेंस के विस्तार इन खर्चो में काफी कमी आएगी। इसके अतिरिक्त फोन और इंटरनेट के माध्यम से संचार सरकारी व्यय को कम करता है और हर साल सरकार का करोड़ों रुपये का खर्च बचाता है।

8) **रफ्तार**–प्रौद्योगिकी संचार को तेज बनाती है। इंटरनेट, स्मार्टफोन ने पूरी दुनिया में सामान्य संचार में लगने वाले समय को कम कर दिया है और बड़ी मात्रा में डेटा का तुरंत संचार संभव बना दिया है जिससे सरकार के साथ–साथ लोगों का भी काफी समय बचता है।

ICT-आईसीटी–सक्षम कनेक्टेड शासन इसमें योगदान देता है–

आन्तरिक

1) नकल से बचना
2) लेनदेन लागत कम करना
3) नौकरशाही प्रक्रियाओं को सरल बनाना
4) अधिक दक्षता
5) बेहतर समन्वय और संचार
6) बढ़ी हुई पारदर्शिता
7) एजेंसियों के बीच सूचना साझा करना
8) सूचना प्रबंधन की सुरक्षा

बाह्य

1) तेज सेवा वितरण
2) अधिक प्रभावकारिता
3) सेवा उपयोग के लचीलेपन में वृद्धि
4) सेवा वितरण में नवाचार
5) अधिक भागीदारी
6) अधिक से अधिक नागरिक सशक्तिकरण
7) नागरिक भागीदारी

4.7.9. ई–गवर्नेंस की समस्याएँ (Problems of e-Governance)

ई–गवर्नेंस को सफलतापूर्वक लागू करने के कई लाभों के बावजूद, इसमें अनगिनत समस्याएं भी मौजूद हैं। यह अन्तर–सम्बन्धित मुद्दों का एक पूरा दायरा है, जिसको व्यवस्थित रूप से सम्बोधित किया जाना चाहिए। ई–गवर्नेंस से सम्बन्धित मुद्दो की व्याख्या नीचे दी गई है–

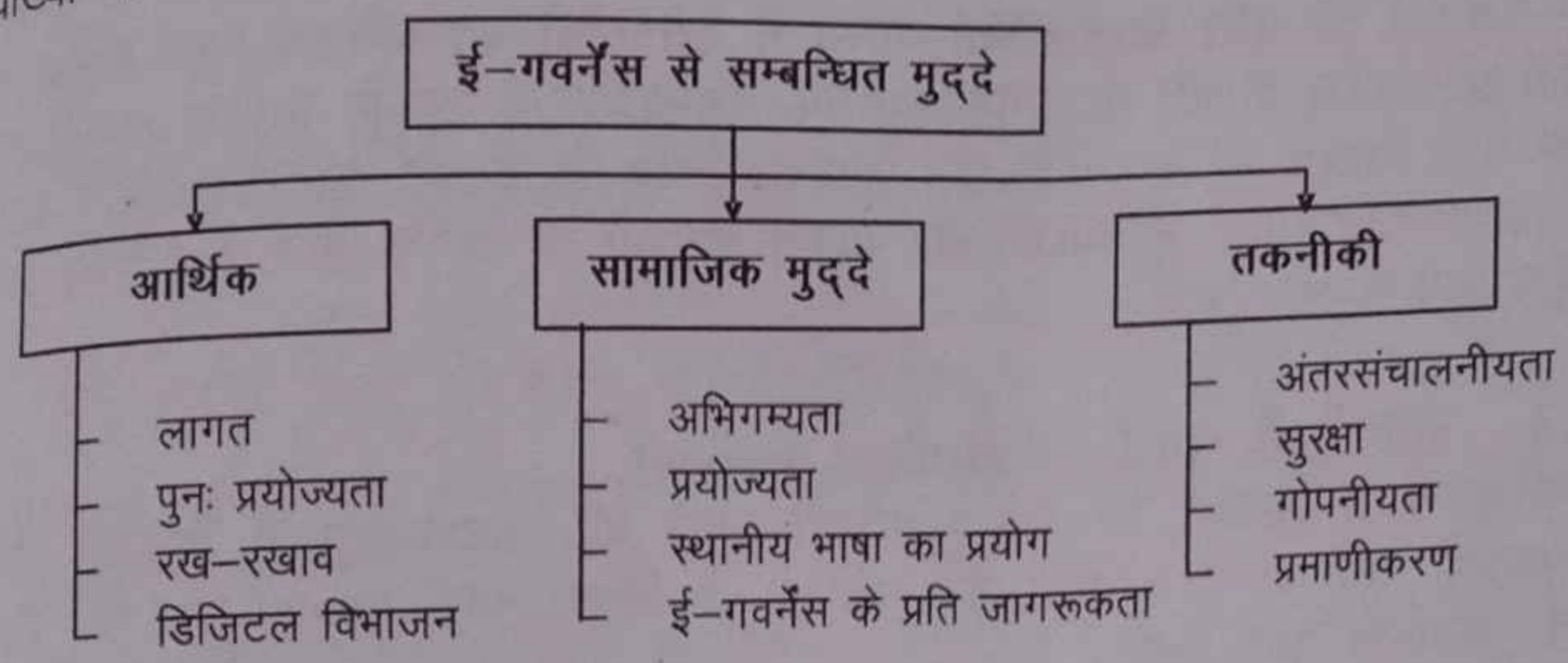

4.7.9.1. आर्थिक मुद्दे (Economic Issues)

1) **लागत**–ई–गवर्नेंस के उपयोग को विनियमित करने में लागत एक प्रमुख भूमिका निभाती है। उच्च लागत लाभ अनुपात के लिए प्रदान की गई सेवा के कार्यान्वयन, संचालन और रखरखाव की लागत बहुत कम होनी चाहिए।

2) **रख–रखाव**–प्रौद्योगिकी बदलती रहती है, और यदि प्रौद्योगिकी अप्रचलित हो जाती है, तो यह ई–गवर्नेंस की प्रभावशीलता को रोक सकती है। अतः उभरती जरूरतों को आसानी से पूरा करने के लिए सिस्टम को सुसंगत और रखरखाव योग्य होना चाहिए।

3) **पुनः प्रयोज्य**–ई–गवर्नेंस को राष्ट्रव्यापी योजना माना जाना चाहिए और कार्यान्वित मॉड्यूल अन्य प्रशासनों द्वारा पुनः उपयोग के योग्य होना चाहिए।

4) **डिजिटल विभाजन**–यह उन लोगों के बीच विभाजन को संदर्भित करता है जिनके पास डिजिटल तकनीक तक पहुँच है और अन्य जिनके पास इसकी पहुँच नहीं है। आर्थिक गरीबी डिजिटल विभाजन के मुख्य कारणों में से एक है। लोग कंप्यूटर खरीदने में असमर्थ हैं।

4.7.9.2. सामाजिक मुद्दे (Social Issues)

1) **अभिगम्यता**–ई–गवर्नेंस सेवा किसी के लिए भी, कहीं से भी, किसी भी समय सुलभ होनी चाहिए। शोध से पता चला है कि सरकारी वेबसाइटों की उपयोगिता में कमी कंप्यूटर की पहुँच, इंटरनेट प्रौद्योगिकी की उपलब्धता और सेवा की उपयोगिता जैसे तत्वों के कारण हो सकती है। भले ही इंटरनेट की आबादी तेजी से बढ़ रही हो, फिर भी आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जो विभिन्न कारणों से ई–गवर्नेंस तक पहुँचने में सक्षम नहीं हो पा रहा है।

2) **प्रयोज्यता**–सभी उपयोगकर्ता आईसीटी लेनदेन या ई–गवर्नेंस के लिए उपयोग की जाने वाली तकनीक के विशेषज्ञ नहीं हो सकते हैं। वरिष्ठ नागरिकों के पास आमतौर पर औपचारिक शिक्षा का अभाव होता है इसलिए, प्रदान की गई सेवा प्रयोग करने योग्य या उपयोगकर्ता के अनुकूल होनी चाहिए। सिस्टम को प्रयोग लायक बनाने के लिए उपयोगकर्ताओं को मदद के लिए ग्राहक सेवा प्रतिनिधि की सुविधा दी जानी चाहिए।

3) **स्थानीय भाषाओं का प्रयोग**–उपयोगकर्ता की सुविधा के लिए स्थानीय भाषाओं में जानकारी की सुविधा होनी चाहिए क्योकि भारत में बड़ी संख्या में लोग अशिक्षित हैं केवल भाषा के अभाव में वे **ई–गवर्नेंस** को समझने में अक्षम रहेंगे। जानकारी को अंग्रेजी से स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करने के लिए भाषा सॉफ्टवेयर या कुछ अन्य तकनीकियां होनी चाहिए।

4) **ई–गवर्नेंस के प्रति जागरूकता**–भारत में ऐसे गाँवों का प्रतिशत बहुत अधिक है जहाँ ई–गवर्नेंस के बारे में जागरूकता की आवश्यकता है क्योंकि ग्रामीण आबादी का एक बड़ा हिस्सा नई तकनीकों और कंप्यूटर शिक्षा से अवगत नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में अपर्याप्त बुनियादी सुविधाओं और भाषाई बाधाओं के कारण लोग ई–गवर्नेंस तक पहुँच पाने में असमर्थ हैं।

4.7.9.3. तकनीकी मुद्दे (Technical Issues)

1) **एकीकरण**–ई–गवर्नेंस को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि यह सभी मंत्रालयों, सभी राज्य सरकारों और प्रशासन के निचले स्तरों पर एकीकृत हो। डेटा का एकीकरण मुख्य समस्या है।

2) **सुरक्षा**–ई–गवर्नेंस में लेनदेन सुरक्षा एक और बड़ी समस्या है। कर जुर्माना और बिल भुगतान सुरक्षित होना चाहिए और सिस्टम डिजाइन पूर्ण प्रमाणित होना चाहिए। लोग अपने व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा को लेकर आशंकित रहते हैं। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इस मामले में कोई समझौता न किया जाए।

3) **गोपनीयता**–सरकारी सेवाओं में संग्रहित नागरिकों के निजी डेटा के चोरी होने का जोखिम हमेशा बना रहता है।अतः नागरिक द्वारा सरकारी एजेंसी को प्रदान किए गए किसी भी लेनदेन या जानकारी की गोपनीयता सुनिश्चित की जानी चाहिए। साइबर अपराध एक गंभीर मुद्दा है, डेटा का उल्लंघन लोगों को शासन करने की सरकार की क्षमता पर भरोसा खो सकता है।

4) **प्रमाणीकरण**–लोगों को सरकार पर भरोसा होना चाहिए और उन्हें अपने द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे उपकरण और तकनीक के प्रति सहज और आश्वस्त चाहिए। लेकिन धोखाधड़ी वाले लेन–देन और अन्य कारकों के कारण लोगों का भरोसा कम हो जाता है जो ई–गवर्नेंस के सीमित उपयोग के लिए जिम्मेदार कारकों में से एक बन जाता है।

अतः सेवाओं का अनुरोध करने वाले नागरिकों के प्रमाणीकरण को सेवाओं तक पहुँचने या उनका उपयोग करने से पहले सत्यापित किया जाना चाहिए। डिजिटल हस्ताक्षर प्रामाणिकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

4.7.10. ई–गवर्नेंस का महत्त्व (Significance of e-Governance)

वर्तमान युग में कई कारणों से ई–गवर्नेंस की आवश्यकता है, जिनमें शामिल हैं

1) ई–सरकार का अंतिम उद्देश्य नागरिकों को एक कुशल और लागत प्रभावी तरीके से उन्नत सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करना है।

2) जनता के लिए सरकार क्या काम कर रही है और उसकी कौन सी नीतियाँ हैं ई–गवर्नेंस इसके बारे में सीखना आसान बनाकर सरकार की पारदर्शिता में सुधार करता है।

3) चूंकि यह मजबूत ओपन–सोर्स जवाबदेही और पारदर्शिता की गारंटी देता है और व्यक्तियों को आसानी से अपनी शिकायतें दर्ज करने और सरकारी सेवाओं की गुणवत्ता की समीक्षा करने में सक्षम बनाता है, इसलिए ई–गवर्नेंस अधिक लोकतांत्रिक और भागीदारीपूर्ण है।

4) यह व्यक्तियों को सरकारी एजेंसियों के बारे में अधिक जानने और निर्णय लेने में भाग लेने की अनुमति देता है।

उदाहरण के लिए, सीएम पोर्टल पर शिकायत दर्ज करने से व्यक्तियों को यह गारंटी मिलती है कि सार्वजनिक सेवाएँ बिना देरी के प्रदान की जाती हैं।

5) ई–गवर्नेंस सूचना प्रवाह पारदर्शिता सुनिश्चित करता है, जो सामाजिक, पर्यावरणीय और आर्थिक मूल्यों को बढ़ाने और पुनर्परिभाषित करने में सहायता करता है।

6) चूँकि प्रौद्योगिकी कानून और विनियमन को अधिक सुविधाजनक बनाती है, इसलिए ई–गवर्नेंस कानून के बेहतर पालन को बढ़ावा देती है।

7) ई–सरकार सरकारी सेवाओं के वितरण और दक्षता में सुधार करती है, साथ ही नागरिकों के लिए उन सेवाओं तक पहुँच में सुधार करती है।

8) जैसे–फोटो के साथ दस्तावेज जमा करना, निकटतम सरकारी एजेंसी में जाकर आवेदन पत्र सत्यापित करवाने से कहीं अधिक आसान है।

9) सामान्य सरकार महंगी, खर्चीली और पर्यावरण के दृष्टिकोण से असंवहनीय है। ई–गवर्नेंस इलेक्ट्रॉनिक सरकारी प्रणाली को लागू करते समय कागज आधारित प्रणाली को प्रतिस्थापित और अनुकूलित करता है।

10) ई–गवर्नेंस को लागू करने से न केवल संसाधनों, प्रयास और धन की बचत होती है, बल्कि इससे सेवा की गुणवत्ता में भी काफी सुधार आ सकता है और सरकारी विभागों में लगने वाले समय को कम किया जा सकता है।

4.8. अभ्यास प्रश्न (EXERCISE)

4.8.1. अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1) पर्ट का पूरा नाम क्या है?
2) एकीकरण से क्या आशय है?
3) भारत में ओ.एण्ड.एम. से क्या तात्पर्य है?
4) प्रबन्धन सूचना प्रणाली से क्या अभिप्राय है?
5) सुशासन की अवधारण से आप क्या समझते हैं?
6) ई–गवर्नेंस के चरणों का नाम लिखिए।

4.8.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1) पर्ट एवं सीपीएम में अन्तर बताइए।
2) संचालन में अनुसन्धान से क्या अभिप्राय है?
3) संगठन एवं विधि/प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषाएँ लिखिए।
4) SWOT से आप क्या समझते है?
5) ICT की अवधारणा को स्पष्टीकरण कीजिए।
6) डिजिटल भारत से क्या आशय है?

4.8.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) पर्ट से क्या आशय है? सीपीएम के लाभ एवं हानि का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2) व्यवहार्य प्रणाली मॉडल से कया तात्पर्य है? प्रबन्धन साइबरनेटिक्स एवं संगठनात्म साइबरनेटिक्स को सविस्तार समझाइए।
3) संगठन एवं विधियों के तकनीकों का उल्लेख कीजिए।
4) स्वोट विश्लेषण का इतिहास संक्षिप्त में बताइए। स्वोट विश्लेषण के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
5) सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उद्गम एवं विकास से क्या आशय है? सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में नवीन प्रवृत्तियों का विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
6) आधार एवं उमंग से आप क्या समझते है? ई–गवर्नेंस के महत्त्वों की विवेचना कीजिए।
7) सीपीएम से आप क्या समझते है? पर्ट के लाभ व हानियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
8) प्रबन्ध सूचना प्रणाली से क्या अभिप्राय है? प्रबन्ध सूचना प्रणाली के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
9) ई–गवर्नेस के प्रमुख स्तम्भ कौन–कौन से हैं? ई–गवर्नेस में आईसीटी किस रूप में होता है? विस्तार से समझाइए।
10) सुशासन की अवधारणा से आप क्या समझते हैं? भारत में सुशासन से सम्बन्धित कठिनाइयों पर प्रकाश डालिए।

अनुक्रमणिका

एल्टन मेयो के प्रयोग, 100
ई–गवर्नेंस की समस्याएँ, 226
ई–गवर्नेंस का महत्त्व, 228
ई–गवर्नेंस के प्रमुख स्तम्भ, 217
ई–गवर्नेंस के चरण, 217
प्रबन्ध साइबरनेटिक्स, 182
प्रबन्ध सूचना प्रणाली के प्रकार, 195
प्रबन्ध सूचना प्रणाली के उद्देश्य/कार्य, 194
प्रबन्ध सूचना प्रणाली के तत्व, 193
प्राचीन काल में लोक प्रशासन का विकास, 15
प्रोग्राम मूल्यांकन और समीक्षा तकनीक, 172
कार्यपालिका एवं प्रशासनिक कर्तव्य, 30
कौटिल्य की षाड्गुण्य नीति, 36
कौटिल्य की मन्त्रिपरिषद, 33
कौटिल्य की दण्डनीति, 36
कौटिल्य की गुप्तचर व्यवस्था, 34
कौटिल्य का प्रभुसत्ता सिद्धान्त, 32
कौटिल्य का जीवन परिचय, 23
कौटिल्य के राजा, 28
कौटिल्य के अर्थशास्त्र का परिचय, 23
कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अधिकरण, 24
मंडल सिद्धांत, 30
मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त, 98
मानवीय सम्बन्धों के सिद्धान्त, 104
मैक्स वेबर का नौकरशाही का सिद्धान्त, 84
मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की विशेषताएँ, 86
मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचना, 88
मैक्ग्रेगर की X तथा Y विचारधारा, 141
मैक्ग्रेगर व लिकर्ट के सिद्धान्त की तुलना, 145
मैस्लो तथा हर्जबर्ग के सिद्धान्त में अन्तर, 140
डिजिटल भारत, 220
लिंकिंग–पिन मॉडल, 167
लिकर्ट की प्रबन्ध प्रणाली, 160
हर्जबर्ग के दो कारक, 135
हर्जबर्ग के अभिप्रेरणा स्वच्छता सिद्धान्त के चार संयोजन, 137
भारत में सुशासन प्राप्त करने के लिए लागू की गयी नीतियाँ, 207
भारत में सुशासन से सम्बन्धित कठिनाइयाँ, 205
भारत में ओ. एण्ड एम.ए 192
भारत में लोक प्रशासन का अध्ययन विषय के रूप में विकास, 16
परम्परागत सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, 213
पर्ट एवं सीपीएम में अन्तर, 180
पर्ट की विशेषताएँ, 173
पर्ट के हानि, 177
पर्ट के लाभ, 176
राजस्थान में ई–गवर्नेंस, 224
शांति–स्थापना की अंतरराज्यीय नीति के उपाय, 37
संघर्ष का प्रबन्ध, 166
संगठन एवं विधि के उद्देश्य/कार्य, 188
संगठन व प्रणाली की तकनीकें, 189
संगठनात्मक प्रभावकारिता, 164
संगठनात्मक कार्य–सम्पादन, 169
संगठनात्मक विकास सुधार, 164
संगठनात्मक परिवर्तन, 154
संगठनात्मक साइबरनेटिक्स, 186
सीपीएम विश्लेषण के सिद्धान्त, 178
सप्तांग सिद्धांत, 25
सप्तांग सिद्धांत की आलोचना, 28
सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी में प्रवृतियाँ, 214

स्वोट विश्लेषण, 197
स्वोट विश्लेषण के लाभ, 200
स्वोट विश्लेषण के कारक, 198
सुशासन की अवधारणा, 200
सुशासन का अर्थ एवं परिभाषाएँ, 201
सुशासन की विशेषताएँ/सिद्धान्त, 202
सुशासन की आवश्यकता, 208
सुशासन के सूचक, 203
सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, 208
सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी का उद्गम एवं विकास, 209
सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी के घटक, 211
सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकियों का वर्गीकरण, 212
व्यवहार्य प्रणाली मॉडल, 182
वैज्ञानिक प्रबन्ध की विशेषताएँ, 45
वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचनाएँ, 52
वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त, 48
वैज्ञानिक प्रबन्ध के लाभ, 51
"नौकरी/कार्य संवर्धन", 138
अधिगम एवं विकास, 185
अभिप्रेरणा का महत्त्व, 125
अभिप्रेरणा के सिद्धान्त, 126
अभिप्रेरणा का अर्थ एवं परिभाषाएँ, 121
अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त/मॉडल, 151
अपरिपक्वता–परिपक्वता सिद्धान्त/मॉडल की सीमाएँ, 153
आधुनिक काल में लोक प्रशासन का विकास, 16
आधुनिक सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी, 213
आई.सी.टी. की अवधारणा, 208
ओ. तथा एम. के लाभ, 191
ओ तथा एम की प्रकृति, 187
लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के कारक, 17
लूथर गुलिक और उर्विक के विचारों की आलोचना, 72

4884

पुस्तक के विषय में

प्रस्तुत पुस्तक **"प्रशासनिक सिद्धान्त"** में सम्मिलित तथ्यों एवं व्यवहारों का व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक विशेषकर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, बी.ए. तृतीय सेमेस्टर के विद्यार्थियों के लिए, नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुसार तैयार की गई है। इस पुस्तक में लगभग सभी पहलुओं को सरल व सुस्पष्ट भाषा शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिससे विद्यार्थियों को समझने में कोई कठिनाई न हो। इस पुस्तक के लेखन कार्य में पूर्ण सतर्कता व सावधानी बरती गयी है। इस पुस्तक की निम्न विशेषताएँ हैं–

1) इस पुस्तक की भाषाशैली अत्यंत सहज, सरल, सुस्पष्ट तथा समझने योग्य है।
2) प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न पहलुओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है।
3) कठिन एवं तकनीकी शब्दों को हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिया गया है।
4) प्रत्येक इकाई के अंत में विषय वस्तु से सम्बन्धित बहुविकल्पीय, लघु एवं विस्तृत–उत्तरीय प्रश्नों का समावेश किया गया है।
5) पाठ्यक्रम की इकाइयों के अंत में अनुक्रमणिका का प्रयोग किया गया है जिससे छात्रों को मुख्य बिंदुओं को ढूढ़ने में आसानी होगी।

लेखक परिचय

डॉ. रतन लाल कुमावत राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से लोक प्रशासन व राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर, **एल.एल.बी** की उपाधि तथा महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय से 'ई–गवर्नेन्स का प्रभाव : खेतड़ी पंचायत समिति के विशेष संदर्भ में (एक अनुभवमूलक अध्ययन) विषय पर **पी–एच.डी.** की उपाधि एवं **यूजीसी नेट** की योग्यता प्राप्त की है। आपने राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों, सम्मेलनों में सहभागिता की है एवं शोध पत्र प्रस्तुत किए हैं। आपने 'ई–गवर्नेन्स', सतत विकास मुद्दे एवं चुनौतियां (editing book) विषय पर पुस्तक प्रकाशित की है। आप वर्तमान मे **स्वामी विवेकानन्द राजकीय महाविद्यालय, खेतड़ी** में **सहायक प्रोफेसर** के पद पर कार्यरत है।

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, बी.ए. तृतीय सेमेस्टर

विषय नाम	लेखकगण
इतिहास– मध्यकालीन भारत का इतिहास (1200–1761)	डॉ. अंशुल शर्मा, डॉ. अनीता यादव, डॉ. श्रुति
लोक प्रशासन– प्रशासनिक सिद्धान्त	डॉ. रतन लाल कुमावत
समाजशास्त्र– शास्त्रीय समाजशास्त्रीय चिन्तन	डॉ. मोनिका शर्मा
गृह विज्ञान– जीवन काल विकास (मानव विकास)	मेजर मीनाक्षी जैन, डॉ. अनामिका वर्मा
English: Poetry and Drama-II	Dr. Neelima Pareek
अर्थशास्त्र–समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त	
भूगोल– भौतिक भूगोल-II	
राजनीति विज्ञान–	
मनोविज्ञान–	
हिन्दी–	
Urdu:	
संस्कृत–	
AEC:	
AEC:	
SEC:	
SEC:	
VAC:	

ISBN: 978-93-6180-737-4

Printed at: Savera Printing Press, Jankipuram, Lucknow. Mob. 9235318506/07